आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

तीसरा भाग

आश्रमवासीके सामाजिक सिद्धान्त

लेखक
जुगतराम दवे
अनुवादक
रामनारायण चौधरी

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद

प्रकाशकका निवेदन

यह पुस्तक मूल गुजरातीमें सन् १९४६ में प्रकाशित हुअी थी। ग्रामसेवकोंकी तालीममें यह बहुत अुपयोगी सिद्ध हुअी है। गुजराती भाषा जानने-समझनेवाले अगुजराती लोग, विशेष करके कार्यकर्ता, हमेशा अिस पुस्तकके हिन्दी संस्करणकी मांग करते रहे हैं। आज अितने समयके बाद भी हम अुनकी मांग पूरी कर रहे हैं, अिससे हमें बड़ा आनन्द होता है।

यह पुस्तक सुविधाके खयालसे ही तीन अलग भागोंमें बांटी गअी है, परन्तु विषय-विवेचनकी दृष्टिसे तो तीनों भाग अेक संपूर्ण पुस्तकके ही अंग हैं। अिसका पहला भाग अक्तूबर १९५७ में प्रकट हो चुका है, जिसमें 'आश्रमवासीके बाह्य आचारों' की चर्चा की गअी है। दूसरा भाग जनवरी १९५८ में प्रकाशित हुआ है, जिसमें 'आश्रमवासीकी अन्तर-श्रद्धाओं' पर विचार किया गया है। अिस तीसरे भागमें 'आश्रमवासीके सामाजिक सिद्धान्तों'का विवेचन किया गया है। अिसके अन्तमें पहले और दूसरे भागमें चर्चित विषयोंकी विस्तृत सूची दी गअी है, जिससे पाठकोंको अेक ही दृष्टिमें सम्पूर्ण पुस्तकके विषयोंका खयाल आ सके।

आशा है देशकी आश्रम-संस्थायें, ग्रामसेवा द्वारा स्वतंत्र भारतके गांवोंमें आशा, अुत्साह और नवजीवनका संचार करनेका अुदात्त ध्येय रखनेवाली सार्वजनिक संस्थायें तथा गांधीवादी आश्रमोंका गहरा परिचय प्राप्त करनेकी अिच्छा रखनेवाले लोग अिस पुस्तकसे अवश्य लाभ अुठायेंगे।

१५-३-'५८

आदि-वचन

भाओी जुगतरामकी 'आश्रमी शिक्षा' नामक पुस्तकके कुछ प्रकरण मैं पढ़ गया हूं। अुनकी भाषा तो सरल और सुन्दर है ही। गांवके लोग आसानीसे समझ सकें अैसी वह भाषा है। आश्रम-जीवनसे सम्बंध रखने-वाली छोटी-बड़ी सभी चीजोंका लेखकने सुन्दर ढंगसे वर्णन किया है। अुन्होंने बताया है कि आश्रम-जीवन सादा है, परन्तु अुसमें सच्चा रस और कला भरी हुअी है। यह परीक्षा सही है या गलत, यह तो पाठक सब लेख पढ़ कर देख लें।

पूना, १७–३–'४६ मो० क० गांधी

अर्पण

आश्रम-बन्धु मकनजी बाबाको

अनुक्रमणिका

प्रकाशकका निवेदन ३
आदि-वचन मो० क० गांधी ४
शिक्षाकी आश्रमी पद्धति ९

नवां विभाग : ग्रामाभिमुखता

प्रवचन

५४. हमारा प्यारा गांव ३
५५. हमारे ग्रामगुरु ६
५६. आलसीपनकी जड़ें १३
५७. भयोंका भय १६
५८. गुणी ग्रामजन २०
५९. ग्रामवासियोंकी भाषा २४

दसवां विभाग : आश्रमवासी

६०. हमारा नाम ३१
६१. सत्याग्रही खादी-सेवक ३७
६२. सत्याग्रही शिक्षक ४१
६३. सत्याग्रहीके राजनीतिक दावपेंच ४४
६४. सत्याग्रही नेता ४८

ग्यारहवां विभाग : आत्मबल

६५. सार्वजनिक जीवनमें सिद्धान्त हो सकते हैं? ५५
६६. 'नीतिके रूपमें' ५९
६७. हमारे सेनापति ६६
६८. सत्यमें कौनसा बल है? ६८
६९. अहिंसामें कौनसा चमत्कार है? ७३
७०. अिससे स्वराज्य मिलेगा? ७८
७१. हम क्यों जीतते और क्यों हारते हैं? ८२

बारहवां विभाग : आश्रमी शिक्षाका अभ्यासक्रम [अेकादश व्रत]

७२. आत्म-रचनाकी बुनियाद [सत्य-अहिंसा] ८७

७३. आत्म-रचनाकी अिमारत ९३

१. धंधोंमें सिद्धान्त [अस्तेय] ९५ ; २. सुख-सुविधाओंमें सिद्धान्त [अपरिग्रह] ९७ ; ३. व्यक्तिगतसे व्यक्तिगत जीवनमें भी सिद्धान्त [ब्रह्मचर्य] १०० ; ४. भोग-विलास पर संयम [शरीर-श्रम] १०३ ; ५. आत्म-रचनाका 'बायें-दाहिने' [अस्वाद] १०५; ६. लड़ाका सत्याग्रह [अभय] १०६; ७. विशाल स्वदेशी ११०; ८. अूंचनीच-भेदका जहर [अस्पृश्यता-निवारण] ११२; ९. सच्ची धार्मिकता [सर्व-धर्म-समभाव] ११४

७४. आत्म-रचनाका त्रिविध फल १२०

७५. आत्म-रचनाकी शाला — आश्रम १२५

७६. स्वराज्य-आश्रम १३५

फलश्रुति

नअी संस्कृतिकी पुरानी बुनियाद काकासाहब कालेलकर १४७

शिक्षाकी आश्रमी पद्धति

मेरे आश्रम-बंधुओंके प्रति

सावरमतीके 'स्वराज्य मंदिर' में हमारे आश्रमका और आप सबका जो चिन्तन मैंने प्रतिदिन ब्राह्म-मुहूर्तमें किया, ये प्रवचन अुसीका फल हैं। जेल मेरे लिअे कभी जेल रही ही नहीं। कअी वार तो आपमें से — वेड़छी आश्रमके मेरे आश्रम-बंधुओंमें से, कोअी न कोअी जेलमें भी मेरे साथ रहे हैं। आपकी याद सदा दिलाते रहें, अैसे श्रद्धालु विद्यार्थियों और समान-धर्मी मित्रोंकी मण्डलीके वीच ही कारावासका मेरा अधिकांश समय वीता है। अुनके वीच जेलमें भी मेरे लिअे वेड़छी आश्रम ही चलता रहा है। वही सुवह-शामकी प्रार्थनायें, वही भजन और धुन, वही गीतापाठ, वही सामूहिक कताअी और वही 'सहनाववतु' मंत्रके साथ सहभोजन। अिसके कारण जेलके जिस खण्डमें मेरा विस्तर रहता, वह सदा 'वेड़छी आश्रम' के नामसे ही पुकारा जाता था।

दीवारके वाहर और दीवारके अन्दरके मेरे आश्रम-बंधुओंको अैसे अनेक प्रसंग याद आयेंगे, जब अिन प्रवचनोंमें चर्चित विषय हमारे वीच निकले थे। कभी कभी प्रार्थनाके वाद सचमुच अिसी शैलीका अेकाध प्रवचन हुआ आपको याद आयेगा। परन्तु अधिकांश प्रवचन जिस रूपमें यहां लिखे गये हैं अुसी रूपमें नहीं किये गये। चौवीसों घण्टेके हमारे सहवासमें जब जैसा प्रसंग आया, तब अुसके अनुरूप हमने अिन प्रवचनोंके विचारों और सिद्धान्तोंका रटन किया है। कभी कातते कातते और कभी टहलते टहलते हमने चर्चा और वाद-विवादके रूपमें अैसा किया है। कअी वार तो सारे प्रवचनकी वस्तु अेकाध छोटीसी सूचनाके रूपमें, अेकाध विनोदपूर्ण वक्रोक्तिके रूपमें, अेकाध प्रेमभरे आग्रहके रूपमें हम सव अिशारेमें समझ गये हैं।

शिक्षाकी जिस पद्धतिको मैं 'आश्रमी पद्धति' कहता हूं, अुसकी खूवी ही यह है। सतत सहवास और सहजीवन तथा आपसके प्रेम और श्रद्धाके कारण हमारी वुद्धिरूपी धरती सदा वीजको अंकुरित करनेकी स्थितिमें ही रहा करती है। कहींसे हवामें अुड़कर वीज आया कि वह अुगा ही समझिये। यदि पाठशाला लगाकर और कक्षाओंमें वैठकर ही ये सारी चीजें पढ़नी-पढ़ानी हों, तो अैसे लंबे प्रवचनोंसे तो क्या परन्तु वड़े वड़े ग्रंथोंसे भी यह करना दुःसाध्य है। आपको आश्चर्यके साथ स्मरण आयेगा कि अिन प्रवचनोंमें गंभीर रूप धारण करके आयी हुअी वहुतसी वातें हमारे पास तो सहभोजन या सहस्नान या सह-सफाअी करते समय हास्य-विनोदके रूपमें ही आयी थीं। कुछ वातें तो कव हमारे भीतर प्रवेश कर गयीं और कव हमारे भीतर आत्मसात् हो गयीं, अिसका कोअी प्रसंग भी आपको याद नहीं होगा। केवल प्रवचन पढ़कर आप सिर हिलायेंगे कि यह वात अिस ढंगसे हमने किसीके मुंहसे सुनी या

किसी ग्रंथके पृष्ठोंमें देखी नहीं थी, परन्तु ठीक यही हमारे विचार हैं, ठीक अिसी तरह आचरण करना हम पसन्द करते हैं।

जीवनमें सीखनेके विषय सिर्फ कोअी अुद्योग, कोअी कला-कौशल या कोअी तर्क ही नहीं हैं। परन्तु जन्मके साथ जड़ जमाये बैठी हुअी पुरानी घृणाओं और पुराने हठीले पूर्वग्रहोंसे हमें मुक्त होना है, कभी न किये हुअे नये विचारोंको खूनमें अुतारना है, नअी श्रद्धाअें हृदयमें स्थापित करनी हैं और तदनुसार आचरण करते हुअे सिरका सौदा करनेका शौर्य कमाना है। यह बात साधारण पाठशाला या अुद्योगशाला नहीं दे सकती। अिसके लिअे आश्रम-जीवनकी जरूरत है।

चरखा, पींजन और करघेके कला-कौशल तो अुद्योगशालामें सीखे जा सकते हैं। परन्तु व्यर्थकी जरूरतों और व्यर्थके मौज-शौकमें काटछांट करके अपने लिअे आवश्यक वस्त्रादि चीजें घरमें ही बना लेनेकी तैयारी —— तैयारी ही नहीं, परन्तु वैसे जीवनमें आन्तरिक रस पैदा होना तो आश्रममें ही संभव है।

मलमूत्रका निपटारा कैसे किया जाय, अिसकी शास्त्रीय पद्धति तो किसी विद्यालयमें पाठ पढ़कर जानी जा सकती है। परन्तु अिनके प्रति जो घृणा हमारी जनताके रोम-रोममें घुसी हुअी है और अुस घृणासे भी अधिक जहरीली जो अस्पृश्यता जनतामें पैठी हुअी है, अुस पर तो किसी आश्रममें 'महाकार्य' करते करते ही विजय पाअी जा सकती है। हरिजन बालक या बालिकाको अपना पुत्र या पुत्री बना लेना और अपनी पुत्रीको हरिजन युवकके साथ ब्याह देनेकी अुमंग पैदा होना आश्रमी शिक्षाके बिना संभव ही नहीं है।

बीमारोंको क्या दवा दी जाय, अुनकी सेवा कैसे की जाय, अित्यादि शिक्षा किसी वैद्यशालामें मिल सकती है, परन्तु आत्मजनोंकी या अपनी बीमारीके समय घबरा न जानेकी, अनुचित भाग-दौड़ न करनेकी तथा मृत्युके सामने व्याकुल न बननेकी शिक्षा तो आश्रम-जीवनमें ही मिल सकती है।

हो सकता है कि आश्रममें रहते हुअे भी अैसी शिक्षा किसीको न मिले। अिसका दोमें से अेक कारण होगा। या तो वह नामको ही आश्रम होगा; अिन प्रवचनोंमें जिसका चित्र दिया गया है और जिसका चित्र हमारे हृदयमें अंकित है, वैसा आश्रम वह नहीं होगा। अथवा अुस आश्रममें रहनेवाले अपने हृदयके द्वार बंद करके वहां रहे होंगे, आश्रमी शिक्षाको अुन्होंने अपने अन्दर घुसने ही नहीं दिया होगा।

आप और हम अच्छी तरह जानते हैं कि आश्रमवाससे पहले जो श्रद्धाअें हममें नहीं थीं, अैसी बहुतसी नअी-नअी श्रद्धाअें आश्रमवासके कारण हमारे भीतर पैदा हुअी हैं और दृढ़ बनी हैं। वे कब पैदा हुअीं और कब दृढ़ हुअीं, अुनकी शिक्षा हमें किसने और कब दी, अिसका हमें पता भी नहीं होता। परन्तु हम देखते हैं कि आश्रम-जीवनने हम सब पर अेकसा असर किया है; और अेकसी परिस्थितियोंमें हम सबके हृदयमें अमुक भाव समान रूपमें ही प्रगट होते हैं; और समान परिस्थितियोंमें हम सब जहां हों वहां अेक ही प्रकारका आचरण करनेको तैयार होते हैं।

हम अपने बच्चोंके साथ कैसा बरताव करें, पति या पत्नीके साथ कैसा बरताव करें, जातिके लोगोंके साथ कैसा व्यवहार रखें, हमारा आहार-विहार कैसा हो, देशके कामोंमें किन सिद्धान्तोंसे काम लिया जाय, यह सब हमने कहां, किससे और कब पढ़ा? यह सब हमें अपने आश्रममें अेक-दूसरेसे किसी अकल्पनीय रूपमें मिल गया है।

हमें अपने आश्रमकी शिक्षा लेते लेते यह विश्वास हो गया है कि जिसे सचमुच आत्म-रचना करनी हो, भीतरकी गहरीसे गहरी जड़ों तक शिक्षाको पहुंचाना हो, अुसके लिअे आश्रम ही सच्ची पाठशाला है।

यह सच है कि जिस आत्म-रचनाके लिअे हमने आश्रमवास स्वीकार किया है, अुसमें हम अभी तक बहुत पीछे हैं। कुछ बातोंमें तो हम आज भी अितने कच्चे और पीछे हैं कि दुनियाको आश्रमी शिक्षाके हमारे दावे पर विश्वास ही नहीं होता। वे हमारी कमजोरियोंसे आश्रमका मूल्यांकन करते हैं और आश्रमको केवल बाह्य आचार पर जोर देनेवाली और अबुद्धि पर स्थापित अेक निकम्मी संस्था मान बैठते हैं।

परन्तु जब हम अपने हृदयकी परीक्षा करते हैं, तब देखते हैं कि पहले हम कहां थे और आश्रमवासके बाद आज कहां हैं; और यह देखकर हमें आश्रम और आश्रमी जीवनमें छिपी हुअी आत्म-रचनाकी अद्‌भुत, अकल्पनीय और अवर्णनीय शिक्षाका विश्वास हो जाता है। हम जानते हैं कि हमें जो आत्म-रचना करनी है, अुससे हम अभी कोसों दूर हैं। परन्तु हमें यह भी विश्वास हो गया है कि यदि हमें आश्रमी शिक्षाका लाभ न मिला होता तो हम अपने ध्येयसे कोसों नहीं, परन्तु खगोलशास्त्रियोंके 'प्रकाश-वर्षों' जितने दूर होते।

आत्म-रचना किसकी कितनी हुअी, आश्रमी शिक्षा किसमें कितनी विकसित हुअी, अिसका प्रतिक्षण माप लेने लायक पाराशीशी हमारे पास मौजूद है। हमने कितने वर्ष आश्रममें बिताये, अिस पर से वह माप नहीं लिया जायगा। परन्तु हमारी सच्ची पाराशीशी यह है कि हम स्वराज्य-रचना कितनी और कैसी कर सकते हैं। ज्यों-ज्यों हममें आश्रमी शिक्षा पचती जाती है, ज्यों-ज्यों हमारी आत्म-रचनाकी लाल रेखा अूंची होती जाती है, त्यों-त्यों हम स्वराज्य-रचना अधिक गहरी, अधिक विशाल और अधिक सच्ची कर सकते हैं। हमारे घरमें, हमारे धंधेमें, हमारी देशसेवामें — हमारे रचनात्मक कामोंमें हम कितना सत्याग्रह रख सकते हैं, अिस परसे हम अपनी आत्म-रचनाका अचूक माप निकाल सकते हैं। छोटा या बड़ा जो भी हमारा जन्मसिद्ध क्षेत्र है, अुसमें हम स्वराज्य और सत्याग्रहके तेजस्वी तत्त्व कितने प्रकट कर सकते हैं, अिस पर से हम और संसार हमारी आत्म-रचनाका अेक अेक अंश नाप सकते हैं।

हम खादी, ग्रामोद्योग और राष्ट्रीय शिक्षा जैसे रचनात्मक काम कुछ वर्षोंसे करते आये हैं; हम असहयोग, सविनय कानून-भंग, सत्याग्रह आदि राजनीतिक लड़ाअियोंमें भी कुछ वर्षोंसे भाग लेते आये हैं; हम अपने स्त्री-पुत्रों और जातिके लोगोंके साथ व्यवहार करते आये हैं। यह सब बाहरसे अेकसा दिखाअी देता हो, तो भी क्या आश्रमी शिक्षाके पहले और आश्रमी शिक्षाके बादके हमारे व्यवहारोंमें तत्त्वतः अन्तर

नहीं पड़ गया है? वस्तु अेक ही है, परन्तु गुण क्या दूसरे ही नहीं हो गये हैं? क्या अुसमें अेक प्रकारका रासायनिक परिवर्तन नहीं हो गया है? और आश्रमी शिक्षाके कालमें प्रतिवर्ष और हर मंजिल पर हमारे वहीके वही कार्य क्या गुणोंकी दृष्टिसे भिन्न नहीं होते गये हैं? हमने बारडोलीके असहयोगके समय जैसी लड़ाअी लड़ी या जैसा रचनात्मक कार्य किया, अुससे दांडीकूचके समयके हमारे वही कार्य गुणोंमें बदल गये थे और 'करेंगे या मरेंगे' के युगमें तो अुनमें भी कुछ अद्‌भुत रासायनिक विकास हो गया।

हम सब आश्रम-बंधु जहां और जिस स्थितिमें हों, वहां हमें अपने परम अुपकारी आश्रम और अुसकी शिक्षाके प्रति अैसी श्रद्धा अपने भीतर जाग्रत रखनेमें मदद मिले, अिस हेतुसे ये प्रवचन मैंने जेलवासके मौकोंका लाभ अुठाकर लिख डाले हैं। और अुन्हें पढ़कर सब स्वराज्य-सैनिकोंमें आश्रमी शिक्षाके लिअे प्रेम अुत्पन्न हो, अुसके बिना आत्म-रचना संभव नहीं और आत्म-रचनाके बिना सच्चे स्वराज्यकी रचना संभव नहीं, यह सत्य अुनके हृदयोंमें स्फुरित हो, यह अिनके लिखनेका दूसरा हेतु है। पहला हेतु तो सार्थक होगा ही; क्योंकि हम सब आश्रम-बंधुअोंके बीच प्रेमकी गांठ बंधी हुअी है और अुस प्रेमके कारण अेक-दूसरेके वचन अथवा प्रवचन हमें हमेशा मधुर लगते आये हैं। दूसरा हेतु सिद्ध करने जितनी मधुरता अिन प्रवचनोंकी भाषामें होगी?

स्वराज्य-आश्रम
वेड़छी

जुगतराम दवे

आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

नवां विभाग

ग्रामाभिमुखता

प्रवचन ५४

हमारा प्यारा गांव

हम गांवोंको अपनी सेवाका क्षेत्र बनाना चाहते हैं। अुसके लिअे हमारी सारी तैयारी और तालीम चल रही है। अिसलिअे हम अपने आश्रम गांवोंमें ही खोलते हैं, और ग्रामवासियोंके बीच ही हमें अपना सारा जीवन बिताना है।

लेकिन लोग नौकरी-धंधेके लिअे जैसे बम्बअी, कराची और कलकत्ता जाते हैं, वैसे हम गांवोंमें रहनेके लिअे नहीं जाते। वे कामधंधेके स्थानमें चाहे जितने साल रहें, फिर भी अपनी दृष्टि सदा जन्मभूमिकी तरफ ही रखते हैं। वे वहां अपनेको परदेशी ही मानते हैं, और चाहे जितने लंबे अर्से तक रहें, फिर भी वृत्ति अैसी रखते हैं, मानो मुसाफिरखानेमें अेक रातके लिअे विश्राम किया हो। वे अुतना ही स्नेह-संबंध वहां रखते हैं, जिसके बिना काम ही न चले; और अपनी कमाअीमें से अुतना ही खर्च करते हैं, जितना खर्च करना अनिवार्य हो। वहांके लोगोंके सुख-दुःख या सार्वजनिक जीवनसे वे बिलकुल अलग रहते हैं।

अिस तरह कमाअी करनेके हेतुसे गये हों, तो भी लोग अपने धंधेके क्षेत्रमें परदेशियों जैसा व्यवहार करें, अुसमें से केवल लेते ही रहें परन्तु वापस कुछ न दें, यह वास्तवमें अनीति है, समाज-द्रोह है, अैसा हम लोग मानते हैं। तब अपने पसन्द किये हुअे ग्रामक्षेत्रमें तो हम अैसा व्यवहार कर ही कैसे सकते हैं? हम वहां कमानेके लिअे नहीं, सेवा करनेके लिअे ही जाते हैं। वहां जाकर कुछ कमाअी होने पर हम वापस घर जानेके स्वप्न नहीं देखते। सेवाक्षेत्रमें भी हमारी सोची हुअी सेवा पूरी होनेके बाद कृतार्थ होकर निश्चिन्ततासे घर जाकर आराम करेंगे, अैसी कल्पना भी हम नहीं कर सकते।

मान लीजिये कि पहले हमारा विचार केवल गांवमें घर-घर चरखा शुरू करवा देनेका है। हम भाग्यवान हों और दस-पांच वर्षमें शायद अितना कर सकें, तो क्या गांव छोड़नेके लिअे हम मुक्त हो सकेंगे? नहीं, वहांके लोगोंने हमें अच्छा जवाब दिया, अिस कारणसे तो हमारे मनमें वहां रुकनेकी, अपना समय बढ़ा देनेकी और कार्यका विस्तार करनेकी ही अिच्छा होनी चाहिये। अभी गांवोंमें अनेक गृह-अुद्योग विकसित करने बाकी हैं, अभी बेकारीका रोग गांवोंमें से गया नहीं है, अभी लोगोंने अस्पृश्योंको पूरी तरह अपनाया नहीं है, अभी लोगोंमें ग्राम-स्वराज्यकी सुन्दर व्यवस्था करनेकी क्षमता नहीं आअी है — अिस प्रकार सोचें तो हमें अेकके बाद अेक काम सूझते जायेंगे, और जैसे-जैसे सफलता मिलती जायगी वैसे-वैसे और नये काम निकालनेका अुत्साह बढ़ता जायगा।

अैसा करते हुअे देशमें हमारे विचारोंके अनुसार राज्य-परिवर्तन हो जाय और जनताके प्रतिनिधि देशका शासन-तंत्र संभाल लें तो? फिर तो हमारी नौकरी पूरी हो गअी न? फिर तो घर जाकर पेन्शन खाते हुअे आरामकी जिन्दगी बितानेका हमारा हक है न?

नहीं। हमें यह आशा भी नहीं रखनी है। क्योंकि वैसा राज्य-परिवर्तन हो जाय, तो भी गांव-गांवमें — जनताकी रग-रगमें तुरन्त स्वराज्य थोड़े ही व्याप्त हो जायगा? राज्य-परिवर्तन अितना ही करेगा कि आज तक जनताके विकासमें पग-पग पर जो विघ्न आते थे वे अब कम हो जायेंगे। तब हम जैसोंको अपना काम करनेमें अधिक सरलता होगी। लेकिन बरसात होनेके बाद बुवाअीका समय आने पर क्या किसान खेत छोड़कर आराम करने जा सकता है? वह तो अुसके लिअे सच्चा और अधिकसे अधिक काम करनेका अवसर है।

अिस प्रकार जो गांव हमारा सेवाक्षेत्र है, वह हमारे लिअे जीवनका सौदा ही है। जन्मका गांव हमें अीश्वरने दिया था; यह नया गांव हमने अपनी अिच्छासे, अपनी क्षमता देखकर, हमारे देशकी जरूरतका खयाल करके, हममें सेवा करनेकी — अपना सर्वस्व अर्पण करनेकी तमन्ना पैदा होनेके कारण पसन्द किया है। यह हमारी पसन्दका सेवाक्षेत्र है।

अैसा सेवाक्षत्र किसी विरले भाग्यवानके लिअे अपना जन्मका गांव भी हो सकता है। लेकिन सबको अैसा संयोग मिलना दुर्लभ है। जन्मका गांव वह हमारे लिअे भले ही न हो, किन्तु हम अुसे अपना मृत्युका गांव तो अवश्य बना सकते हैं। जो गांव हमारी सेवाका क्षेत्र बना, अुसकी सेवा करते करते अुसकी भूमिमें ही हम अपनी हड्डियां गिरायेंगे, अुसके लिअे जूझते-जूझते हम अपना बलिदान दे देंगे, अैसा संकल्प हम कर सकते है, और हमें करना चाहिये।

अैसा संकल्प करके सेवाक्षेत्रके गांवमें बस जायं, बुढ़ापेमें वापस घर जाकर पेंशन भोगनेका खयाल छोड़ दें, तो हमारी सारी मनोवृत्ति ही बदल जाय। फिर तो जैसे राजपूत केसरिया बाना पहनकर रणमें अुतर पड़ते थे, अथवा जैसे नौसेना अपनी संकट-कालकी नावें जलाकर शत्रुकी नौकाओं पर आक्रमण कर देती है, वैसा ही हमारा जीवन बन जाय। अब तो वहीं हमारा आराम, वहीं हमारा शौक, वहीं हमारे सगे-संबंधी, वहीं हमारा सब कुछ होना चाहिये।

अिसका अर्थ क्या? अिसका विपरीत अर्थ निकालना सरल है। अब अिसी गांवमें सदा रहनेका निश्चय कर लिया है, तो लाओ यहीं अपने सब सगे-संबंधियोंको ले आयें। यहीं अपने रहनेके लिअे सारी सुख-सुविधाओंवाला मकान भी बनवा लें। हमारे बच्चोंको अंग्रेजी पढ़नेकी मुश्किल होती है, अिसलिअे अपने प्रभावका अुपयोग करके यहीं अंग्रेजी पाठशाला भी खींच लायें। अिस युगमें नाटक-सिनेमाके बिना जीवन बिताना क्या मनुष्यका जीवन कहा जायगा? अिसलिअे हो सके तो नाटक-सिनेमाको भी यहां खींच लायें, और वह संभव न हो तो अन्तमें गांवकी सीमा पर रेल्वे स्टेशन बने या बस सर्विस शुरू हो, अैसी कोशिश तो जरूर करें।

यह वर्णन बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण और हंसी आने जैसा लगता है। लेकिन कम या ज्यादा प्रमाणमें क्या हम अैसा ही नहीं करते? महीने-पन्द्रह दिनमें शहरका चक्कर लगा

आयें, सिनेमा-नाटक वगैरा देख आयें, पढ़े-लिखे लोगोंके बीच अखबारों और साहित्यकी चर्चा कर आयें, शहरी खानपानका आनन्द लूट आयें और मोटरोंमें घूम आयें, तभी हमारे जीको शांति मिलती है। यह सब मिले बिना चार-छः महीने निकल जायं तो हमें अैसा लगता है, मानो कैदखानेमें बन्द कर दिये गये हैं। क्या हममें से बहुतोंको अैसा अनुभव नहीं होता? बच्चोंके लिअे अंग्रेजी पाठशाला तो सब कोअी गांवमें खींच कर नहीं ला सकते, लेकिन गांवमें बसकर ग्रामसेवाका ध्येय अपना लेने पर भी अपने बच्चोंको अंग्रेजी पढ़नेके लिअे शहरमें भेजना क्या अिससे मिलती-जुलती बात नहीं कही जायगी? सांसारिक प्रसंगों — बच्चोंकी शादियों जैसे प्रसंगों — पर क्या अभी तक हममें से बहुतेरे लोग अपने सगे-संबंधियोंके बीच नहीं दौड़ जाते?

लेकिन जैसा मैंने शुरूमें कहा, यदि हमने अपने क्षेत्रको सच्चे मनसे अपने जीवनका धाम बनाया हो, तो अुस गांवकी हर चीजके लिअे हमें मनमें गहरा प्रेम और आदर अुत्पन्न करना चाहिये। गांवके लोगों और गांवके वातावरणको हमें हर तरहसे प्रिय बना लेना चाहिये — अितना प्रिय कि थक जाने पर आरामके लिअे हमारा मन अुसकी ओर ही घूमे।

हमारा अपना घर हमेशा सुख-सुविधाओंसे भरा नहीं होता। अुस दृष्टिसे तो बहुतोंके घर हमारे घरसे ज्यादा अच्छे होते हैं। फिर भी अपने घरके बारेमें हमने कैसी धारणा बना ली है? घूम-फिरकर वहां आयें तभी हमारे मनको शांति मिलती है।

वही भावना हमें अपने गांवके लिअे अुत्पन्न करनी चाहिये। वहां सब तरहकी सुख-सुविधाअें हैं, या वहां सगे-संबंधी रहते हैं, या वहां सुन्दर साज-सामानवाला घर है, अिसलिअे वह हमें प्यारा नहीं है। वह सब प्रकारकी असुविधाओंका संग्रह-स्थान हो, वहां दरिद्रता और दुःखका निवास हो, तो भी हमारे मनको वहीं आनंद मिलता है, क्योंकि वह हमारा प्यारा गांव है। वहांके रास्ते भले ही घूरों जैसे हों, वहांके घर भले ही खंडहर जैसे हों, वहांके लोग भले ही गरीब और अशिक्षित हों, लेकिन जब हम अुस गांवके पेड़ देखते हैं, जब वहांके ढोर देखते हैं, जब वहांके परिचित लोगोंको देखते हैं, जब अुनकी वाणी हमारे कानोंमें पड़ती है, तभी हमारे हृदयको शांति मिलती है, परदेशसे स्वदेश लौटनेका आनन्द अनुभव होता है।

हमारे अपनाये हुअे गांवके प्रति अैसी भावना हमें अपने भीतर अुत्पन्न करनी चाहिये। अुसे अुत्पन्न करनेकी कुंजी यह है कि वहांके लोगोंके प्रति हम अपने अंतरमें अनन्त प्रेमका झरना बहायें। जहां हमारे प्रियजन बसते हों, वह गांव और घर हमारे लिअे अपने-आप प्रिय बन जाता है। मनुष्यको अपना घर और गांव प्रिय क्यों लगता है? वह सुघड़ और सुन्दर है अिसलिअे? हरगिज नहीं। परन्तु वहां हमारे प्रियजन रहते हैं अिसलिअे। घर और गांवका अर्थ आश्रय अथवा आश्रयोंका समूह नहीं, परंतु हमारे प्रियजन हैं। अुनके साथ जहां रहना हो अुसीको हम घर और गांव मानते हैं। वहां अुनके साथ रहनेका सुख मिलता है, अिसीलिअे वे हमें दूसरे घरों और गांवोंसे अधिक प्यारे हैं।

अत्र प्रियजन यानी प्रियजन। रूप हो तो अुसे प्रियजन कहें और रूप न हो तो निकाल दें, अैसा कोअी नहीं करता। प्रियजन पर गुणकी शर्त भी नहीं लगाअी जा सकती। कोअी बालक गुणहीन हो तो क्या मां अुसे फेंक देती है? अुलटे, दयाभावसे अुस पर वह अधिक प्रेम और अधिक सेवाकी वर्षा करती है। वैसे ही हमने मनमें निश्चय कर लिया है कि ग्रामवासियोंमें गुण हों, तो भी अुन्हें प्रियजन मानकर हम अुनकी सेवा करेंगे और गुण न हों तब तो अुन्हें अधिक प्रिय मानकर अधिक प्रेमसे हम अुनकी सेवा करेंगे। ग्रामवासियोंको हम अपने प्रियजन बना लें, तो हमारी सारी दृष्टि ही बदल जायगी। फिर गांवकी प्रत्येक वस्तु हमारे लिअे प्रिय हो जायगी, हमें सुन्दर लगेगी, हमारे थके-थकाये मनको आनन्द देनेवाली और निराशामें आशा दिलानेवाली मालूम होगी।

प्रवचन ५५

हमारे ग्रामगुरु

हमारी आजकी बातचीतका विषय मुझे अत्यन्त प्रिय है। आपको भी यह प्रिय लगे बिना नहीं रहेगा। आज हम अपने प्यारे ग्रामवासियोंके गुणोंका कीर्तन करनेवाले हैं।

सद्भाग्यसे हमारे देशकी ग्राम-जनतामें अैसे अपार गुण हैं, जिनके कारण हमारे अन्तरमें अुनके लिअे अपने-आप प्रेमका अुभार आता है। यह सच है कि वे दुखी, दरिद्र, कुचले हुअे और गुलामीमें जकड़े हुअे हैं और अिससे अुनके अनेक स्वाभाविक गुण आज दब गये हैं; फिर भी गुणग्राही सेवकोंकी आंखें अुनमें बहुतसे गुण देख सकेंगी।

अिसके सिवा, हम सेवक यद्यपि यह मानते हैं कि हम गांवोंकी सेवा करने, अुन्हें सुधारने, अुन्हें सिखानेके लिअे वहां जाते हैं — और यह गलत नहीं है; फिर भी हममें नम्रता और ग्रहण-शक्ति होगी, तो हमें खुद भी अुनसे बहुत कुछ सीखनेको मिल सकता है। यद्यपि गांवोंमें जड़ता और अज्ञान, फूट और स्वार्थवृत्ति तथा दलबन्दीकी भावना बेहद फैली हुअी है, फिर भी अुनके पास हम यदि प्रेम और सहानुभूति लेकर जायं, तो अुनसे हमें बहुत कुछ अैसा सीखनेको मिलेगा, जो हमें अपनी वर्तमान स्थितिसे अधिक अूंचा अुठायेगा, हमारे अंदरकी वर्तमान खराबियोंको सुधारेगा और अैसा काफी नया ज्ञान हमें देगा, जो हमारे पास नहीं होगा।

यह सुनकर आपको आश्चर्य होता है। आप मनमें अैसा सोचते हैं कि आज गांवके लोगोंका गुणगान करनेका संकल्प मैंने कर लिया है, अिसलिअे अतिशयोक्तिकी सीमा नहीं रहनेवाली है। आपको लगता है कि "गांवके लोगोंमें और बहुतसे गुण होंगे यह तो हम स्वीकार करेंगे, लेकिन आपका यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है कि अुनमें ज्ञान है। भारतकी ग्राम-जनताका अज्ञान, अुनकी जड़ता तो विश्व-विख्यात है। गुण-

गानके लिअे भी अुन्हें ज्ञानी कहनेकी हद तक जाना अेक तरहसे अुनकी हंसी करने जैसा है, किसी पागलको 'राजा' कहने जैसा है।"

आपको अैसा लगता हो तो भी मैं अपनी बात पर डटा रहूंगा। ग्रामवासियोंमें काफी ज्ञान भरा है। हम जैसे पुस्तक-पंडितोंके लिअे तो अुनके पास नये जानने योग्य ज्ञानका भंडार भरा रहता है। हम शिक्षित हैं और वे अशिक्षित, अिसलिअे हम अुनके शिक्षक बनकर गांवोंमें जाते हैं। लेकिन जब हम अुनके संपर्कमें आते हैं तब हमें मालूम पड़ता है कि वे अशिक्षित लोग अनेक बातोंमें हमारे गुरु बनने योग्य हैं।

हम ज्ञान लेने या देनेका — शिक्षणका — विचार करते हैं, तो हमारी दृष्टिके सामने केवल ककहरा पढ़ना और लिखना ही आता है। हम अपनेको शिक्षित और गांवके लोगोंको अशिक्षित मानते हैं, वह भी केवल अिसलिअे कि हमें यह कला आती है और अुन्हें नहीं आती।

हम अुन लोगोंको कुछ सिखानेका विचार करते हैं, तब कक्का सिखानेके सिवा और कुछ हमें शायद ही सूझता है। यही अेक बात हमें अुनसे अधिक आती है। अपनी पाठशालाओंमें हमने और भी बहुत कुछ सीखा होता है। देश-विदेशका अितिहास और भूगोल, गणित और भूमिति, तथा पदार्थ-विज्ञान, रसायनशास्त्र, प्राणीशास्त्र, वनस्पति-शास्त्र, खगोलशास्त्र जैसे विज्ञानोंके बारेमें भी थोड़ी-बहुत शिक्षा हमें मिली होती है। लेकिन हमारे दिमागमें अेक विचित्र भ्रम घुसा रहता है कि हमारा यह ज्ञान अिन अशिक्षित लोगोंके सामने प्रगट करना भैंसके आगे बीन बजाने जैसा है; अंग्रेजी आये बिना यह सारा ज्ञान मनुष्य कैसे समझ सकता है? और अंग्रेजी शब्दोंका प्रयोग किये बिना हम भी अुन्हें कैसे समझा सकते हैं? अिसलिअे अशिक्षित लोगोंको जबरदस्ती बैठाकर अुन्हें अक्षरज्ञान देनेकी बात ही हमें सूझती है।

अपने मनमें हम अुन पर तरस खाते रहते हैं कि कब वे कक्का सीख जायंगे, आगे चलकर कब अंग्रेजी सीखेंगे और कब गांवठी मिटकर सभ्य लोगोंकी श्रेणीमें आयेंगे। हम अुन्हें कक्का सिखाने बैठते हैं, तब भी हमारे मनमें बड़ी निराशा ही होती है।

"शायद बेचारे मातृभाषाकी दो पुस्तकें पढ़ना सीख जायंगे, लेकिन अिससे अुन्हें क्या लाभ होनेवाला है? सच्चे शिक्षित तो वे तभी बन सकते हैं जब तेजीसे अंग्रेजी पढ़ सकें और बोल सकें। अितना वे कब पढ़ेंगे और हम कब पढ़ायेंगे?" हमारा प्रयत्न हमें व्यर्थ जाने जैसा लगता है।

लेकिन यदि हमें आंखें हों और जहां जिस रूपमें ज्ञान मिले वहांसे अुसे ग्रहण करनेके लिअे हमारी बुद्धि लालायित रहती हो, तो हम तुरन्त समझ जायंगे कि ग्रामवासी भले ही अशिक्षित हों, फिर भी अुनसे हमें ज्ञानका भंडार मिल सकता है। गांवोंमें विविध धंधे करनेवाले लोगोंको अुन धंधोंका अच्छा ज्ञान होता है। किसान, बुनकर, बढ़अी, लुहार, राज, कुम्हार, ग्वाले, रबारी, चमार, मोची आदि सभी अपने-अपने कामके अच्छे जानकार होते हैं। हम केवल पढ़ना-लिखना ही सीखे होते हैं। हमें

पाठशालाओंमें किसी प्रकारकी कला या कारीगरीका अनुभव प्राप्त नहीं होता। अतः हमारे लिअे तो वे सचमुच हर प्रकारसे गुरु बनाने लायक ही होते हैं।

जब हम यह देखते हैं कि किसानोंको अपने अनुभवसे फसलों, जमीन तथा अलग अलग ऋतुकी खेतीके बारेमें कितनी जानकारी होती है, तो हम आश्चर्यमें डूब जाते हैं। अैसा ही आश्चर्य हमें अन्य ग्राम-कारीगरोंके कामोंसे हुअे बिना नहीं रहेगा। वे पाठशालाके शिक्षकोंकी तरह हमें टाटपट्टी पर बैठाकर, हाथमें किताब देकर और स्वयं काले तख्तेके सामने खड़े होकर यह ज्ञान नहीं देंगे। लेकिन अगर हमें ज्ञानकी भूख हो, तो जिस जगह वे काम करते हों वहां जाकर हमें अुनके साथ काममें जुट जाना पड़ेगा। अुन्हें नम्रतासे प्रश्न पूछने होंगे। वे समय-समय पर बातचीतके दौरानमें अपने अुद्योगोंका भेद सूत्रमय भाषामें हमारे सामने खोलते जायंगे।

लेकिन अुनके ज्ञानकी तिजोरी कब खुलेगी, यह आप जानते हैं? जब हम अुनके साथ जुड़कर अुनका अुद्योग करने लगेंगे तभी। वे देखेंगे कि स्वयं तो कैसे हंसते-खेलते और सफाअीसे अपना काम करते हैं और हमारे तालीम न पाये हुअे हाथ-पैर ठूंठकी तरह मुड़ते ही नहीं है; यह दृश्य देखकर अुन्हें हम पर दया आयेगी, और दयाके अैसे किसी क्षणमें वे अपने ज्ञान-भंडारका अेकाध सूत्र हमें दे देंगे।

लेकिन हम तो ठंडी छायामें बैठकर केवल अुनसे प्रश्न ही पूछते रहेंगे। अनुभवके अभावमें प्रश्न भी हमें ठीकसे पूछते नहीं आयेंगे। अिससे हमारे गुरु तुरन्त हमसे अूब जायंगे, और अपने ज्ञान-भंडारका द्वार बंद कर देंगे। अुन्हें लगेगा कि हम केवल मजाक और कुतूहलकी वृत्तिसे प्रश्न पूछा करते हैं। यह अुन्हें निकम्मोंका लक्षण लगेगा। मनमें वे सरल भावसे सोचेंगे कि अगर हमें सच्ची जिज्ञासा है, तो हम अुनके साथ काममें क्यों नहीं जुट जाते? शायद मुंहसे वे अैसा नहीं कहेंगे, लेकिन ज्ञान देनेके लिअे अुनका मुंह भी हमारे सामने नहीं खुलेगा।

अिस तरह ग्रामगुरुओंसे हमें ज्ञान प्राप्त करना हो, तो अुनकी पद्धतिसे ही अुनकी पाठशालामें हमें सीखना चाहिये। हमारे अनघड़ हाथोंमें जैसे-जैसे कारीगरी आती जायगी और ग्रामगुरुओंका मुंह खुलता जायगा, वैसे वैसे हम समझते जायंगे कि हमारी वैज्ञानिक पुस्तकोंके सिद्धान्त हमें पग-पग पर अुनकी शिक्षामें मिलते हैं। अिसके अलावा, यदि हम केवल परीक्षा पास किये हुअे पंडित नहीं होंगे, बल्कि सच्चे अर्थमें शिक्षित होंगे, तो हमारे मनमें अुन अुद्योगोंके बारेमें अधिक जाननेकी अिच्छा अुत्पन्न होगी; अुनसे संबंधित पुस्तकोंका हम अध्ययन करेंगे, और अुनमें से हमारे ग्रामगुरुओंकी जरूरतकी बातें ढूंढ़-ढूंढ़ कर अुन्हें देते जायेंगे। जो लोग ग्रामवासियोंके लिअे अक्षरज्ञानकी पाठशालायें खोलते हैं, वे अुन्हें नया सीखनेके लिअे बहुत मंदबुद्धि ठहरा देते हैं। लेकिन अिस प्रकार अुन्हें नया ज्ञान देते समय हमें अनुभव होगा कि वे अुसी आतुरतासे नये ज्ञानको पीते हैं, जिस आतुरतासे प्यासा आदमी पानी पीता है।

अब ग्रामवासियोंके लिअे हमारे मनमें आदर और प्रेम अुत्पन्न करे अैसा अुनका अेक और गुण आपको बताता हूं। हम ग्रामसेवक अपनेको स्वदेशी-धर्मके अुपासक

मानते हैं और अुस धर्मको गांवोंमें फिरसे स्थापित करना चाहते हैं। अिसीलिअे हम चरखा और अन्य ग्रामोद्योगोंकी बात लेकर वहां जाते हैं।

यदि हमें आंखें होंगी तो हम देखेंगे कि यद्यपि गांवों पर विदेशीका जोरदार हमला होता रहता है, फिर भी वहांके लोगोंके खूनमें से स्वदेशी-धर्मका पूरी तरह नाश नहीं हुआ है। वंश-परंपरासे वह अुनमें अुतरता चला आया है। स्वदेशी-धर्मके लिअे अुन्हें स्वाभाविक आदर है। अुसका भंग होते देखकर अभी भी अुनका मन दुःखी हो जाता है।

हमें किसी भी चीजकी जरूरत पड़ी कि हमारे पैर सीधे बाजारकी ओर मुड़ जाते हैं। यह दूसरी बात है कि बाजारमें जाकर हम स्वदेशीके अुपासक होनेके कारण खूब पूछताछ करके स्वदेशी वस्तु ही लेनेका आग्रह रखेंगे। लेकिन गांवके आदमीको जब किसी चीजकी जरूरत पड़ती है तब वह क्या करता है? वह बाजारकी तरफ देखता ही नहीं। अुसे पहला विचार यही आता है कि यह चीज मैं अपने हाथसे ही बना लूं। अुसके लिअे जरूरी कच्चा माल वह अपने आसपास ही कहींसे ढूंढ़ निकालता है। अुसे बनानेके लिअे कोअी औजार जरूरी हो तो अुसे भी वह किसी घरेलू चीजकी मददसे अपनी सूझ-बूझ द्वारा बना लेता है और अपनी जरूरतकी चीज खड़ी कर लेता है। वह चीज बनानेमें कोअी कठिनाअी हो, जरूरी कच्चा माल आसपास न मिल सकता हो, या बनानेके लिअे अुसके पास समय न हो, तो वह यथासंभव अुस चीजके बिना चला लेता है और कठि-नाअी भोग लेता है। अुसके स्वभावमें स्वदेशीकी अैसी गहरी जड़ें जमी हुअी हैं।

आज दियासलाअीका गांवों पर कितना भारी हमला हो रहा है? फिर भी गांवके लोग अभी तक चूल्हा जलानेके लिअे पड़ोसीके चूल्हेसे आग ले आते हैं, और अेक दीया जलने पर अुसमें से पास-पड़ोसके कितने ही दीये जल जाते हैं। आज भी अुन्होंने चकमकको बिलकुल भुलाया नहीं है। रस्सीकी जरूरत पड़ने पर वे यहां-वहांसे सन या भिंडी या अैसा ही कोअी दूसरा रेशा तलाश करके अुसकी रस्सी तैयार कर लेते हैं। चटाअीकी जरूरत पड़ती है, तो कहींसे घास या नारियल अथवा ताड़के पत्ते बीन लाते हैं और अपने हाथसे चटाअी बुन लेते हैं। कपड़े धोनेके लिअे हमारी तरह साबुन खरीदने बाजार दौड़ना अुनके स्वभावमें नहीं है। वे गांवकी सीमा पर जाकर खारी मिट्टी खोद लाते हैं, अथवा अरीठे या हिंगोट तोड़ लाते हैं। बीमारीमें दवाकी जरूरत पड़ने पर हम यदि स्वदेशीके बहुत आग्रही हुअे तो देशी वैद्यके पास दौड़े जाते हैं या किसी देशी कारखानेकी दवा ले आते हैं। लेकिन ग्रामवासियोंको अैसे समय क्या सूझता है? वे आसपाससे कोअी वनस्पति तोड़ लाते हैं या कोअी जड़ीबूटी खोद लाते हैं।

सभी चीजें हाथसे बनाना संभव नहीं होता। हाथसे न बनाअी जा सकनेवाली किसी चीजकी जरूरत पड़ने पर वे गांवका ही कोअी कारीगर ढूंढ़ते हैं। नअी सभ्यताके जालमें फंसे हुअे अुनके लड़के अपने गांवके दर्जी या मोचीकी ओर ध्यान न देकर दूसरे गांवसे कपड़े, जूते वगैरा सिलवा लाते हैं, तो अुनका स्वदेशी स्वभाव दुःखी हो जाता है। वे अैसा मानते हैं मानो कोअी बड़ा पाप हो गया हो। गांवका कारीगर खाली न हो

और अुसके पास चीज तैयार न हो, तो वे स्वयं कठिनाअी अुठा लेते हैं, अुसके बिना चला लेते हैं, लेकिन पैसा खर्च करके चाहे जहांसे ले आनेकी जल्दी वे नहीं करते। और बहुत बार अिस तरहकी चीजें भी जैसी बनाते आये वैसी खुद ही बना लेना अुन्हें अच्छा लगता है।

हम गांवमें पहले-पहल चरखा लेकर जाते हैं, तब अिस नअी वस्तुके प्रति अपना आकर्षण वहांके लोग किस तरह बताते हैं, यह देखने जैसा होता है। वास्तवमें चरखा गांवकी चीज है, लेकिन मिलोंका गांवों पर अितना भयंकर आक्रमण हो चुका है कि आज चरखा वहांके लिअे अेक नअी वस्तु बन गया है! हम देखेंगे कि अुन लोगोंके स्वदेशी स्वभावको वह तुरन्त पसंद आ जाता है। घरका कपड़ा घरमें बना लेनेका विचार ही अुन्हें सीधा, सच्चा और अिसीलिअे आकर्षक लगता है। कुछ लोग तुरन्त बाड़ेमें से लकड़ीके टुकड़े ढूंढ़कर ले आते हैं और हंसियेसे चरखा बनाने लग जाते हैं। कोअी अधिक सादी बुद्धिवाले लोग तकली बना लेते हैं, खेतमें से थोड़ासा कपास बीनकर तार निकालने लगते हैं और हमें अुत्साहसे अपना नया सर्जन दिखाते हैं। कोअी कोअी तो करघा, जो जरा अधिक कारीगरीवाला यंत्र है, बना लेनेकी हद तक भी जाते देखे गये हैं। अुनका स्वदेशी दिमाग अिस रास्तेसे ही चलता है। लेकिन हम यह आशा लगाये बैठे रहते हैं कि वे हमें तैयार चरखा ला देनेको कहेंगे, और यदि अुनकी तरफसे अैसा आर्डर तुरन्त न मिले तो हम मनमें निराश हो जाते हैं; और ग्रामवासियोंका स्वदेशी दिमाग जिस दिशामें काम करता है, अुस दिशामें हम अपनी अधीरताके कारण रस या अुत्साह नहीं दिखाते और अुन्हें प्रोत्साहन नहीं देते।

यह सच है कि गांवके लोगोंमें स्वदेशीके लिअे राष्ट्रीय दृष्टि नहीं होती। वे अितना तो जानते हैं कि पुराने जमानेमें लोग घर-घरमें अपने हाथसे ही सूत कातते थे और गांवमें ही कपड़ा बुन लेते थे। लेकिन अिस कला-कारीगरीका नाश कब हुआ, कैसे हुआ, किस देशके कपड़े हिन्दुस्तानको पहनने पड़े, देशी मिलोंका कपड़ा भी सच्चे अर्थमें स्वदेशी क्यों नहीं कहा जा सकता, स्वदेशी-धर्म छोड़ा अिसीलिअे हमने स्वराज्य कैसे खोया, स्वदेशीकी फिरसे स्थापना करनेके लिअे देशमें कैसे कैसे प्रयत्न आज तक हुअे हैं — ये सब बातें हमें अुन्हें कहनी होंगी। कपड़ेके बारेमें ही नहीं, लेकिन अूपर बताये गये दियासलाअी, रस्सी, साबुन, दवाओं आदिके धन्धे, लोहे और फौलादके धंधे, रंगाअी और छपाअीके धंधे, जहाजरानीका धंधा — सब कैसे नष्ट हो गये और अुन्हें फिरसे कैसे सजीव किया जाय, यह सब भी अुन्हें राष्ट्रीय दृष्टिबिन्दुसे समझाना होगा। अुनकी खेतीमें भी सब अपने अपने घरका ही विचार करने लगे और किसीको राष्ट्रीय विचार नहीं सूझे, अिससे खेतीकी कैसी तबाही हुअी और आज भी हो रही है, यह भी हमें अुन लोगोंको समझाना पड़ेगा। हमारी अुन बातोंको वे अुसी तरह तुरन्त ग्रहण कर लेंगे, जिस तरह मछलियां पानीमें डाली हुअी आटेकी गोलियां तुरन्त पकड़ लेती हैं। स्वदेशीकी जड़ें तो अुनके स्वभावमें जमी ही हुअी हैं। हम प्रेमसे अुन्हें सींचेंगे, तो अुनमें से नये डाल-पत्ते फूट आयेंगे।

ग्राम-जनतामें परस्पर सहायता करनेका गुण भी अितने सुन्दर रूपमें काम करता है कि अुसे देखकर हम अुनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। हम पढ़े-लिखे लोग पड़ोसमें कौन रहता है यह भी नहीं जानते, विपत्ति या आफतमें पड़ोसियोंकी सहायता करने जाना तो दूर रहा। गांवके लोगोंका बरताव अिस तरह अपने-आपमें केन्द्रित, स्नेह-विहीन या सहानुभूति-हीन नहीं होता।

गांवमें घरों पर छप्पर डालनेका मौसम आता है, तब सारा गांव अुस काममें जुट जाता है। अुस समय क्या हरअेक घर पर अुसी घरके व्यक्ति काम करते हैं? नहीं। हम देखें तो मालूम पड़ेगा कि वहां परस्पर सहायता करनेवाली छोटी-छोटी टोलियां बनी हुअी होती हैं। सारी टोली पहले अेक घर पर छप्पर डालती है, फिर दूसरे घर पर, फिर तीसरे पर। अिस तरहका परस्पर सहयोग सब घरों पर छप्पर छा जाने तक चलता रहता है।

और सब घरोंमें मनुष्योंकी शक्ति अेकसी नहीं होती। किसी-किसीके पास साधनोंका भी पूरा संग्रह नहीं होता। किसी घरमें अकेला ही आदमी होता है, जो बीमार पड़ा होता है। किसी घरमें सिर्फ छोटे बालक होते हैं, जिन्हें अुनके मां-बाप निराधार छोड़कर मर गये हैं। फिर भी किसीका काम बाकी नहीं रहता। कौन कितना घाटेमें रह गया और किसे कितना लाभ हुआ, अिसका कोअी हिसाब नहीं लगाता।

शहरी लोग अिस तरह परस्पर सहायता करनेके लिअे निकलेंगे ही नहीं, और निकलेंगे भी तो पहलेसे ही सारा हिसाब रुपया-आना-पाअीमें लिखने बैठ जायंगे। अिससे कितने ही गरीब और निराधार लोगोंकी लज्जा चली जाती है। गांवके लोगोंका स्वभाव ही अैसा है कि वे सबको ढंक लेते हैं, संभाल लेते हैं। अिसमें किसीने किसी पर अुपकार किया है, अैसा भी वे नहीं मानते।

गांवका मुख्य अुद्योग खेती-बाड़ीका है। अिसमें यदि परस्पर सहायता करनेका गुण अुन लोगोंमें न हो और सारा व्यवहार पैसेके जोर पर चले, तो कितने ही लोगोंकी खेती नष्ट हो जाय। बैलोंकी जोड़ीको पूरे साल पाल सकें, अैसी शक्ति सबकी नहीं होती। अैसे लोग अेक बैल रखते हैं और अेक-दूसरेको बैलकी मदद देकर अपना काम चला लेते हैं। गांवोंमें अैसे बहुतसे अुदाहरण मिलते हैं। फिर फसल-कटाअी, कपास-बिनाअी, बुवाअी, घास-कटाअी जैसे काम निकलते हैं, तब प्रत्येक किसानको कअी आदमियोंकी जरूरत पड़ती है। परन्तु घर-घरमें अितने आदमी कैसे हो सकते हैं? पैसा खर्च करके मजदूर लाने हों, तो भी कुछ गरीब स्थितिवाले अुतनी शक्ति नहीं रखते। परन्तु गांवके अेकजीव और अेक-कुटुम्ब जैसे रहनेवाले लोग सहकारी मंडलियोंमें निकल पड़ते हैं और सबका काम अच्छी तरह पार लग जाता है, किसीका काम रुकता नहीं।

गांवोंमें भी जो व्यापारकी दृष्टिसे खेती-बाड़ी वगैरा धंधे करते हैं, वे सारा हिसाब पैसोंमें ही गिनते हैं। अिसलिअे अैसा सुन्दर व्यवहार अुनमें कभी देखनेको नहीं मिलता। लेकिन गरीब वर्गके किसान, जो अपनी मेहनतसे खेती करते हैं, अपनी जरूरतकी चीज अुत्पन्न करनेकी दृष्टिसे माल पकाते हैं, और जिनके पास जमीन और साधन भी

अपनी आवश्यकता जितने ही हैं, अुनमें अभी तक अैसा सुन्दर व्यवहार और स्वभाव काफी मात्रामें देखनेको मिलता है।

हम सेवकोंके लिअे तो अैसे ग्रामवासी अनेक प्रकारसे अुपयोगी होते हैं — खास तौर पर हम नये-नये गांवमें रहनेके लिअे जाते हैं, तब यदि कोअी ग्रामवासी सज्जन हमारे लिअे रहनेकी जगह दे देते हैं, तो अुसे लीपने-पोतनेके लिअे बिना कहे गांवकी बहनें निकल पड़ती हैं। लोग अिकट्ठे होकर हमारे लिअे झोंपड़ी या मंडप बना देते हैं। अिसमें किसने कितना सामान दिया, किसने कितनी मेहनत की और किसने कितना अुपकार किया, अिसका हिसाब करनेकी बात किसीको स्वप्नमें भी नहीं सूझती।

लोगोंका यह गुण निजी मामलों तक ही सुरक्षित रहा है। लेकिन देशके रीति-रिवाज बहुत बदल जानेसे और 'यथा राजा तथा प्रजा' हो जानेसे सार्वजनिक कामोंमें वह जितना चाहिये अुतना आज प्रगट नहीं होता। गांवके तालाब पहलेकी तरह समय-समय पर खोदे नहीं जाते, कुअें साफ नहीं किये जाते, बांध बांधे और मरम्मत नहीं किये जाते, पगडंडियों और रास्तोंकी कोअी देखरेख नहीं रखता, जो धर्मशालाअें और मंदिर पुराने लोग बनवा गये हैं अुनकी रक्षाके लिअे प्रयत्न नहीं किया जाता। पहले तो यह सब काम गांवके ही लोग अिकट्ठे होकर परस्पर सहायताके अपने गुणसे कर डालते थे। आज अैसे कामोंके लिअे अुन्हें सरकारकी ओर ताकते रहनेकी आदत पड़ गअी है। अुनमें अेक प्रकारका आलस्य भर गया है। यह सब करनेकी आदत छूट गअी है। फिर भी कोअी आगे बढ़ कर पुकार अुठाता है, तो खूनमें रहा अुनका पुराना गुण तुरन्त झलक अुठता है और वर्षोंसे अुपेक्षित दशामें पड़े हुअे गांवके कामोंको लोग आनन्दपूर्वक कर डालते हैं।

सेवकोंको अैसे प्रेमी लोगोंसे निजी सेवा करवानेमें बहुत संकोच रखना होगा। परन्तु सार्वजनिक कामोंमें ग्रामजनोंके अिस गुणका फिरसे अुपयोग करनेमें सेवकोंको अपनी सारी कलाका प्रयोग कर दिखाना होगा। अैसे कितने ही काम हमने अूपर गिना दिये हैं। अुसी तरह गांवकी गलियां और सीमा साफ करनेके लिअे अुनकी सह-कारी टोलियां खड़ी की जा सकती हैं, पेड़ लगानेका काम किया जा सकता है, गांवके चरागाहोंमें कंटीले पेड़ बढ़ गये हों तो अुन्हें साफ किया जा सकता है। गांवके आसपास गढ़े हो गये हों और अुनमें पानी भरकर मच्छर पैदा होते हों तथा अिसके परिणामस्वरूप मलेरिया बुखार गांवका पीछा न छोड़ता हो, तो लोगोंको यह स्थिति समझाकर गढ़े भरवानेका आयोजन किया जा सकता है। अैसे बहुतसे काम आज लोगोंके हाथ या कुदाल न लगनेके कारण मृतप्राय स्थितिमें पहुंचे हुअे दिखाअी देते हैं।

बहुतोंकी अिस परसे यह धारणा बन जाती है कि गांवके लोग आलसी हैं, अिसीलिअे अैसा होता है। लेकिन सार्वजनिक कामोंमें सदा आगे बढ़कर मार्ग दिखानेवाला कोअी निःस्वार्थ सेवक होना ही चाहिये। अैसे सेवक मिल जाते हैं तब ग्रामवासियों जैसे लगनवाले और मेहनती लोग दूसरे शायद ही देखनेमें आते हैं।

प्रवचन ५६

आलसीपनकी जड़ें

गांवोंकी जनताके गुण तो जिसके पास देखनेके लिअे सहानुभूतिवाली आंखें होंगी अुसीको दिखाअी देंगे; अन्य लोगोंको वह जनता अवगुणोंका भंडार ही दिखाअी देगी। गांवोंमें दरिद्रताके बादलोंकी अितनी घनघोर घटा छायी रहती है कि अुनके आरपार होकर गुणोंकी किरणें दिखाअी देना सरल नहीं है।

अुनका सबसे बड़ा अवगुण, जो सबकी नजरमें आता है, अुनका आलसीपन है। अुनका शरीर जितना आलसी है अुसकी अपेक्षा अुनका मन अधिक मंद या जड़ देखनेमें आता है। अपने काम-धंधेमें अुन्हें जैसे कोअी रस ही नहीं होता; जो काम किये बिना चल ही नहीं सकता अुसे वे बेगारकी तरह कर लेते हैं। तब फिर सार्वजनिक कामोंमें अुत्साहसे भाग लेते वे कैसे दिखाअी दें? अुनके अिस मन्द स्वभावका परिचय सेवकोंको अच्छी तरह मिल जाता है, और अिस कारण बहुतसे सेवक गांवकी जनता और देशकी स्वतंत्रताके बारेमें निराश हो जाते हैं।

लेकिन गांवके लोगोंमें आलस्य है, अैसा कह कर निराश होना, अुन्हें छोड़ देना, क्या हम सेवकोंके भी आलसीपनकी निशानी नहीं है? गांवोंमें आलस्य तो है, लेकिन अुसकी जड़ कहां है, यह खोजना हमारा कर्तव्य है। अिसकी खोज करें तो हम देखेंगे कि लोगोंका यह अवगुण अुनकी परिस्थितियोंका फल है। वैसी परिस्थितियोंमें अच्छेसे अच्छे मनुष्य भी अुनके जैसे आलसी बने बिना रह नहीं सकते। खोज करेंगे तो हमें यह भी मालूम होगा कि अुनके अिस अवगुणका थर हटाया जा सके, तो अुसके नीचे गुणोंके रत्न छिपे होते हैं।

पहली बात तो यह है कि विदेशी और शहरी कारखानोंके आक्रमणसे गांवोंके धंधे बंद हो गये हैं और मुहल्लेके मुहल्ले बेकार हो गये हैं। बुनकरोंकी बस्तीको देखिये, चमारोंकी बस्तीको देखिये, कुम्हारोंकी बस्तीको देखिये, ग्वालोंकी बस्तीको देखिये, रंगरेजों और छपाअी करनेवालोंकी बस्तीको देखिये। सब बेकार और सूनी हो गयी हैं। अेक समय ये ही बस्तियां और मुहल्ले अुद्योग-धन्धोंसे कैसे गूंज अुठते थे! वहांके पुरुष, स्त्री और बच्चे भी काममें कैसे मशगूल रहते थे! आज कुछ साहसी लोग गांव छोड़कर देश-विदेशमें निकल गये हैं, दूसरे खेतीके मजदूर बन गये हैं। लेकिन खेती भी कितनोंके निर्वाहका भार अुठाये? अिस तरह आ पड़नेवाली अनिवार्य बेकारीके कारण लोगोंका अुद्योगी स्वभाव मिट गया है। अिस कारण-परंपरामें गहरे न अुतरें और ग्रामवासियोंको आलसी कह कर अुनका तिरस्कार करें, तो हम अपना सेवक-धर्म कैसे निभा सकते हैं? वास्तवमें हमारा मुख्य काम गांवोंकी यह बेकारी दूर करना ही है।

दूसरा कारण है अिस नये जमानेका अप्रामाणिक पैसा-व्यवहार और सरकारके पक्षपातपूर्ण कानून। आज चीजोंके बजाय रुपया बड़ा बन बैठा है। अक्लमन्द लोगोंने

रुपयेका लालच दिखाकर गांवोंके सारे व्यवहारको बिगाड़ दिया है। खेतीको अन्न पैदा करनेका साधन न रहने देकर रुपया कमानेके व्यापारका अेक साधन बना दिया गया है। किसानोंके साथ साहूकारोंका लेन-देनका व्यवहार तो पहलेसे ही चला आता था। लेकिन जबसे रुपयेका महत्त्व बढ़ा है, तबसे अुनकी साहूकारीमें असत्यका जहर मिल गया है और लेन-देनमें छल-कपट करके साहूकारोंने भोले, सादे, विश्वासी लेकिन अपढ़ किसानोंको तबाह करके अुनकी जमीनें अपने नाम पर करा ली हैं। कानून लोगोंकी रक्षा कर सके अैसी स्थिति भी वे रहने नहीं देते। कानूनी दृष्टिसे आवश्यक खाता तैयार करके और अुस पर सरकारी स्टाम्प लगाकर विश्वासी किसानोंसे अंगूठा लगवा लेनेमें वे कभी लापरवाही नहीं करते। और कोअी न्यायालयमें अपना बचाव करने जाय, तो रुपयेके बलवाले साहूकारको अुसे हरानेके बहुतसे रास्ते मालूम होते हैं।

दूसरी ओर, किसान भी रुपयेके लालचमें पड़कर जरूरतकी चीजें अुगानेकी ओर दृष्टि नहीं रखते, और पैसा लानेवाली फसल ही पैदा करते हैं। किसान माल पैदा करके व्यापारियोंको बेचने जाता है और फिर अुन्हींसे अपनी जरूरतकी चीजें खरीदता है। अिस तरह दोनों ओरसे अुसके सिर पर करवत चलती है।

अिस स्थितिके परिणामस्वरूप आज गांवोंमें क्या देखनेमें आता है? अधिकांश जमीन अैसे लोगोंके हाथमें चली गअी है, जो रुपयेके लिअे ही अुसमें खेती करते हैं। वे भला गांवकी जरूरतोंका विचार करनेका अुत्तरदायित्व क्यों स्वीकार करें? "हमारे खेतमें हमने अन्न पैदा नहीं किया, तो क्या बाहरसे नहीं लाया जा सकता? जिसके पास पैसा होगा वह अनाज आदि जो भी चाहिये खरीद लायेगा और जिसके पास पैसा नहीं होगा वह भूखों मरेगा; अिसमें हम क्या करें?" वे तो अिसी प्रकार दलील करेंगे? परिणाम यह हुआ है कि खेत मेहनत करनेवाले सच्चे किसानोंके हाथमें नहीं रहे। वे जमीन-जायदादके अभावमें निरे मजदूर बन गये हैं। दूसरोंके खेतोंमें जितने दिन काम मिल जाय अुतने दिन मजदूरी करने जाते हैं। लेकिन अधिकांश दिन अुन्हें बेकारीमें गुजारने पड़ते हैं। अैसी स्थितिमें अुन्हें आलसी कहकर हम अुनकी निन्दा कैसे कर सकते हैं? अुद्योग-धंधा है ही कहां, जिस पर वे मेहनत करें?

लेकिन अल्प दृष्टिवाले लोग शहरोंकी ओर अुंगली अुठाकर कहते हैं: "गांवोंमें जितने बेकार हों वे सब शहरोंमें जाकर किसी अुद्योगमें क्यों नहीं लग जाते?" कुछ लोग शहरोंकी ओर खिंच जाते हैं; लेकिन वहां भी आखिर कितने लोग समा सकते हैं? शहरोंमें बड़े-बड़े कारखाने दिखाअी देते होंगे, लेकिन कारखानोंका अर्थ है बहुतसे लोगोंका काम मशीनोंकी सहायतासे थोड़े लोग करें। अिसलिअे कुल मिलाकर कारखाने भी लोगोंको बेकार बनानेका ही धंधा करते हैं। अिसके सिवा, सारे हिन्दुस्तानके सब कारखाने मिलकर कितने लोगोंको रोजी दे सकते हैं, यह आप जानते हैं? बीस लाखसे ज्यादाको नहीं।

गांवके लोग आलसी, ढीले और निरुत्साही दिखाअी दें, तो अुसका तीसरा कारण अुनकी विकराल दरिद्रता है। अिस देशके लोग खानपानकी दृष्टिसे आज जितने

दुखी हैं, अुतने पहले कभी नहीं थे। चारों ओरसे अुन्हें चूसनेके लिअे नल लगा दिये गये हैं। (विदेशी) राज्य सबसे बड़ा पम्प है और भारतमें अुसके अस्तित्वका प्रजाको चूसनेके सिवा और कोअी अुद्देश्य हो ही नहीं सकता। अुसके सीधे करोंके सिवा विदेशी और देशी व्यापार-रोजगारके अनेक नल अुसकी मदद करनेको लगे हुअे हैं। यह चूसनेका काम दिन पर दिन बढ़ता जाता है, और देशसे जो धन जाता है अुनमें से वापस तो कुछ आता ही नहीं है।

पगड़ीका बल अंतमें सिरे पर आता है, अिस कहावतके अनुसार अन्तमें अिसका असर लोगोंकी खुराक पर पड़ता है। कअी दिन तक केवल कांजी पर जीनेवाले करोड़ों लोग — जिन्हें दूध-घीकी तो बात ही क्या, छाछकी बूंद भी कभी कभी ही मिलती है और जिन्हें किसी किसी दिन नमकके बिना भी काम चलाना पड़ता है — अिस भारतमें ही हैं। विश्वके और किसी देशमें शायद ही अितने कंगाल लोग होंगे। अिससे अुनके शरीरमें ताकत नहीं रह गअी है। गांवमें जहां जायें वहां कितने ही लोग अशक्त और बीमार दिखाअी देते हैं। अैसी स्थितिमें जिन्हें वर्षोंसे रहना पड़ रहा है, वे लोग यदि निराश हो जायं, भयभीत हो जायं, किसी मनुष्य या अीश्वर पर अुन्हें थोड़ी भी आस्था न रह जाय, तो क्या अिसमें अुनका दोष है? अैसी घोर दरिद्रताके कारण ही हमारे ग्रामवासी संकुचित मनोवृत्तिवाले हो गये हैं और आपसके झगड़े-टंटोंमें फंसे रहते हैं। अुनके दुर्बल अंगोंमें काम करनेका आलस भर गया है और अिससे अुनके मनमें भी कोअी अुत्साह नहीं रह गया है। अिसीलिअे अुन्हें किसी नअी बातमें रस नहीं आता। अुन्हें जीनेमें ही कोअी रस नहीं रह गया है — वे मृतप्राय होकर जीते हैं।

अैसी स्थितिमें भी सेवक देखेंगे कि जब हम अुनके प्रति अपने हृदयका सच्चा प्रेम प्रगट करते हैं, जब अुन्हें यह विश्वास हो जाता है कि हम लोग अुनकी स्थितिको सुधारनेका प्रयत्न करनेवाले अुनके सेवक हैं, अुन्हें चूसनेवाले नये कपटी सफेदपोश ठग नहीं हैं, तो अुनके बंद हुअे हृदय-कमल खिलने लगते हैं। थोड़े ही समयमें अुनके भीतर नवजीवनका संचार होने लगता है, और वे अुत्साह तथा परिश्रमकी वृत्ति भी अच्छी मात्रामें प्रगट करते हैं। पालेसे लगभग जली हुअी वाड़ीमें कुदरतकी कृपासे फिर नअी कोंपलें फूटते कोअी किसान देखे, तो अुसका हृदय कितना प्रसन्न हो अुठता है? गांवोंमें जानेवाले सेवकोंको अैसा ही अुत्साहप्रद दृश्य वहां देखनेको मिलता है, और यह देखकर अुनका सेवा करनेका रस खूब बढ़ जाता है।

प्रवचन ५७

भयोंका भय

गांवके लोगोंके सिर पर आलसी होनेका जो आरोप है, अुससे भी बड़ा आरोप अुन पर डरपोकपनका है। यह दोष सिर्फ ग्रामवासियोंमें ही हो अैसी बात नहीं है; शहरी और पढ़े-लिखे लोगोंमें भी है। देशकी सारी जनतामें भयभीतता घर किये बैठी है। तुलना करनेसे मालूम होगा कि गांवोंकी अपेक्षा शहरके पढ़े-लिखे लोग अधिक डरपोक होते हैं। अंधेरेका डर, सांप-बिच्छूका डर, चोर-डाकूका डर, सिन्धी-पठानका डर, सिपाहीका डर, दंडका और जेलका डर। भयके ये सब प्रकार गांवोंमें न हों अैसी बात नहीं है, किंतु पढ़े-लिखे लोगोंमें वे बहुत अधिक मात्रामें पाये जाते हैं।

ये सब भय जब प्रत्यक्ष आ पड़ते हैं, तब ग्राम-जनताकी अपेक्षा पढ़े-लिखे लोग बहुत कम मात्रामें मनुष्यत्वको शोभा देनेवाला व्यवहार कर पाते हैं। अच्छे अच्छे प्रतिष्ठित लोग भी अंधेरेमें जाना मंजूर नहीं करते, और अैसा प्रसंग आ ही पड़े तो अुनके पैर कांपते देखे जा सकते हैं और छातीकी धड़कन सुनी जा सकती है। शहरोंमें सांप-बिच्छू कम होते हैं, लेकिन अगर कभी दिखाअी दे जायं तो अैसे लोग स्वयं अुनसे दूर दूर भागते रहते हैं और किसी ग्रामीण नौकरसे ही अुन्हें मरवाते या पकड़वाते हैं। चोर-डाकूसे तो वे अितने घबराते हैं, मानो अुन्हें किसी मनुष्येतर योनिके प्राणी मानते हों। और चोर-डाकूकी शंका हो तो घरकी रक्षाके लिअे किसी अरब, भैया या सरकारी सिपाहीकी व्यवस्था करने पर ही अुन्हें नींद आती है। सिन्धी, पठान, गोरे, चीनी और सामान्य रूपसे किसी भी विदेशीसे वे कितने डरते हैं, अिसका लज्जाजनक प्रदर्शन शहरकी सड़कों पर या रेलगाड़ियोंमें रोज देखनेको मिलता है। और सरकारी सिपाही, अधिकारी या जेलके डरका तो पूछना ही क्या? अुसकी छायासे बचनेके लिअे कितना 'साहब साहब', कितनी खुशामदें, कितनी रिश्वतखोरी चलती है? कोअी आदमी समाजमें चाहे जितना प्रतिष्ठित और सम्मानित गृहस्थ माना जाता हो, लेकिन किसी तुच्छ सिपाहीको देखते ही वह अितना घबरा जाता है जितनी भेड़ भी बाघको देखकर नहीं घबराती।

गांवका आदमी भी डरपोक तो है, लेकिन अूपरके वर्णनकी अपेक्षा प्रत्येक भयके प्रसंग पर वह अधिक स्वाभिमानपूर्ण व्यवहार करते देखा जाता है। अंधेरेमें अुसे भूत-प्रेतकी शंका बहुत रहती है, पर वह शंका अुसे खेतकी रक्षा करनेके कर्तव्यसे रोक नहीं सकती। सांप-बिच्छू तो अुसके रोजमर्राके साथी हैं। अुनसे वह बिलकुल नहीं डरता।

चोरोंसे गांववाले डरते हैं, लेकिन अिसलिअे नहीं कि वे चोरी कर जायंगे या मार डालेंगे, बल्कि अिसलिअे कि चोरी होने पर पुलिसकी धांधली मचेगी और गवाही देनेके लिअे वे हमें कोर्ट-कचहरीके जंजालमें फंसायेंगे। यह सच है कि गांव पर डाकू हथियारबंद डाका डालते हैं तब गांववाले घबरा जाते हैं और कअी बार तो भगदड़

मचा डालते हैं। अुसमें भयका प्रमुख कारण यही होता है कि अुनके पास हाथ-पैरके सिवा कोअी हथियार नहीं होते। लेकिन अैसे समय कोअी हिम्मत रखकर ललकारनेवाला अगुवा मिल जाय, तो अुन्हीं ग्रामवासियोंमें से बहादुर लोग तैयार हो जाते हैं और मौतका डर छोड़कर हथियारबंद डाकुओंका मुकाबला करते हैं।

विदेशियोंके डरके संबंधमें यह बात है कि वे गांवोंमें बहुत आते नहीं हैं और ग्रामवासियोंको रेलगाड़ियों या शहरके बाजारोंमें अधिक जाना नहीं पड़ता। लेकिन अुनका डर अिनके खूनमें पैठा हुआ है, अैसा नहीं कहा जा सकता। गांवोंमें जमींदारी या शराब वगैराका धंधा करनेवाले लोग अपने निजी अनुभव परसे यह धारणा बना लेते हैं कि गांवके लोग भी विदेशियोंसे डरते ही होंगे। अिससे जब अुन्हें अपने धंधेके सिलसिलेमें ग्रामवासियों पर दबाव डालने और अत्याचार करनेकी जरूरत पड़ती है, और अुनके धंधे देखनेमें खेती या साहूकारी जैसे होने पर भी वास्तवमें अेक या दूसरे बहानेसे ग्राम-जनताका शोषण करनेवाले ही होते हैं, तब वे लोग सिन्धी, पठान, भैया जैसे विदेशियोंको ले आते हैं और अुन्हें अपने चौकीदार या खानगी सिपाहियोंकी तरह नौकरीमें रखते हैं। अिस योजनासे अुनके हेतुकी बहुत अंशमें सिद्धि हो जाती है और वे गांवके लोगोंको दबावमें रख सकते हैं। चौकीदारोंकी गालियोंके सामने गांवके लोग तुरंत गाली नहीं देते और अुनके डंडोंके सामने झट अपने डंडे नहीं अुठाते। लेकिन अैसा मानना भूल है कि अिसका कारण गांववालोंका डर है। अेक लंबे कदवाले पठानको देखकर पढ़े-लिखे शहरी लोगोंकी छाती धड़कने लगती है, लेकिन ग्रामवासियोंमें से अधिकांशको अैसे शारीरिक भयका अनुभव नहीं होता।

ग्रामीण स्वभावसे ही भले और सहनशील होते हैं। सेठ-साहूकार सफेदपोश और संस्कारी ठहरे। अिसलिअे अिनके प्रति ग्रामजनोंके मनमें अेक प्रकारका स्वाभाविक आदर होता है। अुन्होंने विपत्ति पड़ने पर अन्न दिया हो, दवा दी हो, तो अैसे अुपकारोंको गांववाले भूल नहीं सकते। अिसीलिअे अुनके नौकरोंसे अेकदम लड़ पड़ना अुन्हें हलकापन लगता है। भलाअीका यह गुण अुन लोगोंकी दरिद्रताके घूरेमें अितना दब गया है कि वह जल्दी नजर नहीं आता। लेकिन सहानुभूतिकी नजरसे देखनेवाला सेवक अुसे जरूर परख लेगा और देखेगा कि गाली देनेवाले और मारनेवालेको आसानीसे चुप कर देनेकी शक्ति रखने पर भी अपने भीतरकी भलाअी, अुदारता या खानदानियतके कारण ही गांववाले यह सब सह लेते हैं। अूपरकी तहको चीरकर जब हम यह देखते हैं, तब अुनके प्रति हमारा आदर बढ़े बिना नहीं रहता।

लेकिन दरिद्र मनुष्यके गुण भी दोषके रूपमें ही दिखाअी देते हैं। मारनेवाला चौकीदार तो अैसा ही मानता है कि वह मेरी लाठीसे डर कर चुप रह गया। लेकिन ग्रामवासी डरता हो तो भी अुसे डरानेवाली न तो चौकीदारकी लाठी है, न अुसका लम्बा-चौड़ा शरीर है और न अुसकी दाढ़ी-मूंछ है। अुसका डर कुछ और ही प्रकारका है। अुसे बड़ा डर यह होता है कि सेठके नौकर पर हाथ अुठाअूंगा, तो वह मुझे अनेक तरीकोंसे तंग करेगा, संकटके समय अन्न अुधार देना बन्द कर देगा और बेकार बना

कर भूखों मारेगा। अिससे भी बड़ा डर अुसे यह होता है कि अगर गुस्सेमें आकर मैं हाथ अुठाअूंगा, तो 'चोर कोतवालको डांटे' वाली कहावतका मुझे अनुभव होगा। अुलटे मुझी पर फौजदारी कर दी जायगी, मुझी पर पुलिसकी मार पड़ेगी और अत्याचार होंगे; कोर्ट-कचहरियोंकी ठोकर खाते खाते मैं अधमरा और पागल जैसा हो जाअूंगा, धन-बलवाले सेठके सामने वहां मेरी कोअी नहीं सुनेगा और मुझे और मेरे गरीब कुटुम्बको वे लोग अकारण कैदखाने और सजाके चक्करमें डाल देंगे। ग्रामवासी अिसी डरसे कायर बन जाता है, दीन बन जाता है।

वह गोरेसे डरता है, लेकिन अिसलिअे नहीं कि अुसका रंग गोरा है या वह कद्दावर और हृष्ट-पुष्ट है। अुसकी जेबमें पिस्तौल रहती है, अिसका भी ग्रामवासीको अितना डर नहीं होता। अुसका सबसे बड़ा डर यह होता है कि यह आदमी अगर निश्चय कर लेगा तो सरकारी पुलिसकी फौज अुसके पीछे पड़ जायगी, जो अुसे कोर्ट-कचहरियोंकी ठोकर खिलाकर परेशान कर डालेगी; न अुसे काम-धंधेके लायक रहने देगी, न खाने-पीनेका ठिकाना रहने देगी। और अिस चक्करमें अेक बार पड़ा कि जहां-तहां मार खाते-खाते, गालियां खाते-खाते, धक्के खाते-खाते तथा अपमान सहते-सहते वह पागल ही बन जायगा। वह सरकारी सिपाहीसे अिसलिअे नहीं डरता कि अुसके पास खाकी या काला कोट है; अिस वर्दीमें अुसकी सादी आंखोंको सामान्य कपड़ोंके सिवा कुछ भी भयंकर नहीं लगता। लेकिन अुसके साथ झगड़ा करने पर सरकारके अत्याचारका चक्र अुस पर चलने लगेगा और अुसमें से वह किसी भी तरह बचकर निकल नहीं सकेगा, अिसी विचारसे वह डरता है और पामर बन जाता है।

अिस प्रकार ग्राम-जनताके सारे भयोंका मूल देखने जायं, तो सरकारकी अदृश्य और अवसर पड़ने पर अचूक रूपमें हाजिर होनेवाली दारुण मशीन ही नजर आती है। वह मशीन दया और मायासे रहित है। वह अंग्रेजोंके लिअे जनता पर निरंतर आरी चलाती रहती है। अितना ही नहीं, कोअी भी चोर, डाकू या गुंडा अुसमें रिश्वतका पेट्रोल भर दे, तो अुस क्रूर मशीनको वह किसी भी निर्दोष मनुष्य पर चला सकता है। चोर, डाकू, सिन्धी या पठानका सामना करते वक्त या सेठके सामने सिर अुठाते समय, नहीं, गांवमें किसी भी सिरफिरे आदमीके चाहे जैसे व्यवहारके सामने मुंहसे आवाज निकालते समय अेक ही सर्वव्यापी भय गांवके लोगोंको गूंगा बना देता है — "अगर थोड़ा भी मैंने अुनका सामना किया, तो वे लोग किसी न किसी युक्तिसे मुझे सरकारी चक्रमें फंसा देंगे।"

अिस परसे सेवक यह देखेंगे कि ग्रामवासी भयभीत जरूर रहते हैं, लेकिन पढ़े-लिखे लोगोंकी तरह अुनका भय शारीरिक नहीं होता। लड़ने जाने पर सिर फूटेगा या मर्मस्थल पर चोट लग जायगी और मैं मर जाअूंगा — अिस प्रकारका अुनका डर नहीं है। अिसलिअे अैसे डरपोक मनुष्यके लिअे हमारे मनमें जो तिरस्कार अुत्पन्न होता है, वैसा तिरस्कार अुनके लिअे नहीं रखना चाहिये। अुनका भय अेक सर्वव्यापी, योजना-पूर्वक संगठित, भयंकर सरकारी यंत्रसे सम्बन्ध रखता है। वह भय भी अच्छा तो नहीं कहा

जा सकता। कोअी भी भय अच्छा नहीं होता। अिस भयसे अुन्हें और हमें मुक्त होना ही पड़ेगा। लेकिन भले और स्वभावसे बहादुर ग्रामजनोंका जोर सरकारी यंत्रके सामने चल न सके और अुनकी हिम्मत काम न दे, तो अुसमें आश्चर्यकी कोअी बात नहीं है। जैसे अेक जबरदस्त पहाड़के टूटने पर छोटा पेड़ दब जाय तो पेड़को कमजोर कहकर अुसका तिरस्कार नहीं किया जा सकता, वैसे ही ग्रामवासियोंको निर्बल, कायर और निकम्मे कहकर अुनकी निंदा करें, तो वह सचमुच जले पर नमक छिड़कने जैसा नीच कर्म ही माना जायगा।

सेवकोंको तो प्रेमसे अुनके बीच बसकर, अुनकी सेवा करके, अुनकी लड़ाअी लड़कर, अुनमें से भयकी यह भावना दूर करनी है। यह बात अुनके गले अुतार देनी है कि सरकारी चक्र चाहे जितना भयंकर हो और नीच मनुष्योंका पक्ष लेकर भले और निर्दोष लोगोंको कुचलनेके लिअे सदा तैयार रहता हो, तो भी अुसका सामना किया जा सकता है। अगर कोअी किसी भी प्रकारका अन्याय और अत्याचार करे, तो सरकारके डरसे गूंगे बनकर अुसे सहन कर लेनेकी जरूरत नहीं है।

अुसका सामना करनेके लिअे न लाठीकी जरूरत है, न तलवारकी और न वकीलोंके घर दौड़धूप करनेकी जरूरत है। जरूरत जिस चीजकी है वह ग्रामवासियोंको अीश्वरने काफी मात्रामें दे रखी है। अुनमें सच्चाअी है, भलाअी है, अपार सहनशीलता है और सिर काटनेवालेको भी भोजन देनेकी अुदारता है। यह बात भी नहीं कि अुनमें बहादुरीका अभाव है। सरकारकी भयंकर मशीनके सामने भी वे अपनी बहादुरीको किस लिअे मिट जाने दें? सच्चे और भले मनुष्यके सामने अुस यंत्रके दांते भी अंतमें घिस जायंगे, अैसा विश्वास क्यों न रखा जाय? अत्याचारी लोगोंके अत्याचारके सामने झुककर दुःखी और दीन बन जानेकी अपेक्षा अुनकी और सरकारकी मार खाना अच्छा है, लेकिन पामर और लाचार न बनना चाहिये — अैसा सत्याग्रहका मार्ग अुनके सामने हमें रखना चाहिये।

जिनके जीवन कृत्रिम बन गये हैं, जो मौज-शौकके लिअे शारीरिक कष्ट सहन करनेमें कायर बन गये हैं, जिनके पेट अितने बढ़ गये हैं कि सच्चाअी और शरीर-श्रमके रास्ते चलकर भर ही नहीं सकते, अैसे शहरियों पर सत्यका यह शौर्य चढ़ना मुश्किल है। अिन सब बातोंको वे हंसीमें अुड़ा देंगे। लेकिन गांवके मनुष्य अुन्हें सुनकर सिर हिलाने लगेंगे। ये बातें सुनकर अुन्हें शौर्य भले न चढ़े, परन्तु ये अुन्हें सीधी, सच्ची और स्वीकार करने जैसी जरूर लगेंगी। क्योंकि अुनके स्वभावसे अिन बातोंका हर तरहसे मेल बैठता है। यह शौर्य अुन्हें चढ़ जाय, अुन्हें यह भान हो जाय कि ये चीजें तो हमारे खूनमें हैं, तब तो अुनकी आंखोंमें खोअी हुअी चमक फिरसे लौट आयेगी, अुनकी कमजोर आवाज फिरसे ताकतवर बन जायेगी, अुनका नीचे झुका हुआ सिर स्वाभिमानसे अूंचा रहने लगेगा, वे गरीब भले हों लेकिन आज जैसे दब्बू न रहेंगे, और सब अन्यायी, अत्याचारी और शोषक भी अिस बातको समझ जायंगे कि अुनके साथ सच्चाअी और मनुष्यतासे ही व्यवहार करना पड़ेगा। सरकारका निर्जीव,

भावनाहीन यंत्र भी अुनके आगे रुक जायगा, क्योंकि अुसे चलानेवाले यांत्रिक भी तो आखिर मनुष्य-जातिके ही होते हैं न?

जो सेवक गांवके लोगोंको अूपर-अूपरसे देखेंगे, वे अुन्हें डरपोक समझ लेंगे, अुनके बारेमें पूरी तरह निराश होकर बैठ जायंगे और अपनी निराशाकी छूत गांव-वालोंको लगाकर अुन्हें भी निराश बना देंगे। अैसे सेवक खादी वगैरा प्रवृत्तियोंके द्वारा अुन्हें पैसे दो पैसेका लाभ भले ही करा दें, लेकिन सब बातोंको देखते हुअे अुनका अकल्याण ही करेंगे। लेकिन जो सेवक ग्रामवासियोंके सच्चे स्वभावको पहचान लेंगे, अुन्हें अुनके बारेमें अैसी निराशा कभी हो ही नहीं सकती।

प्रवचन ५८

गुणी ग्रामजन

दुनियामें गांवके लोगोंके अज्ञान, आलस्य, डरपोकपन और दूसरी कितनी ही बुराअियोंकी बात कही जाती होगी, परन्तु हिन्दुस्तानके गांवोंमें जानेवाले किसी भी व्यक्तिकी नजरमें अुनके कुछ गुण आये बिना नहीं रह सकते। अैसा अुनका सबसे बड़ा गुण है आदर-सत्कारका। अुनके अिस गुणने सचमुच कहावतका रूप ले लिया है। वे प्रकृतिकी गोदमें बसते हैं, अिसलिअे प्रकृतिकी अुदारता अुनके अंग-अंगमें समाअी हुअी दिखाअी देती है। अुनके खेत कनसे मन देते हैं। अुनके फलोंके वृक्ष फलोंके ढेर लगा देते हैं। अिसके सिवा वे विशालतामें बसनेवाले हैं। नीचे जमीन विशाल है, अूपर आकाश विशाल है। यह गुण भी अुनके स्वभावमें अुतरा हुआ लगता है। मेहमानको खिलानेका, अपनी मीठी भाषामें आग्रह कर-करके -- रिझा-रिझाकर अुसे तृप्त करनेका अुन्हें शौक होता है। खुद मेहनती मनुष्य ठहरे। कसकर भूख लगना किसे कहते हैं और भूखके समय जो अन्न मिलता है, वह कैसा अमृत-तुल्य लगता है, अिसका अुन्हें अनुभव है। अधिकतर अिसीलिअे भूखोंको भोजन करानेमें अुन्हें अितना आनन्द आता होगा।

जिनकी गोचरभूमि गायोंसे शोभित होती है, जिनकी कोठियां अन्नसे भरी रहती हैं और जिनकी बाड़ियोंमें भिन्न-भिन्न अृतुओंके फल अुतरते हैं, अैसी अच्छी स्थितिके ग्रामवासियोंका हाथ तो अुदार होगा ही। वे अपने सारे हिसाबोंमें मेहमानोंकी गिनती हमेशा रखते ही हैं। घर बनाते हैं तो केवल घरके लोगोंका समावेश हो अितना बड़ा ही नहीं बनाते; आनेवाले मेहमान घरमें अच्छी तरह समा सकें अिसका वे खास खयाल रखते हैं। बरतन, खाटें, बिस्तर वगैरा सामान भी वे यह ध्यान रखकर ही जुटाते हैं। लेकिन आदर-सत्कारकी अुदारता गरीबसे गरीब और कंगालसे कंगाल ग्रामवासियोंमें भी दिखाअी देती है। अुनकी झोंपड़ियां बहुत ही संकरी होती हैं, दो घरोंके बीचका आंगन भी बहुत संकरा होता है। वे खेती-बाड़ी खो चुके होते हैं, रोज कमाकर रोज खानेकी अुनकी स्थिति होती है। अैसे गरीब लोग भी जुवार-बाजरेकी रोटी और छाछ या

कांजी जो भी मिल जाय वही अतिथिके सामने प्रेमसे रखते हैं और अुसे खिलाकर आनन्द अनुभव करते हैं।

यह आदर-सत्कारका गुण अच्छी स्थितिके ग्रामवासियोंमें आज अतिकी सीमा तक भी पहुंच गया है। जिसकी जड़ भले ही अुदारतामें हो, भूखेको तृप्त करनेमें आनेवाले स्वाभाविक आनन्दमें हो, किन्तु आज अिसमें मिथ्याभिमान पैठ गया है। सगे-संबंधियोंको, खास तौर पर समधियोंको, पक्वान खिलाना, घरमें कोअी भी आया कि चाय पिलाना, फिर दिनमें पांच बार पिलाना पड़े या पन्द्रह बार अिसका विचार नहीं रखना, पान-सुपारी, अिलायची, लौंग, बीड़ी-तम्बाकू वगैरा खुले हाथों देना — यह सब जो आज गांवोंमें चल रहा है, अुसमें शुद्ध अतिथि-सत्कारकी भावना ही है, अैसा नहीं कहा जा सकता। अिसने अब व्यवहारका रूप ले लिया है। यह जातिमें प्रतिष्ठा बढ़ानेका साधन बन गया है। अुसमें परस्पर स्पर्धा चलती है। अच्छी आर्थिक स्थिति-वालोंके साथ दुर्बल स्थितिवाले लोगोंको भी खिंचना पड़ता है, क्योंकि प्रतिष्ठामें अुन्हे भी अन्य जाति-भाअियोंसे पीछे रहना कैसे अच्छा लग सकता है?

अिसके सिवा, आदर-सत्कारमें स्वार्थ और खुशामदके मिल जानेसे भी अुसमें बुराअी अुत्पन्न हुअी दिखाअी देती है। ग्रामवासी अपने सम्बन्धियोंसे भी ज्यादा तड़क-भड़कसे सरकारी अधिकारियोंको खिलाने-पिलाने लगे हैं। यह सब अन्दरकी अुमंगसे होता हो, अैसा हमेशा नहीं मालूम होता। 'देव' को प्रसाद चढ़ानेसे और अुसे शरममें दबानेसे किसी दिन कोअी लाभ होगा, यही विचार अिसके पीछे रहता है। खानेवाला भी यह जानता है। अपना हक समझकर वह आतिथ्य स्वीकार करता है और कुछ कमी हो तो बतानेमें अतिथिकी तरह शरमाता नहीं।

आदर-सत्कारका गुण यदि आज भी शुद्ध रूपमें कहीं सुरक्षित है, तो वह गरीब ग्रामवासियोंके जीवनमें है। लेकिन खेदकी बात है कि अत्याचार, शोषण और दरिद्रताके दावानलमें अुनका यह गुण जलकर भस्म होने लगा है। अुनकी झोंपड़ीमें अुनका और अुनके बच्चोंका पेट भरने लायक भी अन्न नहीं होता। अैसी स्थितिमें अुनके आंगनमें मेहमान आयें, तो अुनका अन्तर किस प्रकार प्रसन्न हो सकता है? वे घरमें अेक-दूसरेके प्रतियोगी जैसे बनकर अेक-दूसरेसे चुरा कर कुछ नहीं खाते और बलवान आदमी दो भाग नहीं खाता, यही अुनका बड़ा गुण मानना चाहिये। अुनके खूनमें रही अिस पुरानी अुदारताका आज तो अितना ही अंश अुनमें बाकी बचा है।

अतिथिको खिलाकर आनन्द लेनेका तो अुनके जीवनमें प्रश्न ही नहीं रह गया है। अुन्हें खुद भी खानेमें कुछ आनन्द नहीं आता। अुनके खानेमें न तो मनुष्यका पेट भरने जितना वजन होता है, न मनुष्यकी खुराक कहलाने योग्य पदार्थ रहते हैं। अिसलिअे वे अंधेरे कोनेमें जाकर और दीवारकी तरफ मुंह करके कांजी पी लेना पसंद करते हैं, मानो मन ही मन अपनी अैसी रद्दी खुराकके लिअे शरमाते हों।

और दरिद्रतामें डूबे हुअे अिन लोगोंको अतिथियों पर विश्वास हो, अैसी स्थिति भी कहां रह गयी है? वे सब सुधरे हुअे, पढ़े-लिखे, सफेदपोश अूंचे वर्गोंके

शिकार हैं। अुनके पास जो भी जाता है, वह अुन्हें मारता, गाली देता, लूटता और ठगता ही है। सरकारी अधिकारी अुन्हें बेगारमें खींचने और अुनके आंगनमें लकड़ी-कंडे, मुर्गे, अंडे, जो भी हो वह छीनने ही जाते हैं। सेठ-साहूकार अुन्हें कर्ज देते वक्त तो मीठी-मीठी बातें करते हैं, लेकिन जब कर्ज वसूल करने आते हैं, तब दूसरे ही रूपमें आते हैं और घरमें से दानेकी आखिरी मुट्ठी तक अुठा ले जानेमें भी अुन्हें जरा दुःख नहीं होता। कोअी कथा-पुराण सुनानेवाले तो अुनके पास जायंगे ही क्यों? अुनके पाससे अुन्हें क्या मिलनेकी आशा हो सकती है? अिस तरह अुन्हें बाहरके सभी लोगोंके अैसे कड़वे अनुभव हुआ करते हैं कि किसी पर विश्वास करना या प्रेम रखना अुनके लिअे संभव ही नहीं रह गया है।

लेकिन अैसे ग्रामवासी भी अपना आतिथ्यका गुण अभी तक अच्छी मात्रामें सुरक्षित रखे हुअे हैं। जब अुनके मनसे हमारे प्रति रही शंका दूर हो जाती है, तब हमारे लिअे अुनका हृदय खिल अुठता है और वे हम पर अपना भावभीना आतिथ्य जरूर बरसाते हैं। हम सेवकोंको वह आतिथ्य चखनेका काफी सौभाग्य मिलता है। हमारे ग्रामवासमें वह कितना माधुर्य भर देता है?

शहरके सभ्य समाजमें हमें आतिथ्यका भाव बहुत कम मात्रामें दीखता है। वहां बहुत हुआ तो लोगोंका यह भाव अपने वर्गके अिष्ट-मित्रों तक सीमित दिखाअी देता है। अनजानके लिअे तो वहां घरके द्वार सदा बन्द रखनेका फैशन चल पड़ा है। अिसलिअे जब हम ग्रामवासियोंका अितना खुला और निष्कपट भाव देखते हैं, तब अुनके लिअे हमारे मनमें प्रेम और आदर अुत्पन्न हुअे बिना कैसे रह सकता है?

आतिथ्य स्वीकार करते समय हम सेवकोंको विवेक नहीं छोड़ना चाहिये। अतिथि-सत्कार करनेवाला विवेककी हद छोड़ दे तो वह अुसकी शोभा बढ़ाता है, लेकिन अगर आतिथ्य ग्रहण करनेवाला हद छोड़ दे, तो अुसकी योग्यता घटती है। वे चाहे जितना आग्रह करें, फिर भी हमें सादा भोजन लेनेका ही आग्रह रखना चाहिये। जातिवालोंके लिअे पकवान बनानेका जो रिवाज पड़ गया है, अुसमें हम सेवकोंको बढ़ती नहीं करनी चाहिये। चाय-कॉफी, पान-बीड़ी वगैरा रिवाजोंमें भी हमारा मिल जाना ठीक नहीं होगा। अैसा करनेसे अिन लोगोंको बुरा लगेगा, यह मानकर कभी कभी सेवक आग्रहके वश होते दिखाअी देते हैं। अुनके स्वभावाके अनुसार अुन्हें बुरा लगे और हम अुनके आग्रहके वश हो जायं, तो अिससे अुन्हें सुख मिल सकता है। लेकिन अुन्हें तात्कालिक सुख देकर हमें खुश नहीं होना चाहिये। हमें तो आतिथ्य ग्रहण करते समय अपनी योग्यताका —— अपने सिद्धान्तोंका भी विचार करना चाहिये; साथ ही लोगोंके अतिरेक-पूर्ण रीति-रिवाजोंका समर्थन न करनेका विचार भी हमें अवश्य करना चाहिये।

ग्रामवासियोंके प्रति किसीको भी प्रेम अुत्पन्न हो जाय, अैसा अुनका अेक और गुण बताकर आजकी चर्चा पूरी करनी है। वह गुण है अुनका आनन्दी स्वभाव। चारों ओरसे दुःखों और अत्याचारोंसे घिरे रहने पर भी वे सदा प्रसन्न दिखाअी पड़ते हैं, सदा हंसते ही रहते हैं। अुन्हें प्रसन्न देखकर हम भी प्रसन्न हो जाते हैं। हमें बहुत

बार अपने देश और अपने गांवोंके भविष्यके बारेमें निराशा हो जाती है, लेकिन ग्रामवासियोंके प्रसन्न चेहरे देखकर हमारी निराशा अुड़ जाती है। हम स्वदेशी, स्वराज्य, स्वतंत्रता, स्वाभिमानके शिखर पर पहुंचनेका प्रयत्न करते हैं, तब अक्सर थक जाते हैं और पीछे हट जाते हैं। लेकिन प्रसन्न ग्रामवासियोंके सदा हंसते चेहरे देखकर हमारी थकान अुतर जाती है और हमारी आशा फिर ताजी हो जाती है।

अुनका यह आनन्दी स्वभाव कृत्रिम नहीं है, तमाचा लगा कर मुंह लाल करने जैसा नहीं है। अपना दुःख, अपमान और कष्ट छिपानेके लिअे वे बनावटी हंसी हंसते हों, अैसी बात नहीं है।

यों देखें तो अुनके जैसे दुःख और दरिद्रता अिस धरती पर और किसीको नहीं भोगनी पड़ती। वह कहांसे आयी है, अिसका अुन्हें पूरा ज्ञान भी नहीं है। पुराने सुखी जमानेकी याद भी अब तो दिन पर दिन धुंधली होती जाती है। अिस स्थितिमें से निकलनेका कोअी अुपाय भी अुन्हें नहीं सूझता। अपने आसपास वे बड़े बड़े लोगोंको देखते हैं, पर किसीके बारेमें अुन्हें अैसी श्रद्धा अुत्पन्न नहीं होती कि वे हमारी मदद करेंगे। धनवान, विद्वान, सांसारिक, फकीर — किसीको भी अुनके प्रति सहानुभूति हो, अैसा कोअी चिह्न ग्रामवासियोंको अुनके चेहरे पर नजर नहीं आता। सबकी आंखोंमें अुन्हें अैसा भाव दिखाअी देता है, मानो वे ग्रामवासियोंको अपने शिकार मान कर ही अुनकी ओर घूर रहे हैं। मनुष्यको निराश करनेवाली अिससे अधिक क्रूर परिस्थितियां और क्या हो सकती हैं?

अितना होने पर भी वे कितने प्रसन्न रहते हैं? अिसका कारण क्या होगा? कारण अेक ही है — वे सच्चे हैं, सरल हैं, मेहनती हैं। सच्चा और मेहनती मनुष्य सारी दुनिया अुसे कुरेदकर खाती हो, तो भी किसीको अपना दुश्मन नहीं मानता और सबकी भलाअी करते हुअे अपने काममें लगा रहकर प्रसन्न रह सकता है।

यह तो अनुभवसे समझनेकी बात है। हम स्वयं अपने जीवनमें सत्य और शरीरश्रमकी जितनी अुपासना करते जाते हैं, अुतना ही हम अपने स्वभावको आनन्दी बनता देखते हैं।

सच्चा और मेहनती मनुष्य मरणासन्न अवस्थाको पहुंच गया हो, तो अुसमें से भी अुसे फिरसे तनकर खड़े होनेमें देर नहीं लगती। आगने चाहे जितनी क्षीण चिनगारीका रूप ले लिया हो, तो भी जरासी गर्मी और हवा मिलते ही वह भड़क अुठती है। और भड़कनेके वेगका अन्दाज कोअी चिनगारीके क्षुद्र रूप परसे नहीं लगाता। हमारी सच्ची, मेहनती और आनन्दी ग्राम-जनताके बारेमें भी अैसा ही होनेवाला है। हमारे जैसे अनेक सेवकोंको अुनके साथ रहना पड़ेगा, अुनमें रचनात्मक काम करने पड़ेंगे, अुनके दुःखोंका रहस्यमय स्वरूप अुन्हें समझाना पड़ेगा तथा अन्याय और अत्याचारका मुकाबला करनेकी अुन्हें तालीम देनी पड़ेगी। अैसा करनेमें हमें कअी वर्ष लग जायंगे, बहुत बार आगे बढ़ कर पीछे भी लौटना पड़ेगा। पर अुनके प्रसन्न चेहरे देखकर हम फिर मेहनत करने लग जायंगे। हमें विश्वास है कि अेक दिन अुनके भीतर नवचेतना अवश्य भड़क अुठेगी।

और तब वह आग हमारे रचनात्मक कामकी मंद गतिसे बढ़नेवाली नहीं होगी। अुसकी ज्वालायें तो अपनी तेज गतिसे ही बढ़ेंगी।

गांवके लोगोंके आनन्दी स्वभाव परसे हमारे जैसे सेवक अुनके और अपने देशके भविष्यके बारेमें अैसा विश्वास रख सकते हैं। अुनके बीच रहना और सुखभोगकी अपनी पुरानी आदतें छोड़ना हमें चाहे जितना कठिन मालूम होता हो, फिर भी अुनका आनन्दी स्वभाव हमें सदा प्रसन्न बनाये रखेगा।

हमारे सगे-संबंधी और दुनियाके लोग बहुत बार हमारे गांवमें बस जानेसे हम पर तरस खाते हैं। लेकिन हम जानते हैं कि हमारे जैसा परम भाग्यवान और कोअी नहीं है। अैसे गुणी — अैसे आनन्दी लोगोंके बीच बसने जैसा लाभ जीवनमें दूसरा कौनसा हो सकता है?

प्रवचन ५९

ग्रामवासियोंकी भाषा

जिस तरह ग्रामवासियोंके अन्य सब गुणोंका परिचय हमें होना चाहिये, अुसी तरह अुनका भाषागुण भी जानने जैसा है। लेकिन अैसा करनेमें हमारी अेक बुरी आदत बाधक होती है।

पढ़े-लिखे लोग अिकट्ठे होते हैं और हंसी-मजाक पर अुतर आते हैं, तब हास्य-रस अुत्पन्न करनेके अुनके कुछ खास विषय होते हैं। अक्सर मनुष्यके शारीरिक दोषोंका अुसमें प्रमुख स्थान होता है। दूसरा नंबर ग्रामवासियोंकी भाषाका और शहरी वातावरणमें होनेवाली अुनकी विडम्बनाका आता है। स्पष्ट है कि यह हास्यरस बहुत नीची श्रेणीका ही हो सकता है। हास्यरसको अगर अूंची श्रेणी पर रखना हो, तो साहित्यके सब रसोंमें अिसके लिअे सबसे अधिक कलाका होना जरूरी है। अैसी कला दो घड़ी मजाक करने पर अुतरे हुअे लोगोंमें कैसे हो सकती है?

हमारे स्वभावमें रहे अिस बड़े दोषका हमें शायद ही भान रहता है। सभ्यसे सभ्य शहरी भी गांवके लोगोंके ग्रामीण अुच्चारण सुनते ही अपना काबू खो बैठते हैं और खिलखिला कर हंस पड़ते हैं। अैसा करके वे अपनी सभ्यताको — सामान्य विवेक रखनेकी सज्जनताको लज्जित करते हैं, अिसका भी अुन्हें भान नहीं रहता। चाहे जैसी गंभीर बात चल रही हो, कोअी ग्रामवासी अपने अूपर गुजरनेवाले दुःखोंका वर्णन करने आया हो, तब भी सभ्य लोग अिस दोषके वशीभूत हो जाते हैं। मूल बातसे दूर हट कर वे 'हेंडवुं, लेंबडो, पेंपळो, च्यम से, आअीवो, लाअीवो'* जैसे देहाती

* गुजरातके चरोतर प्रदेशमें 'हींडवुं, लीमडो, पीपळो, केम छे' शब्दोंका और सूरत जिलेमें 'आव्यो, लाव्यो' शब्दोंका ग्रामप्रदेशमें अुपरोक्त प्रकारसे अुच्चारण किया जाता है। अिन शब्दोंके अर्थ क्रमशः अिस प्रकार हैं: चलना, नीम, पीपल, कैसे हो, आया, लाया।

अुच्चारणों पर जोरोंसे हंसने लगते हैं और आपसमें ग्रामवासीका खूब मजाक अुड़ाने लगते हैं। अिसमें वे कोअी अनुचित व्यवहार करते हैं या अुस ग्रामवासीका अपमान करते हैं, अैसा अुन्हें विचार भी नहीं आता।

दुःख और लज्जाकी बात तो यह है कि हम सेवक भी अुस हलके आनन्दका लालच छोड़ नहीं सकते।

ग्रामवासियोंका अपमान करके अुनका मजाक अुड़ानेकी जो आदत हमें पड़ जाती है, वह हम अुनके बीच सेवा करनेके लिअे जा बसते हैं, तब भी हमारे साथ रहती है। वहां भी हम अपने सेवक-मंडलोंमें परस्पर अुनके बोलने-चालनेके ढंग पर हंसते हैं; यहां तक कि अुनकी अुपस्थितिमें भी हम हंसनेकी यह आदत छोड़ नहीं सकते। हम पढ़े-लिखे ठहरे, भाषाके अनेकों खेल और करामातें जाननेवाले ठहरे, अिसलिअे अनेक युक्तियां खोजकर अुन भोले-भाले लोगोंसे बार बार हंसने जैसे अुच्चारण करवाते हैं और फिर जोरोंसे हंसते हैं।

सेवकोंकी सभाओंमें भी जब कोअी ग्रामीण अुच्चारणकी आदतवाला व्यक्ति व्याख्यान देता है, तब व्याख्यान चाहे जितना अच्छा हो, गंभीर हो और श्रोता कुल मिलाकर वक्ताके प्रति काफी आदर रखते हों, तो भी ग्रामीण अुच्चारण आते ही जनमेजय राजाके मसखरे अृत्विजोंकी तरह हम हंसे बिना रह नहीं सकते।

हंसनेके अिस रसका शिकार बननेवाला ग्रामवासी मित्र अिसमें शामिल नहीं हो सकता। ग्रामवासी होनेके बावजूद वह हमारे जितना असभ्य और अविवेकी नहीं होता, अिसलिअे अपने अैसे अपमानके लिअे हम पर नाराज नहीं होता। लेकिन अुसका चेहरा अुतर जाता है। अुसे बहुत दुःख होता है, यह स्पष्ट देखा जा सकता है। अगर हम समझदार हों तो तुरन्त समझ सकते हैं कि अैसे असभ्य बनकर हम अपनी सेवककी योग्यताको बहुत नीचा गिराते हैं।

ग्रामवासियोंकी जगह अगर हम खुद हों, तो मजाक अुड़ानेवालेका मुंह नोचे बिना न रहें और शायद अुसके साथ किसी प्रकारका संबंध भी न रखें। लेकिन अिस बातमें भी ग्रामवासी हमारी अपेक्षा कितने अूंचे ठहरते हैं? वे हमारे जैसे भावनाशून्य नहीं बन जाते। हमारी शहरी कुटेवोंके बावजूद हममें जो थोड़ी अच्छाअी होती है अुसीको वे सदा अपनी दृष्टिमें रखते हैं। ग्रामवासी चाहे जितना अपढ़ हो, देहाती भाषा बोलता हो, और देहाती अुच्चारण करता हो, परन्तु वास्तवमें वह हंसीका पात्र हरगिज नहीं है। वह तो अत्यन्त स्नेही और गुणी है।

अितना ही नहीं, अुसकी अैसी भाषा भी प्रेमसे सीखने योग्य होती है। स्त्रियों, किसानों और अलग अलग धंधे करनेवाले कारीगरोंमें हमने कभी न सुने हों अैसे भाषा-प्रयोग चलते हैं।

सचमुच, गांवोंमें जाते ही हमारा ध्यान अुनकी भाषाकी सरलता और मार्मिकताकी तरफ खिंचे बिना नहीं रहता। वे पढ़े-लिखे नहीं होते और हम बहुतसे लेखकों

और कवियोंका साहित्य छान चुके होते हैं। फिर भी अुनकी कही हुअी वातें हम ध्यानसे सुनें, तो मालूम पड़ेगा कि हमारी अपेक्षा वे अपने मनके भाव अधिक सुन्दरतासे प्रकट कर सकते हैं। अगर अधिक ध्यानसे सुनें, तो अुनकी भाषामें अैसे अनेक शब्द-प्रयोग और आकर्षक कहावतें पग-पग पर मिलेंगी, जो हमने कभी न सुनी होंगी। अुनके लोक-गीतों और किस्से-कहानियोंका परिचय करें, तो अुनकी रसिकता देखकर हम मुग्ध हो जायंगे।

अुनकी वोलीमें अैसी मिठास क्यों न हो? वे जो कुछ कहते हैं, वह अुनके हृदयके भावोंसे ओतप्रोत होता है। हम पढ़े-लिखोंकी तरह वे कृत्रिम भाषण नहीं करते। ग्रामवासियोंकी मीठी, भावनापूर्ण और मार्मिक शब्दोंसे भरी भाषा पर प्रेम अुत्पन्न होनेमें हम सेवकोंको जरा भी कठिनाअी नहीं होनी चाहिये। अिसके विपरीत, अगर हम अुससे प्रेम न कर सकें, तो कहना होगा कि हम अरसिक और अपने पांडित्यका अभिमान रखनेवाले हैं। अुनकी वोली सीखकर हम पढ़े-लिखोंकी भाषामें अधिक जोश और अर्थ भरकर अुसे समृद्ध ही वनायेंगे।

रानीपरज और भील जैसी आदिम जातियोंकी तो अलग विशेष भाषाअें ही होती हैं। अुन्हें आदरसे सीखनेकी हमें कोशिश करनी चाहिये। साहित्य-रसके लिअे, भाषाके अितिहास और स्वभावकी जानकारीके लिअे अैसा करना जरूरी है; अितना ही नहीं, सेवकके रूपमें अपढ़ लोगोंमें, स्त्रियोंमें और वच्चोंमें काम करते समय अुनकी भाषाके ज्ञानके अभावमें हम विलकुल पंगु वन जाते हैं। अुनमें काम करनेवाले हमेशा यह अनुभव करते हैं कि अुनकी सभाओंमें हमारे गुजराती भाषाके भाषणों और विवेचनोंका वहुत थोड़ा अंश वे लोग समझ पाते हैं। परन्तु जव अुनकी वोलीमें हम वोलते हैं, तव वे वीच-वीचमें हंसते हैं, प्रश्न पूछते हैं और हमारी वातका समर्थन करते हैं और अिस प्रकार अपना रस प्रकट करते हैं।

ग्रामजनोंकी वोलीमें अेक दो वातें जरूर अैसी होती हैं, जो हमें अच्छी नहीं लगतीं। वात-वातमें गालियोंका मसाला मिलानेकी अुन्हें वुरी आदत होती है। अिसके सिवा, वे अेक-दूसरेसे वोलते समय असभ्यताका यानी तू-तुकारका व्यवहार करते हैं।

लेकिन शहरी लोग भी तो किसी न किसी रूपमें गालियां वोलते ही हैं। यह आदत गांवोंमें हो या शहरोंमें — कहीं भी अच्छी नहीं कही जा सकती। यह असंस्कारिताकी ही निशानी है। लेकिन यह चीज ग्रामवासियोंसे प्रेम रखनेमें क्यों वाधक वने? हम सेवक यदि प्रयत्न करके भी अपनी भाषाको 'साला', 'ससुरा' या 'मेरे वेटे' जैसी सर्वसाधारण गालियोंसे मुक्त रखें, तो ग्रामजनोंसे 'अुनकी गाली वोलनेकी आदत छुड़ाना कठिन नहीं है।

तू-तुकार हम पढ़े-लिखे लोगोंको विचित्र लगता है, लेकिन क्या वह सचमुच वैसा है? संस्कृत जैसी प्राचीन देवभाषामें भी आजकी अपेक्षा 'तू' जैसे अेकवचनी सर्वनामका ही अुपयोग अधिक होता था। लेकिन तत्कालीन साहित्य आदिको देखकर कोअी यह

नहीं कह सकता कि अुस समयके लोग देहाती या असभ्य थे। हरअेकके लिअे बहुवचन 'तुम' शब्दका प्रयोग करना और 'आप' का बहुत अुपयोग करना दरबारी सभ्यता है। ग्राम-जनता अुसके परिचयमें बहुत कम आती है, अिसलिअे अुसकी बोलीमें हमारी जनताकी पुरानी आदत सुरक्षित है और दरबारी सभ्यताका अुसमें प्रवेश नहीं हुआ है। अैसा समझ लें तो ग्रामजनोंके 'तू' शब्दके लिअे हमें आदर ही अुत्पन्न होगा। और 'तू' में मिठास और हृदयका प्रेम भरा होता है, यह तो कोअी भी सहृदय मनुष्य समझे बिना नहीं रह सकता। जब अेक खेतिहर, भील या रानीपरज जातिका मनुष्य पढ़े-लिखे प्रतिष्ठित शहरी सज्जनको 'तू' कहकर बुलाता है, तो अुसके कानको वह विचित्र-सा लगता है, लेकिन अुसमें अपमान या तुच्छताका भाव कभी नहीं लगता। सामनेवालेके स्वप्नमें भी अपमानका भाव नहीं होता, तब फिर अुसके तुकारमें तो आ ही कैसे सकता है?

अिस तू-तुकारके बारेमें तो हम सभ्य कहे जानेवाले ही वास्तवमें असभ्य और बिगड़े हुअे हैं। पढ़े-लिखे मनुष्यकी रोजकी बोलचालकी भाषामें तुकारका स्थान न होने पर भी, जब वह किसी ग्रामीणको बुलाता है, तब 'तू' का ही प्रयोग करता है। अुसके अिस 'तू' में क्या अुस ग्रामवासीके 'तू' जैसी मिठास और स्नेह भरा होता है? कभी नहीं। वह स्वयं सभ्य समाजका मनुष्य है, यही अभिमान अुसमें भरा होता है। अुसी प्रकार सामनेवाला मनुष्य हमारी बराबरीका नहीं है, हमसे नीचा, मजदूर और देहाती है, वह सम्मान, आदर या प्रेमके योग्य नहीं है, अैसा स्पष्ट तिरस्कारका भाव अुसमें भरा होता है।

अिसमें सिर्फ भाषाका सवाल नहीं है, परन्तु मनकी वृत्तिका सवाल है। गांवका मनुष्य भले अलंकार-शास्त्र न पढ़ा हो, भले वह स्वयं तुकारका छूटसे प्रयोग करनेका आदी हो, फिर भी वह तुरन्त समझ जाता है कि शहरी मनुष्यका तुकार अुसके तुकारसे भिन्न वस्तु है, तीखे भाले जैसा है।

हम सेवक ग्रामीणोंकी भाषाको सुधारनेका प्रयत्न करें, अुससे पहले हमें अपनी भाषाको अिस तुकारसे मुक्त करके सुधार लेना चाहिये। पढ़े-लिखे मनुष्यका अपढ़ ग्रामवासीको 'तू' कहना हमारे समाजमें अितना स्वाभाविक हो गया है कि अिसमें हम कोअी अशोभनीय बात करते हैं, सामनेवालेका अपमान करते हैं, अिसलिअे हमारे व्यवहारमें कुछ सुधारने लायक दोष है, यह प्रगट सत्य हम जल्दी स्वीकार ही नहीं कर सकते।

हमारा मन तो अैसी दलील भी करता है कि जो जिस योग्य है अुससे अधिक देनेसे वह अुसे पचा नहीं सकता! हम स्वयं 'आप' के योग्य हैं और वह 'तू' के योग्य है, यह मानो प्राकृतिक अीश्वर-निर्मित स्थिति है, अैसा मानकर ही हम चलते हैं। "हमारे 'तू' कहनेसे गांवका मनुष्य अपना अपमान नहीं समझता। अुसके लिअे वह हमसे वाद-विवाद नहीं करता। यह स्थिति स्वाभाविक न हो तो वह झगड़ा

किये विना कैसे रहे?"—अिस तरह भी वुरी आदतके वशीभूत हुआ हमारा मन अपनी कुटेवका समर्थन कर लेता है।

साधारण पढ़े-लिखे लोगोंके अैसे विचार हों यह तो समझमें आ सकता है, लेकिन सेवकोंमें भी अैसा ही सोचनेवाले अभी वहुत लोग हैं। अिसीलिअे हम देखते हैं कि ग्रामवासियोंसे सम्मानपूर्वक वोलनेका सुधार करनेमें वे वहुत शिथिल रहे हैं। ग्रामवासी 'आप' के योग्य हैं या नहीं, यह मुख्य प्रश्न नहीं है। मुख्य प्रश्न यह है कि हम सेवक जिनकी सेवा हमें करनी है अुनके प्रति अिस असभ्यताके दोषसे मुक्त होना चाहते हैं या नहीं?

अव आप देखेंगे कि भाषाके वारेमें तो ग्रामजनों पर हमें सिर्फ प्रेम और आदर ही अुत्पन्न होना चाहिये। अुलटे, अिस विषयमें हमारे अंदर ही वड़े वड़े दोष हैं, जिन्हें सेवक होनेके नाते हम जितनी जल्दी निकाल दें अुतना ही अच्छा है।

आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

दसवां विभाग

आश्रमवासी

प्रवचन ६०

हमारा नाम

हमें लोगोंकी तरफसे कितने अधिक नाम मिले हुअे हैं! चलिये, आज हम अुन सब नामोंमें से अपना सच्चा नाम ढूंढ़ निकालें। हम आश्रम जैसी संस्थामें रहते हैं, अिसलिअे कोअी हमें 'आश्रमवासी' कहते हैं; हम सेवा करनेका प्रयत्न करते हैं, अिसलिअे कोअी हमें 'सेवक' नाम देते हैं; और हम गांवोंमें रहते हैं और खादीका काम करते हैं, अिसलिअे 'ग्रामसेवक' और 'खादी-सेवक' जैसे विशेष नाम भी हमें लोग देते हैं। अिसके सिवा, समय पड़ने पर हम लड़ाअीमें जूझ जाते हैं, अिसलिअे कुछ लोग हमें 'सैनिक' भी कहते हैं; और हमारी लड़ाअी अधिकतर सरकारके साथ असहयोग करनेकी और अुसके अत्याचारोंके विरुद्ध सत्याग्रह करनेकी होती है, अिस कारण हमारे लिअे 'असहयोगी' और 'सत्याग्रही' जैसे नाम भी लोगोंमें प्रचलित हैं।

ये सब तो लोगों द्वारा गंभीर भावसे दिये गये नाम हैं। लेकिन हमारे तरह तरहके आचार-विचार अुनकी दृष्टिमें विचित्र तथा टीका और मजाकके लायक होनेके कारण अुन्होंने हमें सुन्दर सुन्दर लाक्षणिक नाम भी दिये हैं। ये सब हमारे प्यारसे रखे हुअे नाम हैं। अिनमें से बहुतसे मजेदार होते हुअे भी मार्मिक हैं और अेक अेक शब्दमें हमसे बहुत कुछ कह देते हैं।

अैसा अेक नाम है 'बगल-थैलिया', क्योंकि हम बगलमें थैला डालकर हमेशा अेक गांवसे दूसरे गांवमें घूमते ही अुन्हें दिखाअी देते हैं। हम भटकनेवाले बन गये हों और अेक जगह पर ठहर कर जड़ जमने ही न देते हों, तो यह नाम सुनकर हमें चेत जाना चाहिये।

हमारा दूसरा नाम है 'भाषणवाला'। अिस परसे हम अैसा मानकर फूल न जायं कि हमें बहुत अच्छा भाषण देना आता है। लोगोंकी आलोचना तो यह है कि हमें बकवास करनेके सिवा और कुछ आता ही नहीं।

और वेद-शास्त्र-संपन्न न होने पर भी हमें 'पंडित' की और 'भक्ति' में बहुत छिछले होने पर भी 'भगत' की पदवी दी गअी है। अर्थात् हमारे सिद्धान्त तो वेद-मंत्रों जैसे आदरणीय हैं, परन्तु लोग देखते हैं कि अुनका अुपदेश हम दूसरोंको ही करते हैं, खुद अुन पर अमल नहीं करते। और फिर भी तिलक और मालावाले पुराने 'भगतों' की तरह हम छोटीसी धोती और चरखेके चिह्नोंमें ही अपनी भक्तिकी अितिश्री कर देते हैं।

परंतु अब गंभीर भावसे दिये गये नामोंको देखें। अुनमें 'आश्रमवासी' नाम है तो अच्छा लगनेवाला, परन्तु आश्रम और अुस सुंदर शब्दमें रहनेवाली भावनायें अितनी महान और पवित्र हैं कि हमारे जैसे नम्र मनुष्योंको आश्रमवासीका बड़ा नाम

धारण करना शायद ही शोभा देगा। हमारे स्थानको आश्रमका नाम देनेमें भी हमें संकोच हुअे विना नहीं रहता।

आश्रम अर्थात् पवित्रता, आश्रम अर्थात् तप, आश्रम अर्थात् त्याग, आश्रम अर्थात् ज्ञान, आश्रम अर्थात् यज्ञ, आश्रम अर्थात् सेवा, आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य, आश्रम अर्थात् अीश्वरमय जीवन, आश्रम अर्थात् अिन सवमें परम आनन्द। अिन सवको अपने जीवनमें अुतारना हमें प्रिय है, अुसके लिअे हम सतत प्रयत्न करना चाहते हैं; परंतु हम जानते हैं कि कितना ही प्रयत्न करेंगे तो भी अिस मामलेमें हम विद्यार्थी अथवा साधककी स्थितिमें ही रहेंगे। जिस दिन हमें यह अभिमान हो गया कि हम सिद्ध वन गये हैं, अुस दिन समझ लीजिये कि हम निकम्मे हो गये। जीवनके अन्त तक हम अिन गुणोंके साधक रह सकें और वीचमें थक न जायं, तो भी हम अीश्वरका अनुग्रह मानेंगे।

दूसरा नाम 'सत्याग्रही' का है। यह तो हमारे लिअे वहुत ही बड़ा होगा। देशमें सरकारके जुल्मोंके खिलाफ सत्याग्रहकी जो लड़ाअियां समय समय पर चलती हैं अुनमें हम शरीक हुअे होंगे, परन्तु अितनेसे ही हमें सत्याग्रहीका नाम धारण करनेका अधिकार नहीं मिल सकता। क्या हम जीवनकी तमाम वातोंमें सत्यका आग्रह रखकर अुसकी रक्षाके लिअे प्राण निछावर करनेको सदा तैयार रहते हैं? सरकारके अत्याचारोंके विरुद्ध लड़ाअी छिड़ने पर हमने अुसमें भाग लिया, यह तो ठीक किया। परंतु क्या हमारी आंख अितनी सधी हुअी है कि छोटेसे भी असत्यको हम ढूंढ़ निकालें? क्या हम अैसे सत्याग्रही हैं कि जहां भी असत्यको देखें, वहीं अुसके विरुद्ध सत्याग्रह करने खड़े हो जायं?

हमारे अपने जीवनमें सत्यके सिद्धान्त पर क्या हम अत्यंत सूक्ष्मतासे चिपटे रहते हैं? अैसा न करते हों तो हमें दुनियामें चल रहा असत्य कैसे दिखाअी देगा? और दिखाअी दे तो भी अुसके विरुद्ध सत्याग्रह करनेकी हिम्मत हममें कैसे आयेगी?

आज संसारमें चारों ओर असत्य, अन्याय, अत्याचार और हिंसाका साम्राज्य फैला हुआ है। घरमें, गांवमें, जातिमें, समाजमें, धंधोंमें, वाजारोंमें, देवालयोंमें और राजकाजमें जहां देखिये वहीं असत्य फैला हुआ है। फिर भी अपने जीवनमें हमें समय समय पर सत्याग्रह करनेके अवसर क्यों नहीं मिलते? हमारे जीवन ठंडे क्यों हैं? हम कैसे चैनसे सो सकते हैं? देशव्यापी पुकार हो तभी हमें सत्याग्रह करनेकी वात क्यों सूझती है? और जव हम सत्याग्रह करते हैं, तव हमारे मनमें सिर्फ लड़ लेनेका और दुश्मनको परेशान कर डालनेका ही अुत्साह होता है, या सत्यके लिअे दुःख सहनेकी पराकाष्ठा करके अुसके हृदयको द्रवित करनेका?

सचमुच सत्याग्रही वनना हमें प्रिय है, परन्तु यह नाम धारण करके घूमना हमें महंगा पड़ सकता है।

अव 'सैनिक' नामको लीजिये। यह नाम सुनते ही हम सवके सिर हिलने लगते हैं, चेहरे हंसने लगते हैं और हमारा मन वोल अुठता है: "वस, वस यही है हमारा सच्चा नाम।" आप नये खूनवाले तो अुसे पकड़ ही लेंगे। और यदि मैं

अुसके गुण-दोषोंमें जाअूंगा तो आप सहन भी शायद ही कर सकेंगे। सैनिकका अर्थ है बहादुर आदमी, प्राणोंकी परवाह न करनेवाला आदमी, परम साहसी मनुष्य, आगे-पीछेका बहुत विचार न करके आगमें कूद पड़नेवाला मनुष्य। फिर भी वह कितना मामूली शब्द है? 'हम बड़े ज्ञानी हैं, बड़े तपस्वी हैं, बड़े सत्याग्रही हैं, बड़े सेवाभावी हैं'— अैसा अेक भी अभिमान अुसमें नहीं है।

अब सैनिककी अिन सब सामान्य कल्पनाओंमें मैं कुछ और जोड़ूंगा। जब हम सैनिकका चित्र खींचते हैं, तब हमारी नजरके सामने फौजका सिपाही होता है। वैसी सेनायें आजकल दुनियाके सभी राज्य रखते हैं। अुन्हें तालीम और कवायद द्वारा अच्छी तरह तैयार किया जाता है। अच्छी तरह यानी कैसे? आपने बताया वैसे बहादुर, प्राणोंकी परवाह न करनेवाले और साहसी बनाया जाता है? शायद अैसा ही हो। परन्तु यह न समझिये कि ये गुण तालीम और कवायदसे विकसित होते हैं। अिनसे जिन गुणोंका विकास होता है, अुनमें से कअी गुण हमारे लेने लायक जरूर हैं, परंतु कअी न लेने लायक भी हैं।

सिपाहियोंको सीधा तनकर खड़े रहना सिखाया जाता है, यह अच्छा है। हम भी वैसे ही सीधे तनकर खड़े रहनेवाले सैनिक अवश्य बनें। परंतु सीधी गर्दन रखनेमें अक्सर हमारे स्वयंसेवक लोगोंके साथ अुद्धतता और तुच्छतासे पेश आते हैं, अुन पर हुकूमत चलाने लगते हैं। अंग्रेज सिपाहियों और रास्तोंका बन्दोबस्त करनेवाले पुलिसके जवानोंको लोगोंके साथ अिस तरहका असभ्य और अुद्धत व्यवहार करना सिखाया गया है, अिससे हमारे देशमें हमें सैनिकोंका बहुत ही भद्दा नमूना देखनेको मिलता है। अैसा बरताव किसी भी सच्चे सैनिकको शोभा नहीं देता। हम तो किसी भी हालतमें वैसे बनना नहीं चाहते। हम सीधे खड़े रहेंगे, मगर लोगोंके साथ विनयका व्यवहार करेंगे; अुन पर सरदारी नहीं करेंगे, परंतु अुनकी सेवा करनेको सदा तत्पर रहेंगे; सीधे खड़े होने पर भी हमारे चेहरों पर निर्जीव पुतलों जैसी भावनाहीन मुद्रा नहीं होगी और न किसी जंगली जानवरकी-सी क्रूरता ही होगी।

फौजके सिपाहियोंको अेकसाथ कूच करना, अेकसाथ कदम अुठाना सिखाया जाता है। यह चीज हमें प्रयत्न करके सीख लेनी चाहिये। हम स्वयंसेवकोंको ही नहीं, परन्तु सब लोगोंको, गांवोंके लोगोंको भी अेकसाथ कदम अुठाना सीख लेना चाहिये। हम सेवक ढीले-ढाले, अव्यवस्थित और अेक-दूसरेके साथ टकराते हुअे चलते हैं, यह अच्छी बात नहीं। हमारे स्वयंसेवकोंके जुलूस निकलते हैं, तब तालीमके अभावमें वे कैसे आड़े-टेढ़े, अव्यवस्थित ढंगसे चलते हैं? कोअी धीरे चलते हैं तो कोअी जल्दी, कोअी पैर घसीटते हुअे चलते हैं तो कोअी दौड़ते हुअे, कोअी बातें करते हुअे तो कोअी अूधम मचाते हुअे। वे कुछ गाते हैं तो भी तालीम न मिली होनेके कारण अेकस्वरसे नहीं गा सकते। अिस मामलेमें हमें सेनाके सैनिकोंकी तरह अनुशासन-प्रिय बननेकी अिच्छा होनी चाहिये।

परंतु कवायदमें व्यवस्थित चलनेके अलावा अेकसाथ तरह तरहके काम करना भी आ जाता है। फौजके सिपाहियोंको युद्धकी आवश्यकताके अनुसार हथियार चलाना वगैरा सिखाया जाता है। हम किसी पर हथियार चलानेके लिअे नहीं, परंतु अपने लोगोंकी सेवाके लिअे सैनिक बने हैं। अिसलिअे हमें बड़े समूहोंमें साथ मिलकर सार्वजनिक सेवाके काम करनेकी तालीम लेनी चाहिये। गांवका पहरा देना, मेलोंमें बन्दोबस्त रखना, गांवोंमें सामूहिक सफाअीका काम करना, फैले हुअे रोगोंके विरुद्ध लड़ाअी लड़ना, आदि सेवाके काम व्यवस्थित ढंगसे, आपसमें टकराये बिना कैसे किये जायं, अिसकी तालीम हमें लेनी चाहिये। आज तालीमके अभावमें मौका आने पर ये काम हम करते हैं, तब समय और शक्तिका कितना अधिक दुर्व्यय होता है? और काम भी जितनी सावधानीसे होना चाहिये अुतनी सावधानीसे नहीं होता।

सेनाके सिपाहियोंकी जो अेक चीज आपको बहुत आकर्षक लगती है, वह है अुनका अेकसा गणवेश। आपको भी गणवेश पहननेका शौक है। अलबत्ता, आप गणवेश खादीका ही बनाते हैं। आप भी जब वह वेश पहनते हैं, तब अिस बातकी खास तौर पर कोशिश करते होंगे कि कपड़ोंमें जरा भी सल न पड़ें, वे कोरे और कड़े दिखाअी दें। परंतु राज्यके सैनिकोंकी तरह आप अूपरी टीमटाममें अतिरेक न होने दीजिये। अुनमें तो सल न पड़ने देनेका यह अर्थ हो गया है कि बंदूक कंधे पर रखनेके सिवा दूसरा कोअी काम ही न करें। वे गन्दगीमें पड़े रहेंगे, परंतु हाथमें झाड़ू लेकर अपनी जगह साफ कर लेनेको हलका समझेंगे। वे समझते हैं कि अुनके कपड़े लोगों पर रोब जमानेके लिअे हैं। लेकिन सच पूछो तो वे कपड़े छोटे होते हैं, आवश्यकतासे अधिक नहीं होते, पावोंमें नहीं अुलझते और काममें बाधक नहीं होते। अिससे यही सूचित होता है कि अुन्हें पहन कर कूच करनेमें और तरह तरहके दूसरे काम करनेमें हर तरहकी सहूलियत हो। यही अुनका हेतु है।

अिसके सिवा, सिपाहियोंका अेक गुण जो लेने लायक है वह आज्ञा-पालनका है। वे स्वयं यंत्रके अेक छोटेसे चक्रकी तरह बनकर रहते हैं और अुनका सेनापति अुन्हें जैसा हुक्म देता है वैसा वे तुरन्त करते हैं। अैसा अनुशासन सैनिक न पालें और सेनापतिके हुक्मके विरुद्ध अलग अलग मत पेश करते रहें, तो कभी कोअी लड़ाअी जीती ही नहीं जा सकती। हम हथियारोंकी लड़ाअी लड़नेवाले सैनिक भले न हों, फिर भी हमें अपने सेनापतिके हुक्मों पर दलील और देर किये बिना अमल करनेकी आदत डालनी ही चाहिये।

हमारे स्वयंसेवकोंमें अक्सर यह गुण नहीं पाया जाता। फौजी सिपाहीको तो मजबूर होकर सेनापतिकी आज्ञाके अधीन रहना पड़ता है। विरोध करने लगे तो अुसे अलग कर दिया जाता है; और रणक्षेत्रमें वह अपनी होशियारी दिखाने लगे, तो अुसे गोली मारकर खतम कर दिया जाता है। हम अहिंसक सिपाही हैं, अिसलिअे हमारी सेनामें अितनी सख्ती नहीं होती। सेनापतिके और हमारे बीचमें भय और रोबका संबंध नहीं होता, परंतु आदर और प्रेमका संबंध होता है। सेनापति हमें

हुक्म देता है, तब वह फौजी कठोरता और रोबसे नहीं देता। हुक्मका कारण भी यथासंभव वह हमें समझाता है। परन्तु अिससे हम यह भूल जाते हैं कि अुसके प्रति आज्ञा-पालनकी वृत्ति रखना हमारा फर्ज है। हरअेक परिस्थितिमें सेनापति हमसे तर्क नहीं कर सकता, लेकिन हुक्मकी फौरन तामील तो हमें करनी ही चाहिये।

सेनामें सेनापतिका चुनाव सरकार करती है। मातहत सिपाहियोंको सेनापति पसन्द है या नहीं अथवा अुसके प्रति अुनका प्रेम और आदर है या नहीं, यह नहीं देखा जाता। हम तो अपना सेनापति खुद ही पसन्द करते हैं। अुसकी देशभक्ति, अुसकी सेवा, अुसका त्याग, अुसका ज्ञान, अिन सब गुणोंसे हमें अुसके प्रति बहुत आदर होता है और अिसीलिअे हम अुसके हाथमें अपना सिर सौंपते हैं। अिसलिअे अुसका हुक्म हमें हुक्म जैसा नहीं लगता, प्रेम-भरी सूचना और सलाह जैसा ही लगता है। अुसके सामने व्यर्थके वाद-विवादमें पड़ें और तत्काल प्रसन्न मुखसे अुसकी आज्ञाका पालन न करें, तो हमारा यह व्यवहार कितना अनुचित माना जायगा?

परंतु, अुसके हुक्ममें भी यदि हमारे मूलभूत सिद्धान्तके विरुद्ध कोअी चीज हो— मान लीजिये कि अुसके विचार बदल गये और वह हमें देशके नाम पर किसीकी हत्या करने या किसीको लूटनेका आदेश दे, जिसमें सत्य न हो अैसी लड़ाअीमें हमें प्रेरित करे, तो हम अनुशासनका हौआ बनाकर अुसका पालन नहीं करेंगे। हम आदर-पूर्वक किन्तु स्पष्टतासे अुसे सेनापति-पदसे अुतार देंगे अथवा स्वयं अुसकी सेनासे अलग हो जायंगे। सरकारी सेनाओंमें अनुशासनके हौअेको यहां तक ले जाते हैं कि हुक्म होते ही अनुशासनके नाम पर सैनिक अैसे काम भी करने लगते हैं जो वीरपुरुषको शोभा नहीं देते; जैसे, निःशस्त्र लोगों पर शस्त्रोंसे हमला करना, स्त्रियों और बच्चों पर गोली चलाना, लोगोंके घर बरबाद करना, स्त्रियोंकी लाज लूटना वगैरा। हमारे देशमें सरकार विदेशी है और अुसकी गुलामीसे स्वतंत्रता प्राप्त करनेका आंदोलन देशमें दिन-दिन जोर पकड़ रहा है। सरकार हमारे ही लोगोंकी सेना द्वारा स्वतंत्रताके आंदोलनको दबाकर देशको अपने अधीन रखना चाहती है। अैसा करना अुसे सस्ता और सुविधापूर्ण लगता है, क्योंकि अितने गोरे सिपाही वह यहां कैसे लाये? अैसी स्थितिमें वह अिस बातकी खास सावधानी रखती है कि हिन्दुस्तानी सैनिकोंको आजादीकी हलचलकी जरा भी हवा न लगे, वे देशके नेताओंके संसर्गमें जरा भी न आयें। अिसे अनुशासनका नाम दिया जाता है। परन्तु यह अनुशासन नहीं; यह तो अनुशासनका अतिरेक है। हम अनुशासन जरूर चाहते हैं, परन्तु अैसा अनुशासन हरगिज नहीं।

फौजी सिपाहीमें हुक्म माननेके सिवा चरित्र या शिक्षाकी कोअी आवश्यकता नहीं मानी जाती। शिक्षा तो अुसके लिअे बिलकुल विरोधी समझी जाती है, क्योंकि शिक्षित मनुष्य बिलकुल यंत्रकी तरह थोड़ा ही काम करता है? और व्यसनी, लंपट, असंयमी और अुद्धत जीवनकी तो मानो जान-बूझकर अुसे आदत लगाअी जाती है। लड़ाअीमें किसी दिन अुसे मरना है, अिसलिअे जब तक लड़ाअी सिर पर आ न पड़े, तब तक वह मौज कर ले, बोलने-चालनेमें बीभत्स रसकी पराकाष्ठा तक पहुंच जाय,

अिसके लिअे अुसे प्रोत्साहन दिया जाता है। आप स्वीकार करेंगे कि अैसा चारित्र्यहीन मनुष्य सैनिकके नामको सुशोभित नहीं परन्तु कलंकित करता है।

सैनिक नामसे पुकारा जाना आपको वहुत पसन्द है और मुझे भी अच्छा लगता है। परन्तु अिस शब्दके साथ सरकारी सेनाके सैनिकका चित्र अितना अधिक जुड़ा हुआ है कि अुससे अिस सुन्दर शब्दकी वहुत कुछ सुन्दरता मारी गअी है और अिसमें दुर्गन्ध घुस गअी है। यहां तक कि हमारे स्वयंसेवक भी सैनिक नाम धारण करके जब गणवेश पहन लेते हैं, तव अुनके मनमें अेक प्रकारका झूठा नशा आ जाता है, और वे अैसा मानकर चलने लगते हैं कि लोगोंके साथ तिरस्कार और अुद्धततासे — अर्थात् रोवसे ही पेश आना चाहिये। अिसलिअे हम सैनिकोंके सब अच्छे गुण तो ग्रहण कर लेंगे, मगर अनेक दुर्गन्धोंसे दूषित हुआ 'सैनिक' नाम न ग्रहण करना ही ठीक होगा।

अिस तरह अेकके बाद अेक नामोंका त्याग करने पर और अुनमें से बहुत प्रिय और प्रचलित 'सैनिक' नामको भी छोड़ देने पर अन्तमें हमारे लिअे 'सेवक' नाम बाकी रह जाता है। यह हमारा सच्चा वर्णन करनेवाला शब्द है। हम जो कुछ हैं और जो कुछ रहना चाहते हैं, अुसका यह सच्चा वर्णन है। अिसमें रोब नहीं है, अभिमान नहीं है, बड़प्पनका ढोंग नहीं है।

यह तो नामका चुनाव हुआ। 'सेवक' शब्द सादा है और अभिमान, अुद्धतता और दंभादि दुर्गन्धोंसे मुक्त है। अिसलिअे हमने अुसे स्वीकार किया। परन्तु अुसे हमने जिम्मेदारियोंसे, तकलीफोंसे, बचनेके लिअे स्वीकार नहीं किया है। जिन जिन नामोंका हमने त्याग किया अुन नामोंकी तख्तियां छाती पर लटकाकर चलनेमें हमें संकोच होता है और संकोच होना ठीक ही है; परन्तु अुनसे जो गुण सूचित होते हैं अुनका तो हमें अपनेमें विकास करना ही है।

हम 'आश्रमवासी' नामसे पुकारा जाना नहीं चाहते, परन्तु सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, शरीर-श्रम, अभय, स्वदेशी, अस्पृश्यता-निवारण, सर्वधर्म-समभाव आदि आश्रमके ग्यारह व्रतोंसे युक्त जीवन जीनेका आग्रह हमें जरूर रखना है। वैसा जीवन बनाये बिना हम सेवककी अपनी योग्यता और शक्तिको पूरी तरह कैसे विकसित कर सकते हैं? और यदि अधूरे मनसे काम करें, अुसमें अपनी पूरी शक्तिका अुपयोग न करें, तो फिर हम सेवक नहीं परन्तु बेगारी या गुलाम ही गिने जायंगे।

अिसी प्रकार 'सत्याग्रही' और 'असहयोगी' नाम हमने धारण नहीं किये, परंतु सत्याग्रह और असहयोगके महाधर्मोंसे बचनेके लिअे हमने अैसा नहीं किया। अपनी सेवामें हमें जनताके सारे अुत्पीड़कोंके विरुद्ध सत्याग्रह और असहयोगके शस्त्रों द्वारा लड़नेको सदा तैयार रहना ही चाहिये। हमारी सेवाके फलस्वरूप लोग दो पैसे अधिक कमाने लगें, अितना ही हमारा ध्येय नहीं है। लोगोंमें अपने स्वाभिमान और स्वराज्यके लिअे अिन शस्त्रोंका अुपयोग करनेकी कुशलता और बहादुरी आये, यह हमारा मुख्य और पहला ध्येय है। अिसके सिवा, हमें अपनी सेवामें सदा सत्यका ही आग्रह रखना है; लोगोंकी कमजोरियोंका पोषण करना, अुनकी

खुशामद करना और अुनसे वाहवाही प्राप्त करना, किसी भी सच्चे या झूठे रास्तेसे अुनका नेतृत्व अपने हाथमें बनाये रखना — यह हमारी कार्य-पद्धति नहीं है। हमें तो सत्याग्रहीके नाते अुन्हें सत्यके रास्ते लगानेमें अुनका रोष भी मोल लेनेको सदा तैयार रहना चाहिये।

हम 'सैनिक' नामसे दूर रहे, परंतु अपने सेवकपनमें हमें सैनिकके सारे अच्छे लक्षण समा लेने हैं। हमने अिसलिअे सेवक नामका आश्रय नहीं लिया है कि हम तालीमहीन, अनुशासनहीन, व्यवस्थाहीन, ढीले कदम अुठानेवाले, खिन्न चेहरेवाले, ढीला बोलनेवाले, मनके अस्थिर और कायर बने रहना चाहते हैं।

हम जनताके केवल शिक्षक, पटवारी या कारकुन ही नहीं बनना चाहते। शांति-कालमें अुसके लिअे खादी वगैराके केन्द्र या पाठशाला, विद्यालय अथवा आश्रम चलायें, परंतु अुसके खातिर युद्ध छेड़नेका प्रसंग आ जाय तब पीछे हट जायं, अैसे सेवक हमें नहीं बनना है। लड़ाअीका मौका आने पर हम लोगोंको बहादुर बनायेंगे, अुनके आगे रहकर लड़ाअीकी सारी मार सहेंगे। लोगोंकी हिम्मत न चले, लंबे अरसेकी गुलामीके कारण वे खड़े न हो सकें, अैसे वक्त पर हम अुनके सैनिकोंके नाते अुनकी लड़ाअियां लड़ेंगे।

अिस प्रकार आश्रमवासी, सत्याग्रही, असहयोगी या सैनिक होनेका अभिमान हम नहीं करेंगे, सदा नम्र सेवक बने रहेंगे; परन्तु हम जानते हैं कि अपने जीवनमें हम आश्रमवासी, सत्याग्रही वगैरा बननेका सतत प्रयत्न न करें, तो हम सच्चे सेवक कभी नहीं बन सकते।

प्रवचन ६१

सत्याग्रही खादी-सेवक

कल हमने सेवककी अपनी कल्पनाको स्पष्ट रूपमें समझनेका प्रयत्न किया। हमने देखा कि सच्चे सेवकका जीवन किसी नौकरी करनेवाले आदमीके जैसा ठंडा, आराम-वाला तथा सलामतीका नहीं हो सकता। वह सदा सज्ज सैनिक रहेगा, सदा सत्या-ग्रही रहेगा। जब देशमें स्वराज्यकी सर्वमान्य लड़ाअी न हो रही हो, तब हम सेवक किसी भी रचनात्मक कार्यमें लगे होते हैं। परंतु यदि रचनात्मक कार्यकी अवधि कुछ वर्ष तक जारी रहती है, तो हम अुपरोक्त विचारको अक्सर भूल जाते हैं।

जैसे दर्जी या मोचीका धंधा करनेवालेकी कमर झुक जाती है, सुनारकी आंखोंकी दृष्टि मन्द हो जाती है, गद्दी पर बैठकर व्यापार करनेवाले सेठोंके पेट बढ़ जाते हैं, अुसी तरह रचनात्मक काममें भी मनुष्यके ठंडा और सलामती चाहनेवाला बन जानेका खतरा रहता है।

अैसा परिणाम आना ही चाहिये, सो बात तो नहीं है। धंधेवाले भी जाग्रत रहें तो पूरे तंदुरुस्त रहकर अपने धंधे कर सकते हैं, अुन्हें करना चाहिये। दर्जी और मोची

कुवड़े हो जाते हैं, अिसमें धंधेकी अपेक्षा अुनका अपना दोष ही अधिक होता है। यदि वे काम करनेके लिअे अुचित आसन सोच लें, अमुक समयके वाद सारे शरीरका व्यायाम हो सके अैसा दूसरा काम करते रहें, तो वे कुवड़े होनेसे जरूर वच सकते हैं।

अक्सर चरखा कातनेके शौकीन भी अुत्साहमें आकर घंटों वैठे वैठे लगातार कातते रहते हैं। यदि वे वर्षों तक अैसा करें तो अुनकी भी दर्जियोंकी तरह कमर झुक जायगी अथवा अुनके पैर वगैरा अवयव शक्तिहीन वन जायंगे। चरखेको देशमें राष्ट्रीय महत्त्व मिल गया है, वह स्वराज्यका शस्त्र वन गया है और हमारी राष्ट्रीय पताकामें विराजमान है, अिसलिअे वह अैसे परिणामको आनेसे रोक नहीं सकेगा।

रचनात्मक काम करनेवालोंके विषयमें भी कहा जा सकता है कि वे ठंडे और ढीले पड़ जाते हों, तो अिसमें दोष अुनके कामका नहीं, परंतु अुनका अपना है। स्वयं जाग्रत रहें तो वे अैसे परिणामको आनेसे रोक सकते हैं। और यदि जाग्रत न रहें तो रचनात्मक कामका स्वराज्यके साथ कितना ही संवंध क्यों न हो, वह अुन्हें ठंडा पड़नेसे रोक नहीं सकेगा।

अूपर दर्जी, मोची वगैराके धंधोंका जो अुदाहरण दिया गया है, वह रचनात्मक कार्य पर पूरा लागू नहीं होता। वे धंधे शरीरकी वनावटको ही विगाड़ते हैं, परंतु रचनात्मक कार्य तो सचेत न रहने पर मनकी वनावटको भी विगाड़ सकता है। अुसके असरके साथ मेल खानेवाली तुलना ढूंढ़नी हो, तो भंगीकाम करनेवालोंकी हो सकती है। वह कितना अुपयोगी, आवश्यक, पवित्र और सेवाका काम है? फिर भी हम देखते हैं कि मूढ़भावसे यह धंधा करनेवाले स्वच्छताकी भावना विलकुल खो वैठते हैं, गंदगीके वारेमें मनुष्यको शोभा न देनेवाली सहनशक्ति वढ़ा लेते हैं। अुन्हें अपने स्वाभिमानका भी भान नहीं रह पाता। अिसी प्रकार व्राह्मणका स्थान भारतमें अूंचा माना जाता है, किन्तु अपना काम ज्ञानपूर्वक न करनेसे वे भी कैसे दीन भिक्षुक वन जाते हैं, अिसका अुदाहरण भी लिया जा सकता है।

हमारे रचनात्मक कामोंमें कुछ काम आर्थिक प्रकारके होते हैं, कुछ शिक्षाके होते हैं, कुछ प्रचारके होते हैं और कुछ तंत्र-संचालनके होते हैं। ये सव काम अैसे हैं, जिन्हें अच्छे ढंगसे व्यवस्थित करनेके लिअे किसी न किसी प्रकारके तंत्र वनाने पड़ते हैं, रुपया अिकट्ठा करना पड़ता है और खर्च करना पड़ता है, मकान और जायदाद खड़ी करनी पड़ती है तथा कार्यालय चलाने पड़ते हैं।

रचनात्मक कामोंमें प्रमुख माने जानेवाले खादीके कामको ही लीजिये। अन्य कोअी ग्रामोद्योगका काम करते हों तो अुसे भी यही वात लागू होगी। हमने केवल अपने चरखे, पींजन और करघेसे प्रारंभ किया हो, तो भी यदि हमें अिस विषयकी जानकारी होगी और आसपासकी परिस्थिति अनुकूल होगी, तो हमें चरखा वगैरा सरंजाम तैयार कराना पड़ेगा और वेचना पड़ेगा, काता जानेवाला सूत वुनवाना पड़ेगा। अुसके लिअे जुलाहोंको वसाना पड़ेगा, कपासका संग्रह करना पड़ेगा, खादी वेचनेकी व्यवस्था करनी पड़ेगी, लोगोंको कताअी, पिंजाअी, वुनाअी वगैरा सिखानेकी व्यवस्था

करनी पड़ेगी तथा अुन्हें अिस कार्यका महत्त्व समझानेके लिअे अुनके बीच घूमना पड़ेगा। अिन सब कामोंके लिअे रुपया लाना पड़ेगा, कार्यालय खोल कर हिसाब और व्यवस्थाका काम सावधानीपूर्वक करना पड़ेगा, कार्यालय तथा बुनाअीशाला, विद्यालय, कार्यकर्ताओंके निवास वगैराके लिअे मकान बनाने पड़ेंगे। अिस कामके लिअे कोअी संस्था या संघ खोलने पड़ेंगे, अुनमें अध्यक्ष, मंत्री वगैरा चुनने पड़ेंगे और वैतनिक सहायक भी रखने होंगे।

यह काम शुरू करते समय तो हमें स्पष्ट कल्पना होती है कि यह राष्ट्रकी रचना करनेका अेक कार्यक्रम है, स्वराज्यकी शक्ति बढ़ानेका कार्यक्रम है। परंतु ज्यों-ज्यों काम फैलता जाता है और अुसका व्यवहार-पक्ष बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों मूल कल्पनाके मंद पड़ते जानेकी और व्यवहारमें हमारे जकड़े जानेकी बहुत ज्यादा संभावना रहती है।

हम कातनेवालों और बुननेवालों वगैराके साथ, अुनकी शक्ति बढ़े और अुनमें स्वराज्यकी तमन्ना पैदा हो अिसके लिअे, संपर्क बढ़ानेके साधनके रूपमें खादीकार्य शुरू करते हैं, परन्तु यह मुद्देकी बात भूलकर थोड़े ही समयमें हम अुन्हें केवल अपने कारीगर मानने लगते हैं, अुन्हें दो पैसे दिलानेवाला धंधा जुटा दिया कि अुनके प्रति हमारा काम पूरा हो गया अैसा अल्पसंतोष कर लेते हैं। हमारा खादीका काम अुनके जीवनमें और अुनके गांवोंमें स्वराज्यकी हवा फैलानेके लिअे है, यह बात भूलकर हम कुछ अैसा मानने लगते हैं कि शहरोंमें बहुत देशभक्त रहते हैं और अुन्हें अपनी देशभक्ति दिखानेके लिअे खादीकी जरूरत है, अिसलिअे अुन्हें खादी मुहैया करके देश-भक्तिमें अुनके सहायक बननेके लिअे हम खादीका काम करते हैं।

वहांसे यदि मांग अधिक आती दिखाअी दे, तो हम कारीगर बढ़ा देते हैं, सूत वगैराका हिसाब रखनेवाले होशियार मुनीम रख लेते हैं तथा चरखा वगैरा बनानेके लिअे निपुण कारीगर बैठा देते हैं। लोगोंमें प्रचार करनेके लिअे भी अैसे होशियार आदमी रखते हैं, जो अनेक युक्ति-प्रयुक्तियोंसे, रुपयेका लालच लगाकर, कातनेवालोंकी संख्या बढ़ा सकें। हमारा व्यवहार हमें विवश करता है कि हम देखकर होशियार कार्यकर्ता और होशियार कारीगर ही रखें। अिस तरह न रखें तो हमारी खादी खराब हो जाय, महंगी पड़े, आवश्यक मात्रामें अुसकी पैदावार न हो और अुसके ग्राहक नाराज हो जायं।

परंतु ये होशियार आदमी स्वराज्यके काममें भी होशियार हैं या नहीं, यह देखनेसे हमारा काम नहीं चलेगा। कोअी कार्यकर्ता यदि अैसा होशियार होगा, तो वह कातने-वालोंमें प्रचारके लिअे जायगा और वहीं अड्डा जमा लेगा। अुनके बीचमें किसीने शराब-ताड़ीकी दुकान लगा रखी हो और वह अुनके जीवनको बरबाद कर रही हो, तो यह देखकर अुसका दिल अुबल अुठेगा। वह अुनसे यह व्यसन छुड़वानेके प्रयत्नमें लग जायगा। लोगोंको समझायेगा और कदाचित् दुकानके सामने सत्याग्रह करने भी बैठ जायगा। कोअी सरकारी सिपाही या दूसरा अधिकारी लोगोंको सताता या घूस-रिश्वत लेता पाया जाय, तो 'स्वराज्यका होशियार' सेवक तुरन्त अुससे टक्कर लेगा, लोगोंकी

रक्षा करके अुनकी शक्ति बढ़ायेगा। और किसे पता है कि अिस कारणसे वे अधिकारी अुसे बांधकर जेलखाने नहीं पहुंचा देंगे?

मान लीजिये कि जुलाहोंके बच्चे बहुत ही गंदे हैं, मैलसे अुनके शरीरों पर फोड़े-फुंसी हो गये हैं और अूपर मक्खियां भिनभिना रही हैं। मां-बाप अुन्हें साफ-सुथरे रखनेकी कला न तो जानते हैं और न अैसा करनेकी अुन्हें फुरसत है। स्वराज्यका होशियार कार्यकर्ता होगा तो अुससे यह देखा नहीं जा सकेगा। वह तो बच्चोंको प्रेमसे नहलायेगा-धुलायेगा, अुनके मां-बापको बच्चोंकी सार-संभालकी कला सिखाने लगेगा। जुलाहे अधिक खादी बुनकर अधिक कमानेके लोभमें बालकोंको समय न देते हों, तो वह अुन्हें थोड़े समयके लिअे करघा अेक तरफ रख देनेकी सीख देगा।

अब कार्यालयके संचालकने तो अुन्हें अधिक सूत कतवा लाने और अधिक खादी बुनवा लानेको भेजा था। अिसके बजाय वे तो अैसे काममें लग गये और कदाचित् वे अपनी प्रवृत्तियों द्वारा चरखे और करघेके काममें अुलटा विक्षेप भी खड़ा कर बैठे। हम खादीकार्यके केवल व्यावहारिक पहलूमें फंसे होंगे, तो स्वराज्यके अैसे होशियार कार्यकर्ता हम चुन नहीं सकेंगे। हम तो अैसे होशियार लोगोंको ही तरजीह देंगे, जो किसी भी तरह अधिक खादी बनवा लायें अर्थात् जो बोलने-चालनेमें चतुर, बारीकीसे हिसाब करनेवाले और लोगोंकी तकलीफें देखकर आड़ी-टेढ़ी बातोंमें फंसनेवाले भावना-प्रधान न हों। हम अपनेमें, अपने साथियोंमें, अपने सारे काममें और हमारे वातावरणमें स्वराज्यकी होशियारीको दूर रखेंगे, अुसकी हंसी अुड़ायेंगे और व्यावहारिक होशियारीको ही महत्त्व देंगे।

अिससे हमारे कार्यमें, हमारी अुत्पन्न की हुअी खादीमें, स्वराज्यकी सुगंध न आये, अुससे हमारे गांवोंमें स्वराज्यकी हवा न फैले, तो अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नहीं। अन्तिम स्वराज्य सरकारके साथ बड़ी लड़ाअियां लड़नेसे भले ही आता हो, परंतु स्वराज्यकी शक्ति तो अुपरोक्त छोटे-छोटे वीरकर्मोंसे — सत्याग्रहोंसे ही अुत्पन्न की जा सकेगी। अैसी तालीम जिन कार्यकर्ताओंको और लोगोंको मिली होगी, वे ही अंतिम लड़ाअीमें भी विजय प्राप्त कर सकते हैं। खादी वगैरा रचनात्मक कार्य भी हम अिसीलिअे करते हैं कि अुन्हें करते हुअे हम ग्रामजनताके बीच रहें और अुसे स्वावलंबन तथा स्वदेशीके, स्वराज्य और सत्याग्रहके पदार्थपाठ सिखा सकें।

प्रवचन ६२

सत्याग्रही शिक्षक

खादी और ग्रामोद्योगकी तरह कुछ सेवक राष्ट्रीय शिक्षाके द्वारा रचनात्मक कार्य करना पसन्द करते हैं। अिसमें भी मूल अुद्देश्य तो अुसके द्वारा स्वराज्यकी रचना करना ही है। अिसके लिअे सेवकको अपना शिक्षाका काम अिस ढंगसे करना चाहिये कि अुसके विद्यार्थियोंमें और ग्रामजनोंमें स्वराज्यकी शक्ति बढ़े। स्वराज्यका नाश करनेवाले जो तत्त्व हमारे जीवनमें हैं, अुनका अुसे विचार कर लेना चाहिये और अुन सबको नष्ट करनेकी दृष्टिसे अपना पाठ्यक्रम तैयार करना चाहिये।

आज शरीर-श्रम और अुद्योग समाजमें नीचे माने जाने लगे हैं। जिसे देखो वही विना मेहनत किये कमानेका रास्ता ढूंढ़ता है। और लोगोंकी यही मान्यता हो गयी है कि पाठशालायें विना मेहनत किये कमानेकी युक्ति सिखानेके कारखाने हैं। यह चीज स्वराज्यके लिअे बड़ी विघातक है। अिसलिअे राष्ट्रीय शिक्षकको चरखे, करघे और दूसरे ग्रामोद्योगों तथा शरीर-श्रमके कामोंको अपने पाठ्यक्रमके मूल आधार-स्तंभ बनाना चाहिये।

गांवोंके अुद्योग करनेवाले लोग देख-देखकर और अभ्याससे अपने-अपने धंधोंकी परंपरासे चली आ रही क्रियाओंको जानते हैं। अुनके हाथ अुतनी तालीम पाये हुअे होते हैं। परंतु साथ ही अुनकी बुद्धि तालीम पाअी हुअी नहीं होती। अिसलिअे किसान सीधी जुताअी कर सकता है, लेकिन अुसकी बुद्धि जुताअीकी तरह सीधी आरपार नहीं जा सकती। दूसरे सब अुद्योग-धंधे करनेवालोंका भी यही हाल होता है। अिसीसे किसान लोगोंमें यह मान्यता फैल गअी है कि अुद्योग और बुद्धिमें सदा वैर होता है, अतः जिसे बुद्धि बढ़ानी हो अुसे अुद्योगको छूना ही नहीं चाहिये। अैसी गलत मान्यताके कारण लोग अपने बच्चोंसे शिक्षाके भंडार जैसे अपने घरके धंधे छुड़वा देते हैं और अुनकी बुद्धि बढ़ानेके लिअे ही अुन्हें केवल बैठे बैठे पुस्तकें पढ़नेकी पाठशालाओंमें भेजना पसन्द करते हैं। बच्चे पाठशालामें नियमित न जायं तो वे अुन्हें डांटते हैं: 'पढ़ेगा नहीं तो बैलकी पूंछ मरोड़नी पड़ेगी' अथवा 'चाक घुमाकर घड़े अुतारते रहना पड़ेगा' अित्यादि।

राष्ट्रीय शिक्षक जानता है कि आज सारी प्रजा अुद्योगोंकी अैसी निन्दा करती है। और समूची नअी पीढ़ी अुद्योगोंसे विमुख हो रही है, यह बड़ीसे बड़ी राष्ट्रीय विपत्ति है। अिसलिअे अुसे अपना पाठ्यक्रम अिस ढंगसे बनाना चाहिये, जिससे यह प्रत्यक्ष देखा जा सके कि अुद्योग बुद्धिको मन्द नहीं बनाते, किन्तु अुसे विकसित करते हैं।

अिसके सिवा, राष्ट्रीय शिक्षक देखता है कि लोगोंमें यह विचार घर कर रहा है कि जैसे-तैसे स्वार्थ सिद्ध किया जाय और किसी भी अुपायसे रुपया कमा कर अैश-आराम किया जाय। अैसे लोगोंमें स्वदेशीका प्रेम कैसे पैदा हो सकता है?

स्वराज्यकी शक्ति कैसे विकसित हो सकती है? अिसलिअे अुसे अपने पाठ्यक्रममें विद्यार्थियोंको स्वदेश-सेवा करनेके मौके हमेशा देते रहना चाहिये; यह विचार अुनकी रग रगमें पैठा देना चाहिये कि जीवन सेवाके लिअे है, भोग-विलासके लिअे नहीं। अिसलिअे अुसे केवल पुस्तकें पढ़ाकर संतोष नहीं होगा। वह अनेक प्रकारके ग्रामसेवाके काम हमेशा करता रहेगा और अुनमें अपने विद्यार्थियोंको साथ रखकर अुन्हें बचपनसे सेवा-जीवनका रस लगायेगा।

राष्ट्रीय शिक्षक देखता है कि लोगोंमें अूंच-नीचके भेदका जहर अिस हद तक फैल गया है कि अुससे सुलगी हुअी अन्याय और द्वेषकी अग्नि देशकी स्वराज्य-शक्तिको जला रही है। अिसलिअे अुसे अपने विद्यार्थियोंको अिस ढंगसे तालीम देनी चाहिये कि अुनके विचारोंमें वह जहर रहने ही न पाये। वे हरिजनों और दूसरी जातियोंका तिरस्कार न करें, अितना ही नहीं, परन्तु अुनकी सेवाके अनेक काम करके अुनका प्रेम सम्पादन करें तथा हिन्दू, मुसलमान वगैरा अलग अलग धर्मोंके लोगोंमें भी अेक-दूसरेकी सेवा करके और अेक-दूसरेके अच्छे गुणोंको ग्रहण करके भाअीचारा बढ़ायें।

राष्ट्रीय शिक्षक देखता है कि देशमें जहां-तहां भयका साम्राज्य फैला हुआ है। अंग्रेज सरकारने अपने राज्यकी जड़ें गहरी जमानेके लिअे और अिस देशके लोगोंको बिना किसी रोक-टोकके चूसनेके लिअे सेना, पुलिस और अदालतों वगैराके तंत्रों द्वारा लोगों पर आतंक बैठाकर अुन्हें निःसत्व और भयभीत बना दिया है। लोगोंको हमेशा भयभीत रखकर थोड़ेसे आदमियोंने अितने विशाल खंडको अपने पंजेमें रख छोड़ा है। सब तरफसे अुसकी प्रगतिको रोक रखा है। राष्ट्रीय शिक्षकको अपने पाठ्यक्रममें निर्भयताके गुणका विकास करनेकी कोशिश करनी चाहिये। अिसके लिअे विद्यार्थियोंको गांवका पहरा लगाने वगैराकी तालीम देनी चाहिये।

परंतु निर्भयताकी तालीम देनेका काम वह केवल अपनी पाठशालासे चिपटे रहकर नहीं कर सकता। अिसके लिअे तो अुसे गांववालोंका भी शिक्षक बनना चाहिये। लोगोंको अुसे यह सिखाना चाहिये कि अैसा सोचकर निराश होने और भयभीत दशामें रहनेकी जरूरत नहीं कि हथियार न होनेके कारण अन्यायों और जुल्मोंके विरुद्ध कैसे लड़ा जा सकेगा। सत्याग्रह, असहयोग तथा सविनय कानून-भंग अन्य सारे शस्त्रोंसे अधिक बलवान और कारगर हैं। ये शस्त्र अैसे नहीं हैं, जिनका अुपयोग शरीरबल वाले, राजसत्तावाले और धनसत्तावाले ही कर सकें। यदि हमारे हृदयमें स्वाभिमानकी गहरी भावना हो, ज्वलंत देशभक्ति हो, हम सत्य और न्यायके अुपासक हों, तो हम अिन शस्त्रोंका अुपयोग करनेके लिअे हर प्रकारसे योग्य हैं। दैनिक जीवनके छोटे-छोटे प्रसंगोंमें दबे बिना या अदालतोंकी शरण लिये बिना हम सत्याग्रहके द्वारा लड़ लें, तो दिनोंदिन हमारा साहस बढ़ता जायगा, हममें आत्म-विश्वास आता जायगा और अुस तालीमके परिणामस्वरूप हममें बड़े सामूहिक सत्याग्रह करनेकी शक्ति और कुश-लता भी आ जायगी। लोगोंको यह शिक्षा देनेके लिअे सच्चे राष्ट्रीय शिक्षकको अन्याय और जुल्मका मौका आने पर स्वयं अुसका विरोध करनेके लिअे सदा तैयार रहना

चाहिये। जिससे वह लोगोंको सत्याग्रह सिखायेगा और विद्यार्थियोंमें भी सत्याग्रहका बीजारोपण कर सकेगा।

राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा स्वराज्यकी रचना करनेवाले सेवकके सर्वांग-संपूर्ण पाठ्य-क्रमकी सारी बातें मुझे आज गिनानी नहीं हैं। मैंने यहां अिस बातकी मोटी रूपरेखा ही दी है कि अुसके मस्तिष्कमें कैसे तेज विचार होने चाहिये और कैसी पद्धतिसे अुसे शिक्षाका काम करना चाहिये।

अिस कार्यमें शिक्षक यदि जाग्रत न रहे, सत्याग्रही न रहे, तो अुसके शिथिल हो जाने, साधारण मास्टर बन जानेका पूरा खतरा है।

प्रथम तो यह स्पष्ट है कि अुपरोक्त शिक्षा लेनेके लिअे अुसके पास बहुत ही थोड़े आदमी आयेंगे। लोगों पर असर डालनेवाले बल अितने जोरदार हैं कि वे प्रचलित प्रवाहमें बह जाते हैं। सच्ची शिक्षाको समझने और अुसे प्राप्त करनेकी आज अुन्हें हिम्मत कैसे हो सकती है? परिणामस्वरूप शिक्षक विद्यार्थियोंकी बड़ी संख्याके बिना घबराने लगता है और अपने मनमें तर्क करता है: "लोगोंको अच्छा लगने-वाला पाठ्यक्रम तैयार करके विद्यार्थियोंकी संख्याको आकर्षित करनेमें क्या हर्ज है? सरकार अथवा विश्वविद्यालयसे संबद्ध पाठशाला क्यों न चलाअी जाय? विद्यार्थी मेरे पास आयेंगे तो मैं अुन्हें प्रत्येक विषय द्वारा राष्ट्रीय विचार ही दूंगा।" अैसा सोचकर वह अपनी शिक्षामें से अुद्योगोंको छुट्टी देता है अथवा नाममात्रके लिअे रखता है, अंग्रेजी भाषा जारी करता है और विश्वविद्यालयकी परीक्षाओंमें बैठनेमें विद्यार्थियोंको बाधा न आये, यह बात ध्यानमें रखकर वहांकी पढ़ाअी पक्की कराने लगता है। लोगोंको नाराज न करनेकी दृष्टिसे हरिजनोंके लिअे अपने द्वार बंद रखनेकी हद तक भी वह पहुंचता है।

विद्यार्थियोंके बढ़ने पर राष्ट्रीय विचार देनेकी अुसमें जो अुमंग थी, अुसे भी वह पूरा नहीं कर सकता। क्योंकि अब अुसे अनेक शिक्षक रखने पड़ते हैं। वे सब अुसके पाठ्यक्रम पर अमल करनेकी योग्यतावाले ही होने चाहिये। यह हो सकता है कि अुनमें से अधिकांशको सपनेमें भी राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा स्वराज्यकी रचना करनेकी बात न सूझी हो।

साथ ही, अुसे अपना काम अिस प्रकार व्यापक बनानेके लिअे बहुत लोगोंसे दान लेने पड़ते हैं, अुन्हें अिकट्ठा करनेमें अपना सारा समय होमना पड़ता है और पग-पग पर अपने स्वराज्य-रचनाके अुद्देश्यको दबाकर दाताओंको राजी रखनेका ही प्रयत्न करना पड़ता है।

अिस प्रकार, मनुष्यमें अैसी होशियारी होगी तो वह अनेक विद्यार्थियों, अनेक शिक्षकों, अनेक मकानों और अनेक केन्द्रोंवाला अेक बड़ा तंत्र तो खड़ा कर सकेगा, परन्तु स्वराज्यकी रचनाका अुद्देश्य वह हवामें अुड़ा देगा। अुसके विद्यार्थी भी अन्य किसी पाठशालाके विद्यार्थियोंकी तरह श्रद्धा-विहीन, साहस-विहीन और किसी भी तरह पैसा

कमानेकी अिच्छा रखनेवाले ही होंगे। लोगों पर अैसी शिक्षा किसी भी प्रकारका अच्छा — स्वराज्यकी योग्यता वढ़ानेवाला — असर नहीं डाल सकेगी।

फिर भी, शिक्षकके मनमें अपने कामका विस्तार देखकर अेक तरहका झूठा अभिमान रहा करेगा। अुसमें खलल डालनेवाले अशांतिके मौकोंसे वह डरता रहेगा। सत्याग्रहोंके अवसर अुपस्थित होने पर स्वराज्यके शिक्षकको शौर्य चढ़ना चाहिये, स्वराज्य-शिक्षाका ज्वार आया देखकर अुसे अुल्लास होना चाहिये; अिसके वजाय यह शिक्षक अुस पर अफसोस करेगा, चिन्तामें पड़ जायगा और अुस हवासे अपने कामको अलिप्त रखनेका प्रयत्न करेगा।

किसी भी पाठशालाको राष्ट्रीय कहने मात्रसे या अभ्यास-क्रममें राष्ट्रीय पाठोंवाली पुस्तकें रख देनेसे ही अुसमें राष्ट्रीय हवा पैदा नहीं हो सकेगी और न अुसके द्वारा विद्यार्थियोंके जीवनमें स्वराज्यकी रचना हो जायेगी। स्वराज्यकी रचना करनेवाली पाठशालाका पाठ्यक्रम पुस्तकोंमें वन्द न रहकर हमारे ग्राम-जीवनमें फैल जायगा। स्वराज्य-शिक्षक पाठशालाके कमरेमें बैठा रहनेवाला नहीं होगा, परन्तु ग्रामसेवाकी अनेक प्रवृत्तियां करनेवाला ग्रामसेवक होगा, स्वराज्यका सैनिक होगा और सदा सत्याग्रही रहेगा।

प्रवचन ६३

सत्याग्रहीके राजनीतिक दावपेंच

अव रचनात्मक कार्यके अेक तीसरे ही प्रकारको देखें। वह है सरकारी और अर्धसरकारी संस्थाओंमें भाग लेनेका। वे संस्थाअें सरकारी विधान-सभाअें, नगर-पालिकाअें, लोकल वोर्ड, स्कूल-कमेटियां, ग्राम-पंचायतें आदि हैं।

यह स्पष्ट है कि देशमें स्वराज्य हो तव तो सचमुच राज्यके मुख्य तंत्रकी अपेक्षा ये संस्थाअें ही अधिक महत्त्वकी वन जाती हैं। लेकिन देश पर परचक्र चल रहा हो, तव यही संस्थाअें जनताका काम करनेके वजाय अुसके भीतर फूट, अीर्ष्या आदि वढ़ानेवाली वन जाती हैं। अिस कारण हमारे लिअे अधिकतर अिन संस्थाओंके लालचसे दूर रहना ही अच्छा होता है।

हम विदेशी सरकारसे लड़ते आये हैं और सत्याग्रह करते रहे हैं, परन्तु अुसमें हमारी जनताकी तालीम कच्ची रह जानेसे हम अभी तक सम्पूर्ण स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सके; अितने पर भी प्रत्येक लड़ाअीसे सरकारकी जड़ें अच्छी तरह हिल जाती हैं और अुसे अपनी सत्तामें से कुछ न कुछ अंश छोड़ना पड़ता है। राजकाजमें लोक-प्रतिनिधियोंको अधिकाधिक संख्यामें आने देना अुसके लिअे अनिवार्य हो जाता है। अलवत्ता, कअी वार तो वह अपनी सत्ताके वल पर खेल ही खेलती है; सत्ता

छोड़नेका सिर्फ दिखावा भर करती है और पंजेका अेक नख ढीला करती है, तो दूसरे सारे नख अधिक गहरे घुसाती है।

फिर भी कभी-कभी अैसी परिस्थिति पैदा हो जाती है जब हम सीधी लड़ाअी बन्द कर देते हैं; अुस समय सरकारकी छोड़ी हुअी सत्ताको हाथमें ले लेनेसे जनताकी स्वराज्य-शक्तिको बढ़ा सकनेकी संभावना हमें दिखाअी देने लगती है। अैसी परिस्थितिमें वह कार्य अेक रचनात्मक कार्यके रूपमें हाथमें लेनेमें कोअी आपत्ति नहीं हो सकती। परन्तु दूसरे रचनात्मक कार्योंकी तरह अिसमें भी सेवकोंको सतत सावधान रहकर बारीक नजरसे यह देखते रहना चाहिये कि अुनके कामसे लोगोंमें स्वराज्यकी योग्यता बढ़ती है या नहीं।

सेवाका यह क्षेत्र सेवककी दृष्टिसे स्वराज्यमें भी खतरनाक है, तब विदेशी राज्यमें तो अुसे काजलकी कोठरीमें घुसनेके बराबर ही समझना चाहिये। अत्यंत अूंचे चरित्रवाले सेवक ही अुसमें घुसकर कालिख लगे बिना बाहर निकल सकते हैं। वह राजनीतिक दावपेंच अथवा कूटनीतिका क्षेत्र है, बड़ा जुआघर है। अिस खेलका नशा सब नशोंसे बढ़ जाता है। दुनियाके जबरदस्त कूटनीतिज्ञ सदा अुसमें अपना जाल बिछाकर मौजूद ही रहते हैं। राज्य विदेशी हो तब तो अिस राजनीतिक दावपेंचके खेलमें गंदगीकी हद ही नहीं होती।

अिस क्षेत्रमें घुसनेका प्रवेश-द्वार है चुनाव। अिसके समान रस्साकशीवाला और गन्दा खेल दूसरा कौनसा होगा? केवल सेवा और चरित्रके बल पर अुसे जीतनेकी हिम्मत हो, तो ही सेवक अुसे स्वच्छ और शुद्ध खेल बना सकता है।

प्रवेश-द्वारमें दाखिल हुअे कि सरकारी सत्ताकी कोअी कुरसी हमारे सामने आ जाती है। अुस पर बैठ जाने पर सत्ताके मदसे मुक्त रहना आसान नहीं होता। जनताके प्रति तिरस्कार और अुद्धतता दिखाये बिना अुस सत्तामदका आनन्द मनुष्यको आता नहीं। महत्त्वाकांक्षीके लिअे वह आगे बढ़नेकी नसेनीकी अेक सीढ़ी बन जाती है।

अिसके अलावा, विदेशी सरकार तो अैसे कमजोर लोगोंको ढूंढ़ती ही रहती है। अुन्हें पुचकार कर, बड़े पद पर बैठाकर अपनी भेदनीतिके पांसे फेंके बिना वह कैसे रह सकती है? हमारे राजनीतिक जीवनमें अैसे बहुत अुदाहरण देखनेको मिल सकते हैं, जिनमें लोगोंने जनताकी सेवा करनेका दिखावा करके अपना मार्ग बनाया है और बादमें सेवाका वेश अुतारकर अपनी महत्त्वाकांक्षाअें पूरी करनेमें लग गये हैं। अितना ही नहीं, अैसे भी अुदाहरण मिल जायंगे, जिनमें लोगोंने प्रारंभ तो अच्छी सेवा-भावनासे किया था, परंतु सत्तामदमें चूर होकर और भेदनीतिके जालमें फंसकर वे जनसेवक न रहकर सरकारके हथियार ही बन गये।

जो मनुष्य अिस हद तक गिरनेवाले न हों, अुन्हें भी अिस क्षेत्रमें खतरा तो है ही। अेक बड़े तंत्रका कारबार चलानेमें — सरकारके किसी व्यवस्था-विभागका अथवा अेक नगर-पालिकाका ही नहीं, अेक छोटीसी ग्राम-पंचायतका संचालन करनेमें — भी अेक

प्रकारका रस लग सकता है। सार्वजनिक धनका लेन-देन अपने हाथों हो, कर्मचारी वर्ग पर अपना हुक्म चलता हो, चपरासी सलाम करते हों, कारकुन कागजों पर हस्ताक्षर कराते हों, व्यर्थकी वातोंमें फाजिलवाजी चलाकर अेक विभाग द्वारा दूसरे विभागको डांट-फटकार वतानेका खेल हो रहा हो—तो अितना रस भी साधारण मनुष्योंको नशा चढ़ानेके लिअे काफी हो जाता है। अिस पर प्रजाजनमें कोअी खुशामद करनेवाले मिल जायं, किसी जान-पहचानवालेका छोटासा काम कर देनेका मौका मिल जाय, तो अुन्हें जीवन धन्य हुआ जैसा लगता है।

साथ ही, अेक और खतरा भी याद रखने लायक है। अैसे सरकारी तंत्र चलाने लगते हैं तव यह भी देखा जाता है कि अच्छे और समझदार आदमियोंको भी अुस तंत्रके लिअे अेक प्रकारकी सहानुभूति और ममता हो जाती है। वे अिस प्रकार कहने लगते हैं, "तंत्रमें कुछ अन्याय तो होते ही हैं। हमें तंत्रकी कठिनाअी भी देखनी चाहिये। सवको संतोष देने लगें तो तंत्र अेक दिन भी नहीं चल सकता। पुलिसको अपराधोंका पता लगानेमें कुछ ज्यादती तो करनी ही पड़ती है। किसानको हमें कुछ हद तक तो दवा हुआ रखना ही पड़ेगा। लोगों पर रोव जमानेके लिअे हमें कुछ तो सख्ती रखनी ही होगी। हर वातमें लोगोंकी पुकार सुनने वैठें तो राज्य अेक घड़ी भी न चले। राजनीतिक दावपेंचमें शुद्ध सत्यसे चिपटे रहना संभव नहीं। विरोधियोंके खिलाफ हमें कभी भेदनीति तो कभी दंडनीतिके दाव खेलने ही चाहिये, अित्यादि।"

जो विदेशी नौकरशाहीके अधीन अैसे काम करने लगते हैं, अुनके मनमें अैसे विचार भी आने लगते हैं, "अंग्रेजोंका दावा है कि राज्यतंत्र अुन्हींको चलाना आता है, हम हिन्दुस्तानियोंको नहीं आता। अव हम वता देंगे कि हम भी अुसमें होशियार हैं। हम भी लोगों पर रोव डाल सकते हैं। क्या हम नहीं जानते कि कुछ न कुछ आतंकके विना राज्य चल ही नहीं सकता? अंग्रेज अपने मनमें चाहते हैं कि हम ढीले-ढाले और अकुशल सिद्ध हों, परन्तु अुनकी अिच्छाको हम मिट्टीमें मिला देंगे। वे राज्य-कोषमें घाटा ही रखते थे, हम वचत करके दिखा देंगे। फिर भी हम अैसी युक्तिसे वजट वनायेंगे कि राज्यकर्मचारियोंको अधिक आराम और अधिक वेतन मिले। अप-राधों और दंगे-फसादोंमें हम अंग्रेजोंसे ज्यादा होशियारी और सख्तीसे काम लेकर वता देंगे। ये लोग समझते होंगे कि हम अति अुत्साहमें आकर जैसे भाषण देते थे वैसे ही सुधार करने लग जायंगे, कठिनाअियोंमें फंस जायंगे और अन्तमें हंसीके पात्र वनकर अपने ही हाथों अपनी अयोग्यता सावित करेंगे। परन्तु हम अैसे भोले नहीं। क्या हम नहीं जानते कि राजकाज-संवंधी सुधारोंके आम जल्दी नहीं पकते? हम राजकाजका स्तर निश्चित रूपसे पहले जैसा ही रखेंगे और फिर भी हमें अैसी युक्ति करना अच्छी तरह आता है जिससे लोगोंको यह महसूस न हो कि हम सुधार नहीं कर रहे हैं, अित्यादि।" जो सेवक अैसे विचारोंमें वह जाता है, अुसे नौकरशाहीके रास्ते लग जानेमें कितनी देर लग सकती है? अपना लक्ष्य भूलकर दूसरे ही खेलमें लग जानेमें अुसे कितनी देर लगेगी?

राजनीतिक दावपेंचका काम ही अैसा है कि लोगोंको यह बतानेकी अपेक्षा कि प्रजाकी सेवा कितनी हुअी अथवा स्वराज्य कितना पास आया, हममें यह बतानेका अुत्साह अधिक होता है कि हम भोले नहीं, कच्चे नहीं, निर्बल नहीं, अकुशल नहीं, सचकी पूंछ पकड़कर बैठे रहनेवाले नहीं, परन्तु जमाना देखे हुअे हैं, सबको जेबमें रख लेनेवाले हैं और होशियार राजनीतिज्ञ हैं। अिस बातका केवल हमें अुत्साह ही नहीं चढ़ता, बल्कि सच्ची देशभक्ति और सच्ची सिद्धान्त-निष्ठा भी हमें अैसा करनेमें ही मालूम होती है। हम सोचते हैं: "हम शासन-तंत्र पर अधिकार करके स्वराज्यका ही काम करना चाहते हैं, परंतु हम जानते हैं कि स्वराज्यकी रचना घरमें बैठकर चरखा चलाने या हाथकुटे चावल खाने या सत्य-अहिंसाका जप जपनेसे ही नहीं होगी। भावुक बनकर सिद्धांतोंको जहां-तहां सामने लायेंगे, तो सरकारके साथ संघर्षमें आकर हाथमें आअी हुअी सत्ता जरासी देरमें खो बैठेंगे और फिर चरखा कातने लगेंगे। अिसके अलावा, सुधार करनेकी जल्दी मचायेंगे तो समाजके प्रभावशाली वर्गोंमें हम अप्रिय बन जायंगे और हमें तो चुनावोंके समय फिर अुन्हींके मुंहकी तरफ देखना होगा। अिसलिअे अिस तरह हमारा काम नहीं चल सकता।"

स्वराज्य-रचनाका प्रयत्न करनेवाले सेवकोंको कैसे कैसे चक्करोंमें फंस जानेका खतरा है, अिसकी मैंने आपको थोड़ी कल्पना दी है। संपूर्ण स्वराज्य भोगते हुअे भी अिनमें से किसी न किसी चक्करमें फंस जानेसे बचना आसान नहीं है, तब आज गुलामीके तंत्रमें तो पूछना ही क्या? सच्चे सेवक यदि अिस क्षेत्रमें कदम रखेंगे तो यह दृढ़ संकल्प करके ही रखेंगे कि हमें अुसके किसी गन्दे खेलमें भाग लेना ही नहीं है। हम तो अिस पुरानी किन्तु मजबूत मशीनको जुल्म और अन्याय करनेवाली न रहने देकर अुसका सारा रुख ही बदल डालेंगे और अुसे जनताकी सेवामें लगा देंगे; हमें अुसके द्वारा गांवोंको स्वाभिमानी, बहादुर, सत्याग्रही और स्वशासन भोगनेवाले बनाना है; ग्रामोद्योगोंको जीवनदान देना है; शिक्षाकी रुकी हुअी गंगाको बहाकर गांव-गांवमें अुसका पवित्र जल पहुंचाना है; व्यसन, ऋण और भयभीत दशासे लोगोंका अुद्धार करना है। अिस प्रकार यदि विश्वास हो कि हम स्वराज्यकी रचना कर सकेंगे और दीन-दलितोंको स्वराज्यकी गरमी पहुंचा सकेंगे, तो ही सेवकोंको अिस खतरेवाले काममें पड़ना चाहिये। वहां जाकर हमें अपने अटल लक्ष्य जैसे सिद्धान्तों पर दृढ़ रहना चाहिये। यह देखते ही कि जनताको स्वराज्यकी गरमी पहुंचानेके हमारे काममें रुकावट डाली जा रही है, हमें किसी भी समय सत्याग्रहका हथियार अुठा लेनेको तैयार रहना चाहिये। यह बनियाअी हिसाब हरगिज नहीं लगाना चाहिये कि यहां रहकर कुछ अच्छा काम हो सकता है, सत्याग्रहका शस्त्र अुठानेसे वह बन्द हो जायगा और फिर घर जाकर चरखा कातनेमें समय बिताना पड़ेगा, अथवा जेलमें बैठकर कीमती वर्ष बरबाद करने पड़ेंगे। अिस बातकी सावधानी रखेंगे तो ही हमारा राजनीतिक खेलमें अुतरना सार्थक होगा। तो ही हमारा राजनीतिक खेल स्वराज्यके अेक रचनात्मक कार्यकी गिनतीमें आ सकेगा।

जब तक यह महसूस होगा कि राजनीतिक खेलमें पड़कर अिनमें से कोअी काम नहीं हो सकता — स्वराज्यकी रचना नहीं हो सकती, तब तक अेक सत्याग्रही कार्यकर्ता कभी अुस खेलमें अुतरनेको तैयार नहीं होगा। शासन-तंत्रके आकर्षक ठाट-बाट अुसे कभी मोहित नहीं कर सकेंगे। वह तो जनताके बीच घुस जायगा, अुसके भीतर स्वराज्य-शक्तिका निर्माण करता रहेगा और अुसमें सत्याग्रहकी वीरता प्रेरित करता रहेगा। अुसका काम देशमें बहुत प्रसिद्ध नहीं हो, या अुसे जल्दी अपने काममें सफलता नहीं मिले, तो वह अधीर नहीं होगा। राष्ट्रीय कांग्रेसके हमारे सर्वश्रेष्ठ नेताओंकी मनोवृत्ति अैसी होनेके कारण ही वे राजनीतिक खेलमें जब-तब कूद नहीं पड़ते। दूसरे लोगोंको अुसमें किसी भी अुपायसे घुस कर जो थोड़ी-बहुत सत्ता मिल जाय अुसे हाथमें ले लेनेका लोभ रहा ही करता है। राष्ट्रीय कांग्रेसमें यह सत्ता लेनेकी ताकत होने पर भी वह अुसकी तरफ देखती तक नहीं, अिससे वे विचारमें पड़ जाते हैं। परंतु राष्ट्रीय कांग्रेस तो तभी अिस तरफ मुड़ती है जब अुसे विश्वास हो जाता है कि अुसमें पड़नेसे राज्यतंत्रको चोटी पकड़कर स्वराज्य-रचनाके कार्यमें लगाया जा सकेगा; और जब वह अिस दिशामें मुड़ती है तब राज्य चलानेका अुसका ढंग, अुसका जोश, अुसके कामका अूंचा स्तर — सब अलग ही नजर आते हैं।

प्रवचन ६४

सत्याग्रही नेता

अब हम अपने रचनात्मक कार्यके अेक चौथे क्षेत्रका विचार करें। अिसमें भी सेवक यदि सदा तैयार — सदा सत्याग्रही न रहे, तो अुसके अनेक प्रकारसे अुलटे रास्ते लग जानेका बड़ा खतरा है। यह कार्य है हमारी राष्ट्रीय कांग्रेसका तंत्र चलानेका।

हमारी कांग्रेस दुनियाके अितिहासमें अेक बेजोड़ संस्था है। अुसका अुद्देश्य हमारी मूक जनताको प्राणवान और स्वराज्य भोगनेवाली बनाना है। अुसका व्रत सत्य और अहिंसाके मार्गसे कभी विचलित न होनेका है। राजनीति या और किसी मामलेमें वह गंदा खेल कभी नहीं खेलना चाहती। अिसलिअे अुसके साथ दगा-फरेब करनेवालोंका हमेशा भंडाफोड़ हो जाता है। वह स्वराज्यके लिअे किसीके घर रोने या भीख मांगने नहीं जाना चाहती; बल्कि सत्याग्रहका युद्ध छेड़कर देशकी आजादी हासिल करना चाहती है। अिसके लिअे वह धीरजसे रचनात्मक काम करके जनताको सत्याग्रहका युद्ध करनेकी तालीम दे रही है। अिसके लिअे हर प्रान्त, हर जिले, हर तहसील और देशके सात लाख गांवोंमें देशभक्तिकी भावनासे भरे हुअे सच्चे वीर सत्याग्रही और तालीम पाये हुअे सेवकोंका जाल बिछा देनेका अुसका अविरत प्रयत्न चल रहा है।

अिस दृष्टिसे राष्ट्रीय कांग्रेसने सारे देशमें अपनी समितियां स्थापित की हैं; तथा खादी, ग्रामोद्योग, राष्ट्रीय शिक्षा, मद्य-निषेध, किसान-सेवा, मजदूर-सेवा, हरिजन-सेवा

वगैरा अनेक रूपोंमें रचनात्मक कार्य करनेवाली संस्थायें भी फैलाअी हैं। कांग्रेसकी समितियां लोगोंके राजनीतिक अधिकारोंकी सदा रखवाली करती हैं, स्वराज्यके लिअे सत्याग्रहकी लड़ाअियां लड़ती हैं और विदेशी सरकारका पंजा देश पर दिन-दिन ढीला बनाती हैं। अिसके सिवा, विविध रचनात्मक कार्य करनेवाले सेवक लोगोंके बीच गांवोंमें जाकर बसते हैं और विदेशी राज्यके रहते हुअे भी अुन्हें स्वाश्रय, स्वदेशी और स्वराज्यका स्वाद चखना सिखाते हैं, अुन्हें सत्याग्रह-युद्धकी तालीम देते हैं, अुनकी निराशा और भयको मिटाकर अुनमें अिस आशा और साहसका संचार करते हैं कि हम सत्याग्रहके शस्त्रसे अपना स्वराज्य अवश्य ले सकेंगे।

हमने दूसरे रचनात्मक कार्योंके संबंधमें देख लिया कि यह काम केवल कारकुनों या गुमाश्तोंसे नहीं हो सकता, परंतु सच्चे सत्याग्रही सेवकोंसे ही हो सकता है। अिसी प्रकार कांग्रेसकी समितियोंका काम भी सदा सज्ज रहनेवाले तथा सदा-सत्याग्रही सेवक ही कर सकते हैं। अुसमें भी यदि सेवक जागता न रहे, अपने सत्याग्रह-शस्त्रकी धारको तेज न रखे, तो अुसके कामके निःसत्त्व बन जानेका बड़ा खतरा है।

समितियोंका अेक बड़ा काम है कांग्रेसके सदस्य बनानेका। सेवक यदि गंभीर नहीं होंगे तो वे सदस्योंके नामोंसे जैसे-तैसे रजिस्टर भर देनेका ही खयाल रखेंगे, वैतनिक कर्मचारी रखकर सदस्य बनानेका काम फैलायेंगे, शायद सदस्य-शुल्क भी वालावाला भरकर लोगोंसे, अुन्हें समझाये बिना ही, हस्ताक्षर करा लेंगे। परंतु सेवक यदि सच्चे सत्याग्रही होंगे, तो वे सोचेंगे कि समितिके कार्यालयमें नामोंसे भरे रजिस्टरोंके ढेर पड़े होंगे तो भी अुससे सरकार डर नहीं जायगी। वे कम सदस्य बननेकी परवाह नहीं करेंगे, परंतु अैसे लोगोंको ही सदस्य बनायेंगे, जो स्वराज्यके मंत्रको समझ चुके हैं। वे यह समझेंगे कि सदस्य बनाना कांग्रेसका संदेश फैलानेका ही अेक कार्यक्रम है। जिन्हें वे अिस ढंगसे सदस्य बनायेंगे, अुनसे समय समय पर मिलते-जुलते रहेंगे, अुनकी सेवा करते रहेंगे, अुनके हकोंकी रखवाली करते रहेंगे और अुन्हें स्वराज्यके लिअे कुछ करनेकी, बलिदान देनेकी तालीम देंगे। अैसे सदस्योंके बल पर ही अुन्हें और कांग्रेसको किसीके साथ भी लड़ाअी छेड़नेकी हिम्मत हो सकती है।

समितियोंका दूसरा काम चुनाव करनेका है। किसी समय समितियोंके चुनाव बिना रस्साकशीका खेल थे। आज समितियां अितनी समर्थ हो गअी हैं कि वे देशकी राजनीति पर असर डाल सकती हैं और जब चाहें तब ग्राम-पंचायत और लोकल बोर्डसे लेकर सरकारी विधान-सभाओं तक पर कब्जा कर सकती हैं। अिसलिअे अुनके चुनावोंमें दिनोंदिन रस्साकशी बढ़ती जा रही है। अिसलिअे अुनमें गन्दी युक्तियां प्रवेश न करें, जातियों और वर्गोंके बीच वैरभाव न फैलाया जाय, अिसकी सावधानी रखना पहले जैसा आसान नहीं रहा है।

सेवकके सामने अुनमें बह जानेका बहुत बड़ा प्रलोभन होता है। अुसका मन अैसी ललचानेवाली दलीलें करेगा: "अधिकार हाथमें आये बिना मैं स्वराज्यका

काम नहीं कर सकूंगा और जहां सभी गलत रास्ते अपनाते हों वहां मैं सत्याग्रहसे ही चिपटा रहूंगा तो चुनाव कभी जीत नहीं सकूंगा।"

परन्तु अैसा सेवक अधिकार प्राप्त कर लेगा, तो भी लोगोंमें अुसके विषयमें कैसा विचार बनेगा? अधिकसे अधिक लोग यही कहेंगे, "हमारा नेता बड़ा युक्तिवाला है। मौका पड़ने पर वह सच-झूठ देखने नहीं बैठेगा; किसी भी युक्ति-प्रयुक्तिसे सरकारको फंसायेगा और हमारा काम कर आयेगा।" सेवकोंके विषयमें अैसे विचार लोगोंमें फैल जायं, तो अुनकी सत्याग्रहकी शक्ति हरगिज नहीं बढ़ेगी। और कांग्रेसको तो अुसी शक्तिको बढ़ाना है। सच्चे सत्याग्रही सेवक तो अपनी सच्चाअी, चरित्र, सेवा और सत्याग्रहके शौर्यकी प्रतिष्ठा पर ही आधार रखेंगे। अैसा करते हुअे यदि चालाक लोग अुन्हें हरायेंगे, तो भी वे सेवक बने रहकर लोगोंकी लड़ाअियां लड़ते ही रहेंगे। वे सच्चे होंगे तो जनता स्वयं ही अुन्हें पहचान लेगी। वह समझ लेगी कि "सत्याग्रहकी लड़ाअियां लड़े बिना धोखेबाजी और चालबाजीसे स्वतंत्रता कभी नहीं मिलेगी; और सत्याग्रहकी लड़ाअीमें हमारा पथ-प्रदर्शन करनेवाले तो यही सेवक हैं"। और अुसे जरूरत होगी तो अगले चुनावमें वह अैसे सेवकोंको सत्ताके पदों पर बैठायेगी।

चुनावकी धांधलीमें परस्पर निन्दा, कुप्रचार, वैरभाव फैलाना आदि मार्ग तो सत्याग्रही सेवक ले ही नहीं सकते। होशियार चुनावबाज हलके मनसे अिस बात पर मुस्करा कर कहते हैं: "यह तो दो दिनका खेल है। हमारे मनमें कोअी वैरभाव नहीं है। परंतु लोगोंके सामने तेज जोशीला भाषण दिये बिना क्या चुनाव जीता जा सकता है?" सत्याग्रही सेवकको चुनाव हार जाना मंजूर होगा, मगर अैसा भयंकर खेल खेलना मंजूर नहीं होगा। वह जानता है कि खेलमें बोया हुआ जहर प्रजा-शरीरमें से आसानीसे नहीं निकाला जा सकता। मनुष्य-मनुष्यमें, जाति-जातिमें और वर्ग-वर्गमें अिस प्रकार घुसे हुअे चुनावके जहरसे देशके शहर और गांव दोनों सड़ गये हैं और अिसका लाभ विरोधी दल बराबर अुठा रहे हैं।

चुनावमें जीतने और मुख्यमंत्री वगैराका अधिकार मिल जानेसे तो सेवककी जिम्मेदारी अेकदम बढ़ जाती है। कांग्रेस कोअी विदेशी सरकारकी नौकरशाही नहीं है कि बड़े वेतन लेकर आराम करने, कुर्सी-टेबल पर बैठकर किये जानेवाले काम करने और लोगोंकी सलामें लेनेमें ही अधिकारका कर्तव्य पूरा हुआ मान लिया जाय। वह तो जनताके लिअे सदा लड़नेवाली, अुसके भीतर सदा स्वराज्यकी रचना करनेवाली तथा सत्य-अहिंसाके ध्येयको अपनानेवाली महान संस्था है। अुसका अधिकारी न खुद चैन लेगा, न किसीको लेने देगा; जनताके हक और स्वराज्यके लिअे वह सदा सत्याग्रहका जामा पहने ही रहेगा; सत्य-अहिंसाके सिद्धान्तको अपने जीवनमें लगनके साथ अुतार कर अपनी योग्यता और अपनी कांग्रेसकी प्रतिष्ठा बढ़ायेगा; जनताकी शक्ति बढ़ानेवाले रचनात्मक कार्योंके तत्त्व अपने जीवनमें लगनसे दाखिल करेगा और लोगोंमें अैसे काम वेगसे जारी करेगा।

परंतु ठंडे आदमी चुनाव जीतकर अधिकारारूढ़ हुअे कि चादर तानकर सो जायंगे। वे सोये कि जहां तक अुनके विभागका संबंध है वहां तक कांग्रेसको भी भुला देंगे।

असलमें अुन्होंने कांग्रेसको पहचाना ही नहीं है। अुसके सिद्धान्तों और कार्य-पद्धतिमें शायद ही अुनकी श्रद्धा होती है। वे कदाचित् दिखावेके लिअे खादी पहनेंगे, मगर चरखेको विधवाओंका औजार मानेंगे। ग्रामोद्योगोंकी वे हंसी अुड़ायेंगे और अपने दिमागमें यही विचार बनाये रखेंगे कि मशीनोंके बिना देशका अुद्धार नहीं होगा। कांग्रेसके राष्ट्रीय शिक्षाके विचारोंका भी वे मजाक ही अुड़ायेंगे। वे रचनात्मक कामकी और अुसे करनेवालोंकी, अुन्हें भगत कहकर, सदा खिल्ली अुड़ायेंगे और अपने विभागकी भूमिको बिनजुती ही रहने देंगे।

अुनके धंधोंको देखें तो अुन्हें भी वे कांग्रेसके सिद्धान्तोंका कोअी स्पर्श नहीं होने देंगे। किसानों, मजदूरों और हरिजनों आदि दलित वर्गोंके साथ अपने संबंधोंमें वे अपमान, अन्याय और शोषणका व्यवहार जारी रखेंगे। वे यही मानकर आचरण करेंगे कि "ये लोग कभी सुधर ही नहीं सकते, अिनका दबा रहना ही अच्छा है।" अैसी स्थितिमें वे किसानों, मजदूरों और हरिजनोंमें कांग्रेसकी प्रवृत्तियां तो चलाने ही क्यों लगे? और यदि दूसरे लोग अैसा करनेका प्रयत्न करेंगे, तो वे अपने विभागकी हद तक तो अधिकारके बल पर अुन्हें जरूर दबा देंगे।

हिन्दू-मुस्लिम-अेकताके बारेमें वे सदा अश्रद्धा रखेंगे। अिस संबंधमें पास किये गये कांग्रेसके प्रस्तावोंको वे दिखाने भरके लिअे मानेंगे। तब फिर साम्प्रदायिक दंगोंके समय वे साम्प्रदायिक जहरसे प्रभावित हुअे बिना कैसे रह सकते हैं?

सत्य-अहिंसाके कांग्रेसके ध्येयोंको तो वे मानने ही क्यों लगे? वे यों कहकर अुन्हें हंसीमें अुड़ा देंगे कि "ये तो साधु-संतोंके सूत्र हैं, ये राजनीतिके सूत्र नहीं हो सकते।" वे यह माननेकी हद तक भी चले जायंगे कि सरकार और दुनियाको धोखा देनेके लिअे कांग्रेसके चतुर नेताओंने अिन सिद्धान्तोंको प्रस्तावमें रख दिया है। वे यह देख ही नहीं सकेंगे कि अिनके अल्प पालनसे भी कांग्रेस और जनताकी शक्ति कितनी बढ़ी है। वे अैसे भ्रमोंमें पड़े रहेंगे कि कांग्रेस हर वक्त सरकारको जो झुकाती है अुसका कारण जनबल नहीं है; सरकार झुकती है अुसे तंग करनेसे, अुसके साथ छल-कपट करनेसे और सभाओं तथा अखबारोंकी फूफकारोंसे। सत्याग्रहकी लड़ाअियां लड़ना हमें और लोगोंको आ सकता है, अुतनी हिम्मत बढ़ा लें तो ही किसी दिन स्वराज्य हासिल किया जा सकता है, और अिन लड़ाअियोंका मूल आधार सत्य और अहिंसाका पालन ही है — चतुराअी और छल-कपट हरगिज नहीं, यह देखने और समझनेको वे कभी तैयार ही नहीं होंगे।

अैसे अधिकारी कांग्रेस जब सामूहिक सत्याग्रहकी लड़ाअियां छेड़ेगी, तब युक्ति-प्रयुक्ति करके अधिकारसे खिसक जानेकी कोशिश करेंगे; अथवा लाचार होकर, लोक-लाजके खातिर, समाजमें अपना नाम बनाये रखनेके लिअे अुनमें भाग लेंगे और अुस कारणसे जेलमें जायेंगे तो वहां बड़े दुःखमें दिन बितायेंगे, कांग्रेसकी कार्य-पद्धतिकी निंदा

करेंगे, नेताओंकी भूलें गिनाते रहेंगे और नेताओंने लोगोंकी शक्ति देखे विना ही अंधापन किया है आदि चर्चाओंमें समय वितायेंगे। अिस शंकाका हल अुन्हें कभी मिलेगा ही नहीं कि जेलमें पड़े रहकर रोटियां खानेसे सरकार कैसे झुकेगी। अैसा करते-करते अुनका मन दिनोंदिन निर्वल होता जाय और कभी कभी चाहे जैसी शर्तें लिखकर वाहर निकलनेकी भी पैरवी करे तो क्या आश्चर्य है?

यद्यपि हमारे लोगोंमें कांग्रेसके लिअे वड़ी भक्ति है, फिर भी अुसके ध्येय और कार्य-पद्धतिके विषयमें, अुसकी अिन मान्यताओंके विषयमें वड़ा अविश्वास है कि हमें रचनात्मक कार्य द्वारा लोगोंका वल वढ़ाना है, अुस वलके द्वारा सत्याग्रहकी लड़ाओ लड़नी है और अुससे स्वराज्य जीतना है। अिससे कांग्रेसके जिम्मेदार कार्यकर्ताओंके जीवनमें भी अुपरोक्त दोष आये विना नहीं रहते। सचमुच, अिस वारेमें सेवकोंको गफ़लतमें कभी नहीं रहना चाहिये।

अिसमें शक नहीं कि समितियां कांग्रेसकी सवसे अधिक प्रत्यक्ष रचनात्मक प्रवृत्ति हैं, कांग्रेसके अर्थात् जनताके समूचे विशाल शरीरमें रक्तसंचार करनेवाले हृदयके जैसी हैं। परन्तु कव? तभी जव अुनके अधिकारी समितियोंके कार्यालय ही चलाकर संतोप न मानते हों, परन्तु कांग्रेसके वीर सत्याग्रही सैनिक वनकर सदा सज्ज रहते हों, अपने अिलाकेमें रचनात्मक कार्योंका जाल विछाकर सदा जनताका निर्माण करते हों, अुसे सदा स्वराज्यके मंत्र देते हों और अुसके स्वाभिमान तथा अधिकारोंके लिअे सत्याग्रही लड़ाअियां लड़ते हों।

परंतु यदि समितिका अर्थ केवल चुनाव जीतना, वैतनिक कर्मचारियों द्वारा सदस्य वनाना, कार्यालय चलाना और विशेप त्यौहारों पर झंडा फहरानेकी रस्म अदा करना ही हो, तो वह कांग्रेसका हृदय हरगिज नहीं है — फिर भले ही अुसका कार्यालय कितना ही अच्छा हो और अुसमें कितने ही अच्छे नोट-पेपरों पर पत्र-व्यवहार किया जाता हो और अुसने भव्य कांग्रेस-भवन भी खड़ा कर दिया हो।

समितिका अर्थ कार्यालय नहीं, परंतु कांग्रेसकी लड़ाओकी छावनी है। वहां सेवक सदा सजग रहकर जनताके अधिकारोंकी रक्षा करनेके लिअे तैयार रहेंगे, अन्यायोंके विरुद्ध छोटे और वड़े, स्थानीय और देशव्यापी, व्यक्तिगत और सामूहिक सत्याग्रहोंकी योजना वनाओ जाती होगी और लड़ाअियां छेड़ी जाती होंगी। लोगोंको सत्याग्रहकी तालीम देनेके लिअे अुन समितियोंके पथ-प्रदर्शनमें जगह जगह रचनात्मक कार्य किये जायंगे। और रचनात्मक कार्यके केन्द्रोंका अर्थ केवल खादी अित्यादिके कार-खाने या दुकानें नहीं, परन्तु जनताकी सत्याग्रह-शक्ति वढ़ानेवाले तालीमखाने होगा। वहां सेवकों और जनता दोनोंमें अिस वातका ज्ञान फैलाया जायगा कि स्वराज्य क्या है और अुसे कैसे लाना है। यह सच्चा रचनात्मक कार्यक्रम है। अैसी समितियां चलाओ जायं और अैसे रचनात्मक काम किये जायं, तो ही अुनसे स्वराज्यकी गरमी निश्चित रूपसे पैदा होगी।

आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

ग्यारहवां विभाग

आत्मबल

सार्वजनिक जीवनमें सिद्धान्त हो सकते हैं?

हम रोज प्रार्थनामें आश्रमके अिन ग्यारह व्रतोंका पाठ करते हैं:

१. सत्य, २. अहिंसा, ३. अस्तेय, ४. अपरिग्रह, ५. ब्रह्मचर्य, ६. अस्वाद, ७. शरीर-श्रम, ८. अभय, ९. स्वदेशी, १०. अस्पृश्यता-निवारण, ११. सर्वधर्म-समभाव।

ये मनुष्य-जीवनके सच्चे सिद्धान्त हैं। हमारे जीवनमें यदि अिन सिद्धान्तोंकी सुगंध निरंतर महकती न रहे, तो हम मनुष्य कहलानेके अधिकारी नहीं, अैसी हमारी श्रद्धा है।

मनुष्य सनातन कालसे अिन सिद्धान्तोंके बारेमें अैसी श्रद्धा रखता आया है। आज भी चाहे जिस देशमें जायं, वहांके लोग किसी भी धर्म और आचार-विचारको मानते हों, सभ्य और सुसंस्कृत हों या पिछड़े हुअे हों, परन्तु वे अिन्हीं सिद्धान्तोंके आगे सिर झुकाते दिखाअी देंगे। क्या अिससे यह सूचित नहीं होता कि यह संसारके सभी युगों और सभी देशोंके मनुष्योंके अनुभवकी आवाज है?

हम अिन सिद्धान्तोंका पालन कर सकते हों या कमजोरीके कारण न कर सकते हों, परन्तु अन्तरात्मा तो लगातार यही गवाही देती है कि मानव-जीवनमें यदि कोअी सिद्धान्त पालन करने लायक हों तो वे यही हैं; जीवनकी कोअी बुनियाद हो, जीवनका कोअी सार-सर्वस्व हो तो यही सिद्धान्त हैं। अिसीलिअे यदि कोअी मनुष्य अिन सिद्धान्तों पर आग्रहपूर्वक और सच्चाअीके साथ अपने जीवनमें अमल करता दिखाअी देता है, तो हम स्वभावतः अुसके प्रति पूज्यभाव प्रगट किये बिना नहीं रह सकते। वह किस देशका है, किस धर्मका है, कौनसी भाषा बोलता है, क्या धंधा करता है, अथवा जन्मसे अूंचा है या नीचा — कुछ भी देखनेको हम रुकते नहीं। वह स्त्री है या पुरुष, सफेद दाढ़ीवाला कोअी माननीय बुजुर्ग है या आजकलका नौजवान है, विद्वान है या अविद्वान — कुछ भी अिसमें बाधक नहीं होता; हम अैसे आदमीको अपनेसे श्रेष्ठ, हमारे पूज्यजनके रूपमें स्वीकार किये बिना रह ही नहीं सकते।

हिन्दुस्तानमें तो अैसे पुरुषोंका हम प्राचीन कालसे आदर करते आये हैं। हम अुसे ऋषि, मुनि और योगी कहते हैं और अीश्वरके अवतारका पद भी देते हैं। परन्तु हिन्दुस्तानमें ही नहीं, दुनियाके किसी भी देशमें अैसा पुरुष मान-सम्मान और पूजा प्राप्त किये बिना नहीं रहता।

अिस प्रकार ये सिद्धान्त तो सर्वमान्य हैं, परंतु जीवनमें अुन्हें अुतारनेका प्रश्न आता है तब अुनसे दूर भागना भी मानो सब देशोंका सर्वकालीन नियम ही बन गया है। लोग अुनके पालनमें, होनेवाली कठिनाअियोंसे डर जाते हैं और तरह तरहके बहाने बनाते हैं: "यह तो महात्माओंका, साधु-संन्यासियोंका और आश्रमवासियोंका काम है। हम तो संसारमें फंसे हुअे जीव हैं। अिन सिद्धान्तोंके अनुसार चलनेकी हमारी शक्ति

नहीं। चलने लगें तो अपना और अपने बाल-बच्चोंका पेट भरना भी कठिन हो जाय, तब सुख-समृद्धिमें रहनेकी तो बात ही क्या कही जाय?"

यह ख़ानगी अथवा व्यक्तिगत जीवनकी बात हुआी। परंतु हमारी तो यह भी श्रद्धा है कि मनुष्यके सार्वजनिक जीवनकी बुनियादमें भी ये ही सिद्धान्त होने चाहिये, हमारा स्वराज्य भी अिन्हीं सिद्धान्तों पर खड़ा होना चाहिये, हमारे धंधे और व्यापार अिन्हीं सिद्धान्तोंके अनुसार चलने चाहिये और हमारे समाजकी रचना अिन्हीं सिद्धान्तों पर होनी चाहिये।

यह सुनकर लोग "असंभव, असंभव!" बोल अुठते हैं। "यह बिलकुल वाहियात, बिलकुल मूर्खताकी बात है! व्यक्तिगत जीवनकी हद तक तो आपके सिद्धांत माननेको हम तैयार हैं। भले हम खुद अुनका पालन न कर सकें, परन्तु जो करते हैं अुनके प्रति हमें पूज्यभाव है। परन्तु देशका — समाजका सवाल अलग चीज है। राजकाज और व्यापार जैसे मामलोंमें हम अिन सिद्धांतों पर आधार रखने लगें, तो बलवान जातियां हमें निगल जायंगी, देशके भीतर भी दुष्ट काबूमें नहीं रहेंगे और दुनियाके पट पर हमारा नामोनिशान भी बाकी न रहेगा।"

अिस प्रकार जब देश-देशके — राष्ट्रोंके व्यवहारका प्रश्न आता है, तब आम तौर पर कोअी यह नहीं मानता कि अिन सिद्धान्तोंके अनुसार चलना चाहिये, न कोअी अैसी आशा ही रखता है। अिन व्यवहारोंमें अपने देशका स्वार्थ सिद्ध होता हो, तो ग्यारहों सिद्धांतोंका भंग करनेमें भी शरम नहीं मानी जाती। झूठ बोला जा सकता है, युद्ध करके मानव-संहार किया जा सकता है, बलवान देश निर्बल देशको धोखा दे सकता है, चूस सकता है और हड़प भी सकता है। अैसी चोरीसे लोग शरमाते नहीं, परन्तु यह कहकर अभिमान प्रकट करते हैं कि 'हमने देश जीत लिया'।

परंतु यदि हमारा देश अैसे व्यवहारको मानता है, तो दूसरा देश भी अुसीको मानता है; और रोज अुठकर लड़ाअी लड़ना संभव नहीं होता, हमेशा अुसमें अपने देशका स्वार्थ सिद्ध होनेका भरोसा भी नहीं होता। अिसलिअे दोनोंको कुछ समय तक अमुक नीतिका पालन करना ही पड़ता है। अिस व्यवहारका नाम है राजनीति अथवा मुत्सद्दीगिरी। अर्थात् अूपरसे तो सत्य-अहिंसा वगैराके पालनका दिखावा करना, परंतु अंदरसे अपने देशके स्वार्थके लिअे जो करने योग्य हो वही करते रहना। व्यक्ति अैसा व्यवहार करते हुअे पकड़ा जाय तो वह बदमाश गिना जाता है, परंतु राज्य या देश जैसा बड़ा समूह अैसा करते हुअे पकड़ा जाय तब लोग अुसके व्यवहारको राजनीतिका नाम देते हैं और अुसकी तारीफ करते हैं।

अैसी राजनीतिका व्यवहार करनेकी स्वतंत्रताका प्रारंभ कहांसे हो? अिस मामलेमें स्वतंत्रता लेनेवाला समूह कमसे कम कितना बड़ा होना चाहिये? — अिसका कोअी पैमाना हो अैसा मालूम नहीं होता। यह साधारण नीति हो गअी है कि अेक पूरा देश दूसरे देशके प्रति अैसा आचरण करे। परंतु देशके भीतर भी किसी न किसी

कारणसे मनुष्योंके गुट बन ही जाते हैं। रक्त-संबंधसे जातियोंके समूह बन जाते हैं। धंधोंके समूह भी होते हैं। धर्म-सम्प्रदायोंके भी समूह बन जाते हैं।

क्या अिन समूहोंको भी अपने अपने स्वार्थके लिअे सत्य, अहिंसा आदि सिद्धांत छोड़कर मुत्सद्दीगिरीकी नीति पर चलनेकी छूट होनी चाहिये? और यदि अिन समूहोंको छूट दी जाय तो अुनसे छोटे समूहोंको क्यों न दी जाय? कुटुम्बोंका समूह अपने पड़ोसियोंके साथके व्यवहारमें क्यों सत्य-अहिंसा पर कायम रहे?

कोअी देश यदि पतनके रास्ते लग गया हो, तो अुसके भीतरके छोटे समूह अैसी नीति पर चलने लग ही जाते हैं और जनताके समग्र जीवनको बिगाड़ देते हैं। परंतु प्रजा-शरीर आरोग्य और चेतनयुक्त होगा, तो देशाभिमानी नेता देशके जीवनको अिस तरह बिगड़ने नहीं देंगे। वे कहेंगे, "देश देशके बीचके व्यवहारोंमें सत्य-अहिंसाके सिद्धांत न पालनेकी और राजनीतिसे चलनेकी बात भले ही स्वीकार की जाय, परंतु देशके भीतरके अुप-समूह हमारा अनुकरण न करें, अुन्हें तो साधारण व्यक्तिगत व्यवहारके सिद्धान्तों पर ही चलना चाहिये।"

अिन देशाभिमानी नेताओंसे पूछना चाहिये कि "समूचे देशकी दृष्टिसे आप जिस तरह अिन अुप-समूहोंको व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़कर सत्य-अहिंसा पर चलाना चाहते हैं, अुसी तरह क्या समस्त मानव-परिवारकी दृष्टिसे आपको भी अिन्हीं सिद्धांतोंके अनुसार नहीं चलना चाहिये? आप देश देशके समूह बनाकर जब सत्य-अहिंसाके मानव-धर्मोका द्रोह करते हैं, तब क्या आप मानव-परिवारका जीवन नहीं बिगाड़ते?"

थोड़ा गहरा विचार करें तो मालूम होगा कि समूह और देश व्यवहार चाहे जैसा करते हों, परंतु माननेमें तो वे भी व्यक्तिकी तरह सत्य-अहिंसा वगैरा सिद्धांतोंको ही सच्चा आचरण मानते हैं। अैसा न हो तो वे अूपरसे अुनके पालनका दिखावा क्यों करें? अुनकी राजनीतिका क्या यही अर्थ नहीं है कि अुन्हें व्यक्तियोंकी तरह सत्य-अहिंसाके पालनमें होनेवाले कष्ट, त्याग वगैरा नहीं चाहिये, परंतु अुनके पालनका दिखावा करना अुन्हें पसंद है? वे अच्छी तरह जानते हैं कि अुनके पालनसे मान और प्रतिष्ठा मिलती है।

फर्क अितना ही है कि अपने व्यक्तिगत जीवनमें जब हम दुर्बलतावश अिन सिद्धांतोंको छोड़ते हैं, तब मनमें शरमाते हैं; और पकड़े जाते हैं तब सिर अूंचा नहीं कर पाते। परंतु देश देशके बीचके व्यवहारोंमें हम राजनीति अर्थात् असत्य और हिंसा वगैरा करनेमें शरम नहीं मानते। जहां तक सुविधा हो अिन सिद्धांतोंके पालनका दिखावा करते हैं और देशकी स्वार्थ-सिद्धि अुन्हें छोड़नेसे होती हो तो खुल्लमखुल्ला अूपरी दिखावा करना छोड़ देते हैं। अैसा करके हम कोअी शरमकी बात करते हैं अैसा मनसे भी नहीं मानते।

अिस मामलेमें हमारी मान्यता अिससे अलग है। हम यह मानते हैं कि देशके काममें — सार्वजनिक जीवनमें भी सिद्धान्तों पर डटे रहनेमें ही सच्चा मनुष्यत्व है।

स्वार्थ साधनेकी सुविधा देखकर सच्चा व्यवहार छोड़ देना हमारे मानव-जीवनमें भी शरमकी बात है, मनुष्यकी मनुष्यताको कलंकित करनेवाला है, तब देश अथवा समूहके व्यवहारमें अैसा आचरण नीचा न रहकर अूंचा कैसे हो सकता है?

हमारा संकल्प है कि हम अिसी श्रद्धासे चलेंगे। अिसलिअे हमारा यह भी संकल्प है कि हमें अैसे स्वराज्यकी रचना करनी है, जिसकी जड़में सत्य-अहिंसा आदि अेकादश सिद्धान्त हों। दूसरे भले ही सत्य-अहिंसाके पालनको असंभव कहकर अिसका तिरस्कार करें, परंतु हम जानते हैं कि जो राष्ट्र असत्यके मार्ग पर चलकर स्वार्थ-सिद्धिका प्रयत्न करेंगे, अुन्हें कभी न कभी अुस मार्गसे वापस लौटना ही पड़ेगा; क्योंकि यदि अेक राष्ट्रको अपने स्वार्थके लिअे सत्य-अहिंसाको छोड़नेमें बाधा नहीं होगी, तो दूसरे राष्ट्रोंको भी क्यों होगी? वे क्यों पहले राष्ट्रोंसे अिस मार्गमें पीछे रहेंगे? अैसे राष्ट्र कभी न कभी अनुभवकी ठोकरें खाकर जानेंगे कि स्वार्थ साधनेके लिअे असत्य और हिंसाका मार्ग छोटा और आसान दिखाअी देता है, परंतु असलमें वह छोटा भी नहीं होता और आसान भी नहीं होता। अुसमें महासंहारों, महादु:खों और महापतनसे वे बच नहीं सकेंगे। आखिरमें तो सत्य और अहिंसाका मार्ग ही छोटा है। अुसमें कष्ट जरूर होंगे, परन्तु वे अपने बुलाये हुअे होनेके कारण मीठे लगेंगे, हमें अूंचा अुठायेंगे और मानव-परिवारको आजकी अपेक्षा थोड़ा अधिक अुन्नत और अधिक सुखी बनायेंगे।

सार्वजनिक जीवनमें सिद्धान्तोंके लिअे कोअी स्थान नहीं है, स्वराज्य मिलता हो तो किसी भी रास्ते पर चलनेमें हर्ज नहीं, अैसा माननेवाले लोग हमारे देशमें भी थोड़े नहीं हैं। वे हमारे व्यवहार पर हंसेंगे। अुन्हें हंसनेसे अेकदम कैसे रोका जा सकता है? परन्तु हम सत्य, अहिंसा आदि सिद्धांतों पर अडिग रहकर अुनके द्वारा स्वराज्यकी रचना करनेकी शक्ति पैदा करके दिखायेंगे; और जब तक वह करके दिखा न सकें, तब तक धीरजसे अुनका हंसना सहन करते रहेंगे।

प्रवचन ६६

'नीतिके रूपमें'

कल मैंने कहा था कि सार्वजनिक जीवनमें — स्वराज्यके काममें सिद्धांतोंको बाधक न होने दिया जाय, अैसा कहनेवाले दुनियामें और हमारे देशमें भी बहुत लोग हैं। अैसा कहना दुनियाका अेक प्रचलित फैशन ही हो गया है। सबको डर लगता है कि अैसा न कहें तो भोंदू माने जायंगे। सार्वजनिक जीवनमें धूर्तता, चतुराअी और चालाकीसे काम लेकर कोअी फायदा अुठा लेता है, तो लोग अुसकी अिस होशियारीसे खुश हो जाते हैं और शाबाशी देकर अुसकी तारीफ करते हैं। अुसकी धूर्तताको मुत्सद्दीगिरी और राजनीतिके बड़े नाम देते हैं। पंचतंत्रमें गीदड़की चतुराअीकी बातें पढ़कर कौन गद्‌गद नहीं हो जाता?

सार्वजनिक जीवनमें बताअी जानेवाली चालाकीकी अैसी प्रशंसा मनुष्य-जातिका बड़ा रोग ही है। वह अितना फैल गया है और अैसा संक्रामक है कि हमारे अपने मन भी अुसके जहरीले जंतुओंसे मुक्त नहीं हैं; हम सिद्धान्तों पर श्रद्धा कायम करना चाहते हैं, परन्तु हमारे मनका रुख दूसरी ही तरफ होता है।

आअिये, आज हम जो स्वराज्य-रचनाके सीधे काममें लगे हुअे हैं अपने मनका जरा पृथक्करण करें। हमारे काममें सत्य-अहिंसा आदि सिद्धान्तोंके लिअे हमें अधिक आकर्षण है अथवा राजनीति या मुत्सद्दीगिरीके नामसे पहचाने जानेवाले सिद्धान्त-भंगके लिअे, अिसकी जांच करें।

हमें क्या मालूम होता है? सत्य-अहिंसाकी बातें सुनकर हम अेक-दूसरेकी तरफ शरारतभरी आंखोंसे देखते हैं और मूंछोंमें हंसते हैं। सत्य-अहिंसा आदिका नाम देशके प्रश्नोंमें हम चलने देते हैं, अिसका अेक कारण तो यह है कि देशमें दूसरे मार्ग पर चलने लायक शस्त्र, धन आदिका बल पैदा कर सकनेका आज कोअी रास्ता हमें मिल नहीं रहा है; और दूसरा कारण यह है कि हमारे भाग्यसे हमें नेता अैसे मिले हैं, जो अुठते, बैठते, सोते, जागते अिन सिद्धांतोंका जप छोड़ते ही नहीं। अिसलिअे हम माथे पर हाथ रखकर कहते हैं: "देशमें स्वराज्यका नाम लेनेवाले तो दूसरे बहुतने नेता हैं, परंतु अुसके लिअे लड़ने और आगे बढ़कर लोगोंको लड़ानेवाले कोअी नहीं हैं। अिसलिअे अिन नेताओंके मस्तिष्कमें जो भी तरंगें अुठती हैं अुन्हें स्वीकार किये सिवा कोअी चारा नहीं है। यदि आप स्वराज्य ला देते हों तो आपके सत्य-अहिंसा हमें मंजूर हैं; परन्तु हम तो अुन्हें कामचलाअू नीतिके रूपमें ही स्वीकार करते हैं, आपकी तरह हम अुन्हें धर्म समझकर शिरोधार्य करनेको तैयार नहीं हैं।" अर्थात् "सार्वजनिक राजनीतिमें ही हम अुसका पालन करेंगे, खानगी जीवनमें तो अनुकूल होगा वैसा ही आचरण हम करेंगे। और राजनीतिमें भी अवसर देखेंगे तो किसी भी समय आपके सिद्धान्त आपको सौंप देंगे।"

नेता जानते हैं कि ये सिद्धान्त मुंहसे स्वीकार करनेसे तुरन्त हृदयमें अुतर नहीं सकते। बीज बोनेके बाद अुन्हें धीरे-धीरे अुगने देना चाहिये। अिसलिअे वे हमारे साथ धीरज रखते हैं; हमें झूठे और बेवफा कह कर हमारा त्याग नहीं करते। वे आशा रखते हैं कि देशका कार्य सत्य और अहिंसाकी पद्धतिसे करते-करते अुस पर हमारी श्रद्धा जमती जायगी और हमें अिस बातका प्रत्यक्ष अनुभव होगा कि सिद्धान्तोंके पालनसे हमारा अपना और देशका बल बढ़ रहा है।

परंतु हमारा दिमाग कैसे विचित्र ढंगसे काम करता है! वह किसी भी तरह श्रद्धाकी पकड़में आनेको तैयार नहीं होता। जिस प्रकार रोगीका शरीर अमृत जैसा अन्न खिलाने पर भी अुसमें से अपने लिअे जहर ही बना लेता है, अुसी प्रकार जो भी परिस्थिति अुत्पन्न होती है अुसमें से हमारा मस्तिष्क अपने लिअे अश्रद्धा ही पैदा कर लेता है।

सत्य-अहिंसाके आन्दोलनोंके कारण जनतामें स्वराज्यकी कुछ गरमी दिखाअी देती है, तब हम यही मानते हैं कि अमुक राजनीतिक दावपेंच लगाकर सरकारको चक्करमें डाल देनेसे ही यह गरमी आअी है। जब आन्दोलनमें पीछे हटना पड़ता है, तब हम यही मानते हैं कि नेता सिद्धान्तोंसे चिपटकर बैठ जाते हैं, अिसीलिअे हमें पीछे हटना पड़ता है।

नेता सिद्धान्तों पर जोर दिया करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि अुनमें आत्म-बलका गोला-बारूद छिपा हुआ है और हमारे जैसे कार्यकर्ताओंमें तथा हिम्मत हार बैठनेवाली जनतामें भी वे सत्यका शौर्य भर देंगे। परन्तु हमारे निर्बल और अश्रद्धालु मन अुन सिद्धान्तोंका अलग ही अर्थ लगाते हैं।

अब ग्यारहों सिद्धान्तोंको हमारे राजनीतिके अुलटे चश्मेसे देखने पर हम कैसे भद्दे और निर्जीव बनाकर देखते हैं सो सुनिये।

१. सत्य — यह सच बात है कि हम अेक विजित और निःशस्त्र प्रजा हैं। यह भी सच है कि अंग्रेज अेड़ीसे चोटी तक शस्त्रसज्ज हैं, धन और विज्ञानके बलमें पूर्ण हैं। हम कितने ही प्रयत्न क्यों न करें, अुन्हें दावमें फंसाना हमारे लिअे संभव नहीं। हमारे पास अेक ही दाव बाकी है और वह यह कि अुन लोगों पर अैसा असर डाला जाय: "हम सत्यके सिद्धान्तोंको माननेवाले हैं; आपके साथ स्वराज्यके लिअे हम झगड़ा करेंगे, परंतु जितना झगड़ा करेंगे वह खुले तौर पर करेंगे, आपको कपट-नीति चलाकर कभी धोखा नहीं देंगे।" अैसा प्रभाव डालनेके लिअे हमें सत्यको अमुक मात्रामें तो पकड़े ही रहना होगा। अुतना हम अुसे पकड़ सकते हैं; परन्तु कअी बार यह विश्वास होने पर कि अब अंग्रेजोंको छकानेका मौका आ गया है दावके रूपमें पकड़ा हुआ सत्य हाथसे छूट जाता है और बुर्केके नीचे छिपा हुआ हमारा कपटी मुंह खुल जाता है।

२. अहिंसा — अंग्रेजोंके साथ लड़ाअी करनेका बल या सामान हमारे पास है ही नहीं, अिसलिअे हम चाहें तो भी लड़ाअी नहीं कर सकते। अतः आज तो लाभ

अहिंसाकी नीति अपनानेमें ही है। अिससे विरोधी पक्ष पर अैसी छाप अच्छी तरह डाली जा सकेगी: "हम सिद्धान्तोंके रूपमें अहिंसाके पुजारी हैं, अिसीलिअे अंग्रेजोंके विरुद्ध अुंगली भी नहीं अुठायेंगे। कभी कभी लड़ाअी करेंगे, परन्तु अुनमें हिंसासे काम नहीं लेंगे।" परंतु छाप डालनेके लिअे धारण की हुअी अहिंसाको विचलित होनेमें कितनी देर लगती है? अैसे कअी मौके आ जाते हैं जब अंग्रेज शिकंजेमें आये हुअे दिखाअी पड़ते हैं और अैसा लगता है कि जरासी हिंसा कर लेंगे तो अुनका किला ढह जायगा। अैसे समय अहिंसाका नकाब अुतार कर अन्दरके नख-दंत दिखा देनेका लालच हमसे रोका नहीं जा सकता, यद्यपि अिन नख-दंतोंसे खुरसटोंके घाव करनेसे ज्यादा हानि हम अंग्रेजोंको पहुंचा नहीं सकते। अिससे केवल हमारे भीतरी विचारोंकी कलअी खुल जाती है और वर्षोंके अहिंसा-पालनसे बनी हुअी प्रतिष्ठा मिट्टीमें मिल जाती है।

३. अस्तेय — "अंग्रेजोंकी तरह हम किसी और राज्य या धनकी चोरी नहीं करना चाहते," अैसा हम कहते हैं और यह देखनेके लिअे आंखें अूंची करते हैं कि दुनियामें हमारे निर्दोष होनेकी छाप कितनी अच्छी पड़ी है। परन्तु कमजोर लोगोंके मुंहसे अैसी बड़ाअी सुनकर दुनियाके बलवान लोग मजाक अुड़ाते हैं। हम खुद भी अपना बोलना सुनकर शरमाते हैं। और चूंकि हमने राजनीतिके तौर पर ही अस्तेयको स्वीकार किया है, अिसलिअे हम अपने देशमें जो लोग हमसे कमजोर हैं अुनकी चोरी तो जारी ही रखते हैं। तब अस्तेय कहते समय वह शब्द हृदयमें से दृढ़ आवाजमें कैसे निकल सकता है? जिनकी चोरी हम करते हैं, वे हमारे स्वराज्य पर कैसे आस्था रख सकते हैं?

४. अपरिग्रह — अिस सिद्धान्तको तो हम मूलसे ही नहीं मानते। नेता अुसका बार बार नामोच्चार नहीं करते, केवल अपनी प्रार्थनामें रोज रटकर और अपने निजी जीवनमें अुसे अुतारकर शान्त रहते हैं। अिसलिअे अुनके विरुद्ध आवाज अुठानेकी हमें जरूरत नहीं पड़ती। वैसे हम यही मानते हैं कि अपरिग्रहका विचार व्यक्तिगत जीवनमें और अुसी तरह सारे देशके जीवनमें मनुष्यको बिलकुल जंगली दशामें ले जानेवाला विचार है। हमारा आदर्श यही है कि हमारे लिअे सुख-सुविधाके साधन जितने मिलें अुतने थोड़े हैं और हमारा देश भी दुनियाके सब देशोंसे मालदार हो जाय तथा बड़े बड़े कारखानों और जगमगाते शहरोंसे सुशोभित हो जाय। परन्तु हमारी यह अश्रद्धा अैन वक्त पर बाधक हुअे बिना नहीं रहती। हमारे परिग्रह — धनदौलत स्वराज्यकी लड़ाअीमें होम देनेका अवसर आता है तब हम टिक नहीं सकते।

५. ब्रह्मचर्य — ब्रह्मचर्यका तो नाम सुनकर ही हम चिढ़ जाते हैं। "अिस सिद्धान्तका राजनीतिके साथ क्या संबंध है? किसी भी प्रजाके सामने ब्रह्मचर्यका आदर्श रखना निरा पागलपन है। अिसके सिवा, नेता तो ब्रह्मचर्यके अर्थको विशाल बताकर बात-बातमें अपने पर संयम रखनेको समझाते हैं। जिस प्रकारका संन्यासी जीवन स्वीकार करनेको हम तैयार नहीं हैं। स्वराज्यको लड़ाअीके लिअे जब जितना अैश-आराम

छोड़ना पड़ेगा अुतना हम छोड़ देंगे। परंतु ब्रह्मचर्यको अपने जीवनका आदर्श बनानेको हम तैयार नहीं हैं।" हम आवेशमें अिस तरह कह तो देते हैं, परन्तु जब स्वराज्यके सैनिकका कठिन जीवन बितानेकी नौबत आती है, जेल जानेका अथवा घरके धंधे आदिके नाशका समय आता है और देशके खातिर मारे-मारे भटकते फिरनेका दिन आता है, तब हम निकम्मे साबित होते हैं। देशमें जब लड़ाओी छिड़ती है, तब सैनिकोंका अकाल ही मालूम होता है।

६. **अस्वाद** — अस्वादकी बात सुनकर तो हमें अितना क्रोध आता है कि स्वराज्यकी बातमें जो अस्वादको भी सिद्धान्तके रूपमें घुसेड़नेकी हिम्मत करते हैं, अुनके साथ मानो हम किसी भी तरहका संबंध नहीं रखना चाहते। हम चिल्ला अुठते हैं: "यह राजनीति चलती है या विधवा-आश्रम ?" परंतु छोटीसी तुच्छ जीभने हमारे जीवन पर कितना साम्राज्य जमा रखा है, यह अैन मौके पर परख लिया जाता है। हमें चाय-बीड़ी जैसी चीजें न मिलें, तो भी हम बिलकुल कायर बन जाते हैं।

७. **शरीर-श्रम** — यह गोली भी स्वराज्यके सिद्धान्तके रूपमें निगलना हमारे लिअे संभव नहीं होता। हम बोल अुठते हैं: "यदि मेहनत-मजदूरी करनेसे स्वराज्य मिलता, तब तो हिन्दुस्तानकी आबादीका बड़ा भाग वर्षोंसे लोगोंका पानी भरने और लकड़ियां फाड़नेका काम करता आया है, फिर भी स्वराज्य क्यों नहीं आया ?" शरीर-श्रमके चिह्न-स्वरूप अधिक नहीं तो रोज आधा घंटा स्वराज्यका प्रत्येक अिच्छुक शरीर-श्रम करे, और चूंकि कड़ी मेहनत सबसे नहीं हो सकती अिसलिअे चरखा कातनेकी ही मेहनत करे — यह सूचना आओी, तब हम बड़े विचारमें पड़ गये और आखिर जब अिस सूचनाको रद करा दिया तभी हमें चैन मिला। परंतु हम यह नहीं देखते कि अैसा करके हमने स्वराज्यको भी दूर फेंक दिया है। हम अपने करोड़ों श्रमजीवी भाओी-बहनोंसे हर तरह अलग हो गये हैं, सफेदपोश बनकर अुनसे अूपर ही अूपर रहते हैं, अुन्हें अपने नजदीक हम नहीं खींच सकते, अुन्हें समझ नहीं सकते और अुनमें स्वराज्यके लिअे तथा हमारे अपने लिअे विश्वास पैदा नहीं कर सकते। अुनके जैसे मेहनती बनें तो हम अुनका प्रेम प्राप्त कर सकते हैं। परंतु वैसे बननेके लिअे हम क्यों तैयार होने लगे?

८. **अभय** — ग्यारहों सिद्धान्तोंमें यही अेक अैसा है, जिसे कोओी अस्वीकार नहीं कर सकता। लोगोंमें निर्भय वीरके नाते सम्मान प्राप्त करना किसे अच्छा नहीं लगता? परंतु अच्छा लगनेसे ही वह सम्मान मिल नहीं जाता और न मुंहसे बड़ी-बड़ी बातें करने और छाती फुलानेसे ही अभय आ जाता है। हम सत्य, अहिंसा आदि सिद्धान्तोंको दृढ़तासे क्यों नहीं पकड़ सकते? क्यों अुन्हें बात-बातमें छोड़ देते हैं? क्यों हम हमेशा सुविधा-धर्म पर ही जीते हैं? क्या अिसका कारण यही नहीं है कि हमने अपने हृदयमें अभयको जीवनका सिद्धान्त बनाने लायक बल पैदा नहीं किया है? हमें देशभक्ति तो करनी है। परन्तु वैसा करनेमें हमारी जमीन-जायदाद और जीवनको नुकसान पहुंचता देखकर हमारे विचार बदल जाते हैं। हमारे अैश-आराममें कमी हो वहांसे हम पलायन कर जाते हैं। कोओी अिस ढंगसे प्राण न्योछावर करके देशकी अथवा

अपने किसी भी प्रिय ध्येयकी भक्ति करनेवाला निकलता है, तो हम अुसे पागल समझकर अुसकी हंसी भी अुड़ाने लगते हैं। अिसीलिअे हमारे कामोंमें और हमारी लड़ाअियोंमें कोअी ताकत पैदा नहीं होती। वे बिना रीढ़के धड़ जैसे ढीले और अस्थिर रहते हैं।

९. स्वदेशी — स्वदेशीके लिअे जबानी वफादारी तो हम सभी प्रकट करते हैं, परंतु अुसके लिअे मुसीबतें सहने और विलासमें कमी करनेको क्या सभी तैयार हैं? मशीनोंके मालका मुकाबला करनेवाली चीजें अिस्तेमाल करने तक हमारा स्वदेशी-धर्म पहुंचता होगा, परंतु अपने गांवोंके कारीगरोंको मरनेसे बचानेके लिअे अुनके हाथके मोटे मालको भी प्रिय समझकर अिस्तेमाल करने, अुसमें दो पैसे ज्यादा लगाने पड़ें तो भी प्रेमसे लगाने तथा विदेशी अथवा शहरी मशीनोंकी घातक स्पर्धामें आज वे जो पिसे जा रहे हैं अुससे हमारे स्वदेशी सिद्धान्तकी ढाल अड़ाकर अुनकी रक्षा करने तक क्या हमारा स्वदेशी-धर्म पहुंचता है? मरते हुअे कारीगरोंको प्रोत्साहन देने, अुनके कामको प्रतिष्ठा दिलाने और अुसमें सुधार करनेके लिअे हमें खुद अुनके काम करने चाहिये — यहां तक भी हमारा स्वदेशी-धर्म जाना चाहिये। अिसी दृष्टिसे अिस बात पर जोर दिया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं काते। फिर भी क्या हम अिस बातको हंसीमें नहीं अुड़ा देते? तैयार खादी काममें लेते हैं, तो भी हमारी वृत्ति कैसी होती है? निर्वाह-वेतनका 'विचित्र और अव्यावहारिक' मापदण्ड रखकर खादीको महंगी कर डालनेके लिअे हम चरखा-संघ पर आलोचनाके प्रहार करते रहते हैं; अुसकी तहमें जो स्वदेशीकी सूक्ष्म दृष्टि है, अुस दृष्टिसे अिस मापदण्डको देखनेको तैयार ही नहीं होते। शायद अप्रमाणित खादी अिस्तेमाल करनेको भी तैयार हो जाते हैं। और यदि संयोगसे कातने तक पहुंचते हैं, तो भी खादीकेन्द्र अच्छी, बढ़िया और सस्ती पूनियां घर बैठे मुहैया नहीं करते, अिसके लिअे हम अुन पर हमेशा वाग्बाण चलाते रहते हैं। हमारा स्वदेशी-धर्म पींजने तक पहुंचना चाहिये, अिसकी तो कल्पना करनेको भी हम तैयार नहीं होते।

हमारा स्वदेशीका पालन अैसा सुविधा देखनेवाला ही हो, तो फिर अुससे देशके गांव सजीव कैसे बनेंगे? सूतके तारमें से स्वराज्यकी ताकत कहांसे पैदा होगी?

१०. अस्पृश्यता-निवारण — यह सिद्धान्त भी हम अुससे स्वराज्यकी शक्ति पैदा हो अिस हद तक पालन करनेको तैयार नहीं होते। ज्यादासे ज्यादा हम हरिजनोंका स्पर्श करने तक गये हैं। अुन्हें सार्वजनिक सभाओंमें और रेलगाड़ियों वगैरामें सहन कर लेनेसे अधिक आगे हम नहीं बढ़े हैं।

अिसकी जड़में रहनेवाला अूंच-नीचके भेदका जहर अकेले हरिजनोंका ही जीवन हरण करता हो, सो बात नहीं। वह सारे समाजमें फैला हुआ है। गांवोंके मेहनती लोगोंके साथ हमारे पढ़े-लिखे लोग कितनी तुच्छताका बरताव करते हैं? क्या हमारे अधिकांश धंधे और व्यापार अुनके अज्ञानका लाभ अुठाकर अुन्हें धोखा देने पर आधार नहीं रखते? अुन्हें सुधरते और सभ्य बनते देखकर हमारे मुंह अुतर नहीं जाते? विधर्मियों और विदेशियोंके साथ भी हम जो तिरस्कार और अपमानका व्यवहार करते हैं, वह अैसा है जिसे कोअी भी स्वाभिमानी लोग सह नहीं सकते। मुसलमान हिन्दुओंका

किसी भी बातमें विश्वास नहीं कर सकते, अिस दुःखजनक दशाके मूलमें भी अिसके सिवा और क्या है? हिन्दू अुनके साथ युगोंसे अैसा बरताव करते चले आ रहे हैं, मानो वे नीच, मलिन और अस्पृश्य हों। अुसके विरुद्ध ही अिन लोगोंकी आत्मा अुबल नहीं अुठी है?

हरिजनोंके साथ केवल सभाओंमें बैठनेसे ही यह जहर समाज-शरीरसे कैसे निकलेगा? "परंतु हरिजनों और श्रमजीवियोंके साथ पूरा न्याय करने लगेंगे, तो देशमें खलबली मच जायगी, हमारी लड़ाअियोंमें भाग लेनेवाले बहुत लोग चौंककर भाग जायेंगे, हमारे कामोंमें रुपया-पैसा देनेवाले धनिक हमें अपने द्वार पर फटकने भी नहीं देंगे"—अिस प्रकारके डर हमें लगते हैं।

मुसलमानोंके बारेमें तो हम दिन-रात यही अविश्वास मनमें बनाये रखते हैं कि अुनके साथ कभी अेकता हो ही नहीं सकती; और अेक-दूसरेके भले प्रसंगोंको भूलकर वैरभावकी घटनाअें ही याद किया करते हैं। नेता जब हिन्दू-मुस्लिम-अेकताकी बातें करते हैं, तब भी अुसका अर्थ हम अपने अविश्वाससे ही करते हैं। "वे भी मनमें तो हमारे जैसे ही दुर्बल विचार रखते होंगे, केवल मुंहसे दिखावेके लिअे अेकताकी बातें करते हैं," अैसा मानकर ही हम चलते हैं। हम अुनके विश्वासके झरनेको लोगोंमें फैलने ही नहीं देते, अपने संशयके साथ मिलाकर ही अुसे लोगोंके दिमागमें अुतारते हैं।

११. सर्वधर्म-समभाव—जो सचमुच धर्मका पालन करनेवाले हैं, अुन्हें जहां देखें वहां भगवानके ही दर्शन होते हैं। जिस किसी धर्मका शास्त्र वे देखते हैं अुसमें नअी-नअी खूबियां देखकर अुन्हें आनन्द होता है, जिस किसी धर्मके आचार देखते हैं अुनमें अुसके अनुयायियोंके किसी न किसी सुन्दर विचारका प्रतिबिम्ब ही दिखाअी देता है, जिस किसी धर्मके सन्तोंके जीवन वे पढ़ते हैं अुनसे अुन्हें कोअी अच्छी प्रेरणा ही मिलती है। अीर्ष्या-द्वेष और झगड़े तो अुनके लिअे हैं, जिन्हें जीवनमें धर्मका पालन न करना हो।

हम धर्मके मामलेमें कैसे हैं? हम सिद्धान्तोंके अर्थात् धर्मके पालनके समय संसारी बनकर छूट जाते हैं, धर्मका भार महात्माओंको सौंपकर अलग हो जाते हैं। हिन्दूके रूपमें गायमाताकी अुत्तम सेवा करके अुसे घड़ाभर दूध देनेवाली, मजबूत बैल देनेवाली और हथनी जैसी कद्दावर कैसे बनायें, अिस धर्मका हम विचार नहीं करते। आजकी गायकी स्थितिके लिअे दुनियाके सामने गायके पूजककी हैसियतसे हमें शरमसे मर जाना चाहिये, लेकिन अिस बारेमें हम बेहयाअीका बरताव रखेंगे। परंतु गायके नाम पर मुसलमानोंके साथ लड़नेके लिअे जरूर खड़े हो जायंगे। अिसमें भी अंग्रेजोंके सामने तो अुनकी राज्यसत्ताके डरसे चूं तक नहीं कर सकेंगे।

हम सबमें समान आत्मा है, यह कहकर अपने शास्त्रों पर अभिमान करनेके लिअे हम तैयार रहते हैं, परंतु अपने पिछड़े हुअे लोगोंके प्रति हम समानता और न्यायका व्यवहार करते हैं? अुन्हें ज्ञानदान देकर सबकी पंक्तिमें लानेका धर्म पालन करते हैं? केवल विधर्मी जब अुनका धर्म-परिवर्तन करने आते हैं, तब हमारा धर्माभिमान अेकदम जाग अुठता

है और हम धर्मके नाम पर अुनसे झगड़ा करनेको कमर कस लेते हैं। परन्तु यह विचार नहीं करते कि यदि हम अिन सबके प्रति सच्चे धर्मका पालन करते, तो गरीब लोग जरा-जरासी बातमें आसानीसे परधर्ममें क्यों चले जाते? तब तो हमारे मनमें हमेशा यह भरोसा रहता कि हमारा रुपया खरा है, हमारे लोगोंको कोअी फुसलाकर या ललचाकर परधर्ममें खींच ही नहीं सकता। परंतु हमारे हरिजन, भील, रानीपरज आदि कितनी आसानीसे अीसाअी बन गये हैं? यदि हम सच्चा हिन्दूधर्म पालन करनेवाले हों, तो अिस दशा पर हमें शरम आये और हम अुनके प्रति अपना व्यवहार अैसा बना लें जो धार्मिक लोगोंको शोभा दे। अुसके बजाय हम करते क्या हैं? राज्यसत्ताके भयसे पादरियोंके साथ तो हमारी लड़नेकी हिम्मत नहीं होती, केवल मनमें हम अुन्हें गालियां देते हैं, और अपनी सारी बहादुरी गरीब हरिजनों पर जुल्म बढ़ानेमें बताते हैं।

धर्म-पालनका यह तरीका नहीं हो सकता। अैसे धर्माभिमानसे न स्वधर्मियोंको बलवान बनाया जा सकता है, न विधर्मियोंके साथ प्रेम-संबंध स्थापित किया जा सकता है। और जहां ये दोनों न हों वहां स्वराज्यके दर्शन होनेकी आशा कैसे रखी जाय?

"सिद्धान्तोंको हम केवल नीतिके रूपमें ही मानेंगे," हमारे अिस कथनका यही अर्थ है। ग्यारहों सिद्धान्त आत्मबलका तेज गोला-बारूद हैं, फिर भी हमारे हाथमें आते ही वे निकम्मे बन जाते हैं। राजनीति और युक्ति-प्रयुक्तिके पुजारी हम सिद्धान्तोंको भी अपनी अेक युक्ति ही बना देते हैं, अपनी राजनीतिका अेक दाव बना डालते हैं। अैसी हालतमें ये सिद्धान्त हममें सत्याग्रहकी शक्ति कैसे पैदा कर सकते हैं? जिसे मनुष्य प्राणोंको संकटमें डालकर भी पालन करने जैसा सिद्धान्त न माने, परंतु अेक युक्ति या दाव ही माने, अुसके लिअे वह सिरकी बाजी लगानेको कभी तैयार हो सकता है? और जिस तरह वह तैयार न हो तब तक अुसके वचन या कर्ममें बल कैसे पैदा हो सकता है? शौर्य कैसे प्रकट हो सकता है?

अिसीलिअे — अिस सत्याग्रह-बलकी कमीके कारण ही, अिन सिद्धान्तोंका गोला-बारूद निकम्मा हो जानेके कारण ही, हमारी स्वराज्यकी लड़ाअियां सफल नहीं हो पातीं। हम कुछ हद तक सत्याग्रहका दिखावा करते हैं, परन्तु जब सच्ची परीक्षाका समय आता है, तब दिखावेकी कलअी खुल जाती है और हमारी कमजोरी सामने आ जाती है।

हमारे जैसे झूठे सिपाहियोंके कारण स्वराज्यकी लड़ाअियां हमेशा पिछड़ जाती हैं, यह देखकर सेनापतियोंको कैसा लगता होगा? वे घबराकर कअी बार कहते हैं: "यदि अभी तक हमारी लड़ाअीके फलस्वरूप अिन सिद्धान्तोंमें आपकी श्रद्धा न जम पाअी हो, अब भी अुन्हें केवल नीतिके रूपमें ही आप मानते हों, तो अुन्हें छोड़कर आप जिन्हें श्रद्धापूर्वक मानते हों अुस मार्गको क्यों नहीं अपना लेते?" परंतु सेनापति सैनिकोंका कभी तिरस्कार कर सकता है? और वे जानते हैं कि हमारी अश्रद्धा जितनी हमारे झूठेपनके कारण है अुससे अधिक हमारी दुर्बल सहनशक्तिके कारण है। अिसलिअे वे हमारे प्रति धीरज बनाये रखते हैं। वे अब भी आशा रखते हैं कि सत्याग्रह-शक्तिका अधिक अनुभव होने पर हममें सिद्धान्त-बलका अुदय होगा।

प्रवचन ६७

हमारे सेनापति

आजकल हम अपने ग्यारह सिद्धान्तोंकी वात कर रहे हैं। अुसमें मैंने अिन सिद्धान्तोंके लिअे 'आत्मवलका गोला-वारूद' शव्दोंका अनेक वार प्रयोग किया है। सिद्धान्तोंको हम किस प्रकार समझें और अुनका पालन करें तो अुससे हममें आत्मवल पैदा हो सकता है, अुस वलके द्वारा लड़ाअियां लड़ते-लड़ते हम किस प्रकार स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं और लोगोंमें किस तरह स्वराज्य-शक्ति पैदा हो सकती है, यह हम आज देखेंगे।

जव हमारे सामने सत्य, अहिंसा आदि सिद्धान्तोंकी वात रखी जाती है, तव वह किसी छाप और तिलकधारी, खीर-मालपुअेके भक्त साधुवावाकी तरफसे नहीं आती, परंतु स्वराज्यकी लड़ाअीके अेक सेनापतिकी तरफसे आती है, यह हम नहीं भूल सकते। सिद्धान्तोंके जो अर्थ और जो भाव अुसके मनमें हों, वही हमें अपनाने चाहिये। हमने स्वयं वातूनी भक्तों और गंजेड़ी जोगियोंको देखकर अुन सिद्धान्तोंकी जो चित्र-विचित्र कल्पनाअें मनमें वनाअी हों, अुन परसे अुनका मूल्यांकन नहीं करना चाहिये।

आअिये, हमारे सेनापतिको जरा अधिक पहचान लें। वे भक्त हैं, अीश्वरका नाम लेते हैं और रात-दिन अुसकी पूजा करते हैं। परन्तु वह अीश्वर कोअी देवालयोंका देवता नहीं, वल्कि भारतकी झोंपड़ियोंमें रहनेवाला दरिद्र-नारायण है। अुसे पेटभर नैवेद्य पहुंचाना ही अुसकी पूजा है। वे तपस्वी हैं, परंतु अुनका तपोवन हिन्दुस्तानके सात लाख गांव हैं। वे योगी हैं, परंतु अुनकी धूनी सत्याग्रहकी है और अुस धूनीके तापमें वे स्वराज्यकी साधना कर रहे हैं। वे संन्यासी हैं और हर क्षण मोक्षके लिअे छटपटाते हैं, परन्तु जव तक भारतकी कोटि कोटि दीन-हीन जनता स्वतंत्र होकर अैसी ही छटपटाहटकी अधिकारिणी नहीं वन जाती, तव तक अुन्हें मोक्षसुख भी अच्छा नहीं लगता। वे कौपीनधारी है, परंतु अुनकी कौपीनके पीछे अर्धनग्न दरिद्रोंके साथ अेकरूप हो जानेकी आतुरता है। वे माला फेरते हैं, परंतु अुनकी माला चरखेके चक्रकी है। अुसे चला-चलाकर वे अुलटे रास्ते लगे हुअे जगतके लोगोंको सीधी राह पर लानेकी कोशिश कर रहे हैं। वे अुपवास करते हैं, परंतु अुनके अुपवास स्वराज्यके कार्यके लिअे अपना आत्मवल अधूरा सिद्ध होनेके कारण अधीर वनी हुअी आत्माका आर्तनाद हैं। वे प्रार्थना करते हैं, परंतु अुनकी प्रार्थना यह है कि 'हे प्रभो, मुझे अितना प्रेम और अितनी सहन-शक्ति दे कि मैं अंग्रेजोंके स्वार्थसे शुष्क वने हुअे हृदयको भी आर्द्र वना सकूं।' वे भगवानकी अगम्य लीलाकी महिमा सदा गाते हैं, परंतु अुनका गाना भजनोंमें पूरा नहीं हो जाता। अुनका भजन अुनकी श्रद्धा है, अुनका आशावाद है। "अेक दिन अकल्पित रूपमें अीश्वर जरूर कृपावृष्टि करेगा। अुस दिन निराशाके वादल विखर जायंगे और आशाका

प्रभात निकल आयेगा। आज भारतीय जनताको किसी भी तरह सत्याग्रहका शौर्य नहीं चढ़ता। परंतु अुस दिन वह अपने-आप चढ़ने लगेगा, क्योंकि अुसके भीतर आत्मा है और आत्मामें वह शौर्य सुप्त रूपमें विद्यमान है। अुस दिन अंग्रेज अपने-आप पिघलने लगेंगे, क्योंकि सत्याग्रहके सामने पिघलना आत्माका स्वभाव है। मैं नहीं जानता कि अीश्वर वह कृपावृष्टि कब करेगा। परंतु यह आशावाद मुझसे कभी छूटता नहीं कि कभी न कभी वह जरूर करेगा। अिसलिअे प्रयत्न करनेमें मुझे कभी थकावट नहीं होती। पीछे हटते हटते भी मैं फिर आशाके साथ काममें लग जाता हूं।" यह भजन अुनका रोम-रोम सदा गाता है। अिसलिये जब दूसरे पीछे हटते हैं, तब वे सदा आगे ही आगे दौड़ते हैं। दूसरे जब अुदासीमें डूब जाते हैं, तब वे सदा आनन्दी रह सकते हैं। दूसरे बूढ़े होते जाते हैं, तब वे सदा नौजवान बनते जाते हैं। औरोंको मार्ग नहीं सूझता, तब अुन्हें प्रत्येक नअी परिस्थितिके लिअे नया मौलिक मार्ग सूझे बिना कभी नहीं रहता। अिसीलिअे वे महात्मा हैं। अुनकी श्रद्धा हम सबमें श्रद्धा भरती है। अुनके प्राण हम सबमें प्राणोंका संचार करते हैं। वे हमें मिट्टीसे मनुष्य बनाते हैं।

यह मैंने किसका चित्र खींचा है? अिसमें शंका ही नहीं कि यह पूज्य गांधीजीका चित्र है। परंतु यह न समझिये कि यह अकेले अुन्हींका चित्र है। अैसे दूसरे भी अनेक सेनापति हमारे सौभाग्यसे अीश्वरने हमें दिये हैं। वे सब कौपीन पहननेवाले नहीं हैं, अुठते-बैठते वे मुंहसे रामनाम नहीं लेते और अुपवास भी नहीं करते। परंतु अिससे कोअी भुलावेमें न आये। अुनके अन्तरकी परीक्षा करेंगे, तो मालूम होगा कि अुनके हृदय भी अिसी मिट्टीसे बने हैं। अुतनी ही गहरी दरिद्र-नारायणकी भक्ति, अुतनी ही तीव्र स्वराज्य-योगकी साधना, अुतना ही प्रबल सत्याग्रहका शौर्य, अुतना ही प्रखर आशावाद — अिन सारे तत्त्वोंसे अुनके तन-मन-प्राणकी रचना हुअी है।

परंतु अुनका बाहरी रूप कौपीनधारीका न होनेसे हम यह माननेकी भूल कर बैठते हैं कि वे गांधीजीकी अपेक्षा किसी दूसरी ही मिट्टीके बने हुअे हैं। हम मान लेते हैं कि वे गांधीजीकी अपेक्षा हमारी ही जातिके अधिक हैं; अर्थात् हमारी तरह वे भी युक्ति-प्रयुक्ति और राजनीतिके ही अुपासक हैं। गांधीजी सत्य, अहिंसा आदि सिद्धांतोंकी बात करते हैं, तब तो हम यह माननेको तैयार हो जाते हैं कि यह अुनके दिलकी बात है; परंतु जब दूसरे सेनापति वही बात करते हैं, तब हम अेक-दूसरेकी तरफ देखकर आंखोंकी पुतलियां घुमाते हैं। नेतागण सिद्धान्तोंको अेक दावके रूपमें ही सामने रखते हैं; वे अेक तरफ गांधीजीके बलको बोतलमें अुतारकर देशके काममें अुनका अुपयोग करते हैं और दूसरी तरफ हम सब सत्य और अहिंसाके पालनेवाले साधु लोग हैं, अिस भ्रममें सरकारको डालकर लोगोंको अुसकी मारसे बचा रहे हैं, यही अर्थ हम तुरंत लगा लेते हैं; और हमारे नेता कितने घुटे हुअे हैं, यह कहकर मन ही मन हम अुन्हें श्रद्धांजलि अर्पण करते हैं।

अिस प्रकार हम अपनी होशियारी और चतुराअीमें मग्न रहते हैं। परंतु अुसका परिणाम यह होता है कि हम खुद अपने गोला-बारूदमें पानी अुंडेलते हैं। गांधीजीको

हमने शुरूसे ही साधुबाबाओंमें गिन लिया है। "वे तो सिद्धान्तोंकी बात करेंगे ही, वे राजनीतिके व्यवहारको क्या समझें? परंतु सिरफिरे आदमी हैं, अिसलिअे जब लड़नेके लिअे कहें तब अुतनी देरके लिअे अुन्हें निभाकर हमें लड़ना चाहिये। जब वे सिद्धांतों पर जोर दें, तब हम केवल बाहरसे सिर हिलायें, परंतु अुन पर गंभीर कभी न बनें।" अिस प्रकार हम अुनका गोला-बारूद बिगाड़ देते हैं। और दूसरे नेता सत्य-अहिंसाकी बातें करते हैं, तो अुसे राजनीतिका दाव समझकर अुनके गोला-बारूदको भी हम गीला करके निकम्मा बना देते हैं।

अैसा न करके जब वे सिद्धान्तोंकी बातें कहते हैं, तब अुनके मनमें सचमुच क्या क्या भाव क्रीड़ा करते हैं, अिसे समझकर हम अुन्हें अपनायें, अिसीमें हमारा और देशका कल्याण है। तो आअिये, अब नेताओंके हृदयोंमें जरा डुबकी लगायें और ग्यारह सिद्धान्त वहां किस रूपमें विद्यमान हैं, अिसका परिचय करें।

प्रवचन ६८

सत्यमें कौनसा बल है?

सत्य नारायण है, आत्माका गुण है। अग्निमें जैसे गरमी रहती है, वैसे ही मनुष्यमें यह गुण स्वभावतः रहता है। अिसलिअे प्रत्येक मनुष्य स्वभावसे ही सत्यका पुजारी होता है। सत्यके सामने अुसका मस्तक झुके बिना रह ही नहीं सकता। झूठा आदमी कितने ही हथियारोंसे सुसज्जित हो और कैसा ही राज्यसत्ताका कवच पहने हुअे हो, चाहे जैसी राजनीतिके अिंद्रजालमें अुसने अपना असली रूप ढंक लिया हो, परंतु सत्यके सामने वह शरमाता है, लज्जित हो जाता है, अुसके हाथोंमें हथियार काममें लेनेका जोर नहीं रह जाता, अुसके मनसे राजनीतिका कपट फटकर निकल जाता है और अुसके दिलमें वैरका जहर शांत हो जाता है।

यह सुनकर आप हंसिये नहीं; अिसे श्रद्धासे मानिये। अपने निजी जीवनमें, परिवारमें, धंधेमें, समाजमें अिसकी जांच कीजिये। जहां देखें वहां क्या सत्यनिष्ठ मनुष्यके लिअे आदर नहीं है? अुसके साथ लोगोंका बरताव क्या दूसरी ही तरहका नहीं होता? दूसरोंके धन या बलसे दबकर लोग जो काम करनेको तैयार नहीं होते, वही अुसके अेक वचनसे करनेको तैयार नहीं हो जाते? अुसकी आंखें देखकर झूठे लोग क्या चुप नहीं हो जाते? गुंडे और शरारती सयाने और आज्ञाकारी नहीं बन जाते? अुलटे लोग सीधे नहीं हो जाते?

अिसका परिचय गांधीजी जैसोंके जीवनमें तो क्षण-क्षण पर मिलता है। परंतु आज आप अिसे देखनेके लिअे अुनकी तरफ न जाअिये। क्योंकि तब आपको व्यर्थ ही यह भ्रम होगा कि यह अुनके महात्मापनका प्रभाव है। आप अपने आसपास — घरमें, मुहल्लेमें, गांवमें ही नजर डालिये। कोअी न कोअी सत्यका अुपासक वहां होता ही है। किसी जगह कोअी पुरुष होगा, किसी जगह कोअी स्त्री होगी, तो किसी जगह

कोओी बालक भी हो सकता है। अुसके सत्यबलसे अैसे ही न मानने लायक परिणाम निकलते हैं।

सत्यके बलका अैसा दर्शन आपको प्रत्यक्ष हो, तो भी क्या आप माननेको तैयार नहीं होंगे कि अन्य बलों जैसा ही यह भी अेक बल है? सत्य गुरुत्वाकर्षणके जैसा ही, बिजलीके जैसा ही अेक बल है। अुनसे अधिक अद्‌भुत गुणोंवाला और अधिक सूक्ष्म तथा अिसीलिअे अधिक तेज यह बल है।

यह तो आप फौरन मान लेते हैं कि सख्त जमीन अुससे भी अधिक सख्त कुदालीसे खोदी जाती है; परंतु आपने यह भी देखा होगा कि सेवाके पीछे पागल बना हुआ मनुष्य हाथमें कुदाली लेकर जब आगे हो जाता है और पुकार लगाता है, तब घर-घरसे लोग कुदालियां लेकर निकल पड़ते हैं और खेलते-खेलते गांवकी सुन्दर सड़क बना देते हैं। सत्यका यह बल न आया होता, तो लोगोंमें अुत्साह पैदा न होता और कुदालियां घरोंमें से अपने-आप बाहर न निकली होतीं। आप यह तो मानते हैं कि किसी नल पर बिजलीका बल जोड़ देनेसे वह पानीका प्रपात बहा देता है। परंतु क्या आपने यह दृश्य कभी नहीं देखा कि अेक सेवा-परायण मनुष्य जब आवाज लगाकर आगे हो जाता है, तब घर-घरसे लोग पानीकी बालटियां लेकर निकल पड़ते हैं। जो लोग अब तक मुंह बाये आगका तमाशा देखते रहे थे, अेक भावनाहीन अव्यवस्थित टोलेके समान थे, वे तुरंत मनुष्य बन जाते हैं; व्यवस्थित, अेकदिल और दृढ़ निश्चयवाला संघ बन जाते हैं और खेलते-खेलते आग बुझा देते हैं! अच्छी तरह जोड़ी हुअी बिजलीने जो काम किया, वही काम — अमुक गैलन पानी खींचनेका काम — क्या अिस दूसरे प्रकारके बलने भी नहीं किया?

कोअी थानेदार या तहसीलदार गांवमें जाकर शोर मचाये और लोगोंको गालियां दे, तो अुससे गांवके लोग दब जाते हैं, बड़े बड़े तीसमारखां तक घबरा जाते हैं; यह आप रोज देखते हैं और अिसीलिअे यह मानते हैं कि राज्यसत्तामें बल है। सत्ताके सामने सयानपन क्या काम देता है? — यह कहकर आप चुप रहते हैं। परंतु गांवमें अेकाध आदमी भी सत्यके बलवाला निकल पड़ता है और हिम्मतसे बोलता है, तो वह अधिकारी अुसके तेजके सामने खिसिया जाता है। लोग भी स्वाभिमानकी रक्षा न कर सकनेके लिअे शरमाते हैं और मनुष्यकी तरह व्यवहार करने लग जाते हैं। अैसे दृश्य भले कभी-कभी ही देखनेको मिलते हों, परंतु प्रत्येक गांवके आंगनमें किसी न किसी दिन अैसी घटना होनेका स्मरण प्रत्येक मनुष्य जरूर कर सकेगा। किस बलसे वह सारी हवा बदल जाती है? अुस आदमीके पास कोअी हथियार नहीं होता, कोअी सत्ता नहीं होती। अुस अफसरको यह डर भी नहीं रहता कि अुस आदमीके नेतृत्वमें विद्रोह करके गांववाले मुझे मार डालेंगे। वह अफसर चाहे तो आवाज लगानेवालेको पकड़ सकता है, मार सकता है। परंतु सत्यबलके सामने गुंडेकी गुंडागिरी लज्जित हो जाती है, अुसके भीतर सोअी हुअी शिक्षा, शराफत, न्यायबुद्धि और देशभक्ति अुस आदमीके सत्यतेजके प्रभावसे जाग्रत हो जाती है।

ये तो हुअे सार्वजनिक जीवनके दृष्टान्त। वे लंबी गुलामीके कारण कभी-कभी ही देखनेको मिलते हैं, जैसे आषाढ़के घनघोर बादलोंमें से सूर्यकी किरणें कभी-कभी ही चमक अुठती हैं। परंतु पारिवारिक जीवनमें सत्यबलके अुदाहरण बहुत अधिक संख्यामें देखे जाते हैं। पति द्वारा अपनी पत्नीको दबानेकी घटनायें तो आप रोज देखते हैं; परंतु जब अेक अबला सती अूंचे स्वरसे सच्ची बात कहती है, तब क्रोधी, लंपट, शराबी और अत्याचारी पति भी निस्तेज और असहाय जैसा बनकर नीचे देखने लगता है। अैसे दृश्य भी गांव-गांव और मुहल्ले-मुहल्लेमें कम नहीं देखे जाते। बड़ों द्वारा छोटोंके दबाये जानेके दृश्य तो हम देखते ही हैं। परंतु छोटे बच्चे भी जब सत्यकी सत्ताकी आवाज अुठाते हैं, तब गांवको गुंजा देनेवाला घरका कठोर बुजुर्ग भी अुसके सामने आदरसे सिर झुका लेता है। ये दृश्य भी अितने कम नहीं होते कि कभी देखनेमें ही न आवें। मालिककी डांटसे थर-थर कांपनेवाले दुबलों* को तो सब लोग रोज ही देखते हैं। परंतु कभी-कभी कोअी सच्चा खेत-मजदूर भी अूंची आवाजसे कुमार्ग पर जानेवाले मालिकको अुलाहना देता है, तब अुसके सत्यके तेजके सामने मालिक जमीन कुरेदने लगता है। अैसे दृश्य भी अपने गांवमें क्या आप सालमें दर्जन आधी दर्जन बार नहीं देखते?

अिस प्रकार अपने आसपास रोज देखने पर भी सत्यमें रहनेवाले तेज अथवा आत्मबलको न मानना क्या अैसा ही नहीं है, जैसे कोअी नासमझ बालक बिजलीके तारको सादा तार माननेका हठ करके अुसे पकड़ने लगे?

सत्य तो सारे जगतमें, आकाशमें वायुकी तरह, व्याप्त है। अुसमें अनंत बल भरा होने पर भी वह वैसे ही नहीं दिखाअी देता। हवाको कोअी खींचे या दबाये तभी अुसमें रहनेवाला बल प्रगट होता है। पहियोंमें हवाको भरते हैं, तब वह दौड़ती हुअी मोटरका भार अुठाती है। अिस शीतल मन्द मधुर वायु पर जब कुदरतकी गर्मी-सर्दीके शोषण काम करते हैं, तब वह भयंकर आंधीका रूप धारण करती है, छप्पर अुड़ा देती है, पेड़ अुखाड़ देती है और समुद्रमें जहाजोंको अुलट देती है। सत्य भी अैसा ही है। अुसका बल तभी अुत्पन्न होता है, जब हम कोअी अुसका आग्रह पकड़ते हैं। जैसे बिजलीसे तांबेका तार संचारित होना चाहिये, वैसे ही किसी मनुष्यका अथवा मनुष्योंके किसी संघका जीवन सत्याग्रहसे संचारित होना चाहिये। तभी सत्यका बल प्रगट होता है और तभी अुस बलके सामने झूठे, अन्यायी, अत्याचारी, कितने ही बलवान हों तो भी, शरमिन्दा हो जाते हैं, लज्जित हो जाते हैं, अुनके अंग ढीले पड़ जाते हैं। सत्ताके सामने सयानपन काम नहीं देता होगा, परन्तु सत्ताके सामने सत्याग्रह जरूर काम देता है। वह सत्ताको शरमिन्दा कर देता है, निस्तेज बना देता है, लज्जित कर देता है, चुप कर देता है। सत्याग्रह सत्ताके जैसा ही अेक बल है। वह सत्तासे अधिक सूक्ष्म, अधिक तेज, प्रकार और गुणमें अुससे भिन्न होते हुअे भी अेक स्पष्ट बल है। अर्थात् यदि हम अुस बलके गुण-धर्म अच्छी तरह पहचानें और अुससे अपने जीवनको

* दुबला नामक आदिम जातिके लोग, जो खेतोंमें मजदूरी करके अपना निर्वाह करते हैं।

संचारित करें, तो वह अैसा विश्वासपात्र बल है कि अुससे गणितकी निश्चितताके साथ कल्पित परिणाम लाया जा सकता है।

अिस पर हमें झट विश्वास नहीं होता। दूसरोंके अनुभवोंको देखकर अुन पर विश्वास नहीं हो सकता। सत्याग्रहका स्वयं अनुभव किये बिना अुस पर हमारी सजीव श्रद्धा बैठ ही नहीं सकती। चखे बिना मिश्रीकी मिठासमें हमारा विश्वास नहीं जमता। गांधीजीने सत्याग्रहके बलसे चम्पारनमें बिहार सरकारको लज्जित किया होगा, तो भी अुस घटनाका मूल्यांकन हम अपनी अश्रद्धासे ही करेंगे। बिहारका गवर्नर दिलका कमजोर रहा होगा, अिसलिअे वह झुक गया; गांधीजीको पकड़ेंगे तो लोग विद्रोह कर देंगे, अिस डरसे सरकारने कदम पीछे हटा लिया होगा, वगैरा अर्थ हम लगायेंगे। जब तक हम स्वयं सत्याग्रहका अनुभव नहीं करेंगे, तब तक हमारी अैसी अश्रद्धाकी मान्यताओंको कौन दूर कर सकेगा? सत्याग्रहका बल पहचाननेके लिअे हमें स्वयं अपने जीवनमें अुसका अनुभव करना होगा, परिचय करना होगा।

हमारे चाहे जो आग्रह करनेसे, चाहे जैसा हठ पकड़नेसे अुपरोक्त परिणाम नहीं आयेगा। हम सचमुच सत्यका आग्रह रखेंगे, तो ही अुस सत्याग्रह-बलके सामने झूठे, अन्यायी और अत्याचारी लोग शरमायेंगे, ठंडे पड़ेंगे। कभी-कभी हम कथित सत्याग्रह करते हैं, फिर भी अैसा परिणाम नहीं देखते। जांच करेंगे तो पता चलेगा कि अुस समय सत्याग्रहमें से 'सत्य' शब्द हमारे मस्तिष्कसे निकल जाता है। कुछ भी हठ करना, कुछ भी झगड़ा करना, अिसीको हम सत्याग्रहका नाम दे देते हैं।

कोअी विद्यार्थी, जो आवारोंकी तरह मशहूर हैं और जिनके प्रतिदिनके जीवनमें देशभक्ति कभी देखी नहीं गअी, अिस वृत्तिसे पाठशालामें किसी राष्ट्रीय प्रसंग पर हड़तालका आन्दोलन छेड़ते हैं कि तूफान मचानेका अेक अच्छा मौका मिला है, तब पाठशालाके व्यवस्थापकों पर अुसका कुछ भी असर नहीं होता। परंतु अेक ही विद्यार्थी, जो नियमित और अुद्योगीके नाते मशहूर है और रोज गांवके हरिजन-वासमें सेवा करनेका जिसका नियम भी सबको मालूम है, पाठशालाकी तरफसे चरखा-द्वादशीकी छुट्टी और अुत्सवके लिअे मांग करता है, तब अुसकी मांगमें, अुसके सारे बरतावमें, अुसकी सचाअी प्रगट होती है। व्यवस्थापकों पर अुसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा। वे या तो अुसके सत्याग्रहके सामने झुक जायंगे; और नहीं झुकेंगे तो भी गांवके लोगोंके सामने अपना पक्ष पेश करते समय अुनके मुंह अुतर जायंगे और अपनी आवाजमें ही अपने अपराधी होनेकी वे गवाही देंगे।

अथवा अेक और अुदाहरण घरमें से लीजिये। अेक बालककी घरमें चोरी करके खानेकी आदत सबको मालूम है। ताकमें से पेड़ा गुम हुआ देखकर मां अुस पर अिल-जाम लगाती है। चोर लड़का साधुपनका दिखावा करके अुसका खूब विरोध करता है, रोता है, गुस्सा होता है और 'सत्याग्रह' के तौर पर खानेसे अिनकार कर देता है। अुसके अैसे 'सत्याग्रह' रोजके होनेसे, रोज अुसमें अुसके झूठा साबित होनेसे और भूख

लगने पर सत्याग्रहको भूल जानेसे मां पर कोअी असर नहीं होगा। घरके दूसरे आदमियोंके सामने भी मांका हृदय लज्जा क्यों अनुभव करेगा? परंतु अेक दूसरे लड़केका अुदाहरण लीजिये। वह सच वोलनेवाला है, कहना माननेवाला है, सयाना और विवेकी है। वह छात्रालयमें रहता है। वहां अुसके हाथसे कांचकी रकावी टूट जाती है। वह गृहपतिसे सही वात कह देता है। गृहपति वहुत गहरा आदमी नहीं है। क्रोधी है। वह क्रोधमें आकर अुसे कड़ी डांट पिलाता है। लड़का दुःखी होता है। अेक समयका खाना छोड़कर क्षतिपूर्ति करनेके लिअे वह सत्याग्रह करता है। गृहपति कितना ही सख्त हो, तो भी अिस घटनासे अुसका मुंह अुतरे विना नहीं रहेगा। छात्रालयकी संस्थामें यह भाव प्रत्येकके मुंह पर छा जायगा कि अुस विद्यार्थीकी योग्यता अूंची और गृहपतिकी नीची है और अुसके असरसे गृहपति शरमिन्दा दिखाअी देगा। वह मुंहसे शायद स्वीकार न करे, परंतु अुसकी आंखोंमें, अुसके प्रत्येक हावभावमें यह असर दिखाअी दिये विना नहीं रहेगा।

आग्रह वास्तवमें सत्यका ही हो, तो सामनेवाला अन्यायी मनुष्य लज्जित हुअे विना रहेगा ही नहीं। जैसे बड़े दियेके सामने छोटा दिया मन्द पड़ जाता है, अैसा ही यह अेक वैज्ञानिक नियम है। अनुभव और प्रयोगसे ही अैसी प्रतीति हो सकती है। हम सव सेवकोंको अपने जीवनमें प्रयोग करके यह श्रद्धा दृढ़ वना लेनी चाहिये, क्योंकि सेवाका मार्ग हमेशा सुख-शांतिका नहीं होता। अुसमें सत्याग्रहके युद्ध भी करने पड़ते हैं।

सत्यके वलमें जैसे झूठेको शरमिन्दा और ढीला करनेका गुण है, वैसे अुसका अेक और अद्भुत गुण भी जाननेके लायक है। सत्याग्रही छोटा हो या बड़ा, अेक हो या अनेकका वना हुआ संघ हो, अुसका सत्याग्रह अेकसा तेज असर पैदा करता है। संख्या या शरीर-वलके साथ सत्याग्रहका कोअी संवंध नहीं है। छोटे दियेका प्रकाश भी अुतना ही और वड़ेका भी अुतना ही — अैसी यह विचित्र वात है। परंतु जड़ दियेकी अपेक्षा सत्यके दियेके गुणधर्म वहुत ही भिन्न होते हैं। अंग्रेजी सल्तनतके जुल्मके विरुद्ध सारा हिन्दुस्तान सत्याग्रह करता है, तव अुससे सल्तनत शरमिन्दा होती ही है। परंतु अिस जवरदस्त सल्तनतके खिलाफ अेकाध महात्मा गांधी जैसा सत्यप्राण मनुष्य जव सत्याग्रह छेड़ता है, तो अुससे भी वह अुतनी ही शरमिन्दा होती है, यह हम वहुत वार देखते हैं। हमारे देशमें वड़े-वड़े सामुदायिक सत्याग्रहोंने सरकारको अच्छी तरह नीचा दिखाया है। परंतु किसी किसी व्यक्तिगत सत्याग्रहीके शुद्ध सत्याग्रहने भी अुसका तेज कम हरण नहीं किया।

सत्यके वलका यह परिचय भी जीवनमें अनुभव और प्रयोग करनेसे ही मिल सकता है। हम सेवक अैसी श्रद्धा वना सकें, तो हमारी सेवाशक्ति कितनी वढ़ जाय? अकेले होने पर भी हम यदि सच्चा सत्याग्रह करना जानते हों, तो सारी हुकूमतको हिला देनेकी शक्ति हममें पैदा हो सकती है। अिसे हम समझ लें तो हमारा आत्म-विश्वास कितना वढ़ जाय?

ग्यारह सिद्धान्तोंमें जब सत्य पर जोर दिया जाता है, तब आप यह कहकर असकी हंसी न अुड़ाअिये कि वह केवल सत्यनारायणकी कथा कराकर प्रसाद खानेकी बात है। वह हमारे सामने अेक अुग्र और तेज युद्धबलके रूपमें ही पेश किया जाता है। सैनिक बलसे किसी अत्याचारी तंत्रको ढीला बनाया जा सकता है; वही परिणाम सत्याग्रहके बलसे भी लाया जा सकता है। पहली बात आप फौरन मान लेते हैं, परंतु दूसरी बात कोअी कहता है तो आप अुसके सामने अविश्वासभरी आंखोंसे देखने लगते हैं। हम अनुभव और प्रयोग करें तभी यह अविश्वास मिट सकता है। तभी हम मान सकते हैं कि वह बल हमारी जनता आजमाये, तो अुसके तेजके सामने जालिमका मुंह अुतर जायगा और अुसके हाथमें से जुल्मका हथियार गिर पड़ेगा। हम थोड़ेसे सेवक भी यह बल धारण कर लें, तो यही परिणाम ला सकते हैं। हमारी संख्या कम होनेसे अिसमें कोअी फर्क नहीं पड़ेगा।

प्रवचन ६९

अहिंसामें कौनसा चमत्कार है?

यह भी कोअी माला फेरने या चींटियोंको आटा खिलानेकी बात नहीं है; यह भी अेक अलौकिक युद्धबलकी ही बात है। सत्यबलके साथ अहिंसा-बलको मिला दें, तो अुसमें कुछ अनोखा चमत्कार अुत्पन्न किया जा सकता है। अकेले सत्याग्रहमें झूठेको नीचा दिखानेकी शक्ति है; परंतु यदि सत्याग्रहको अहिंसामय बना दें, तो झूठा प्रतिपक्षी पूरी तरह बदल जाता है। अुसके विचार बदल जाते हैं, अुसका हृदय-परिवर्तन हो जाता है। वह झूठा न रहकर सच्चा बन जाता है, वह शत्रु न रहकर हमारा मित्र बन जाता है। अकेले सत्याग्रहसे सरकार शरमा कर जुल्म करना बंद कर सकती है, परंतु अहिंसामय सत्याग्रह तो अुसे सरकार न रहने देकर सेवक बना देता है।

सैनिक बलसे मित्रराज्योंने अिटलीको शत्रुपक्षसे अलग करके अपने पक्षमें आकर लड़नेको मजबूर किया। सैनिक बल अिस परिणामको अपनी बड़ीसे बड़ी सिद्धि मानता है और अुस पर अभिमान करता है। अहिंसामय सत्याग्रह, अपने दूसरे ही ढंगसे सही, परंतु प्रत्यक्ष परिणाम तो यही अुत्पन्न करता है। वह भी प्रतिपक्षीको हमारे विरुद्ध लड़नेसे रोक कर हमारे पक्षका बना देता है।

सैनिक बल शत्रुका गला पकड़ कर, अुसे अपने मातहत रहकर लड़नेको मजबूर करता है; लेकिन अुसका हृदय तो पहले जैसा शत्रु ही रह जाता है और सदा भाग निकलनेका ही मौका देखता रहता है। अिसलिअे सैनिक बल अुसकी ओरसे कभी निश्चिन्त नहीं हो सकता। अुसे शत्रुकी गरदन हमेशा दबाये रखनी पड़ती है। अपना बल सतत अुस पर खर्च करते रहना पड़ता है।

अहिंसामय सत्याग्रह जो परिवर्तन लाता है, वह अिससे कहीं अूंचे प्रकारका है। क्योंकि वह प्रतिपक्षीको बलात् गला पकड़कर बदलनेको विवश नहीं करता, परंतु अुसके

हृदयका ही परिवर्तन कर देता है। वह अपनी अिच्छासे अपना असत्य पक्ष छोड़ता है और जैसे पहले हमारा दुश्मन था, वैसे ही स्वेच्छासे हमारा हिमायती, सहायक और मित्र बन जाता है।

अहिंसाका रसायन किस प्रकारकी क्रिया शुरू करता है? हम सत्यबलका आग्रह जितने जोरसे रखते हैं, अुतने ही जोरसे असत्यके पक्षका परदा-फाश होता है और वह नीचा देखने लगता है। परंतु सत्याग्रह अहिंसापूर्ण हो तो वह शरमिन्दा ही नहीं होता, बल्कि दिलसे पछताने भी लगता है। अुसे भीतरसे सत्यपक्षके लिअे आदर अुत्पन्न होता है। वह सत्याग्रहीको दुःख देनेके लिअे स्वयं अपनेको धिक्कारने लगता है। अब अुसकी हर तरहसे मदद करके अपने दिये हुअे त्रासका परिशोध किये बिना अुसके दिलको चैन ही नहीं पड़ता। अहिंसाके रसायनका काम करनेका यह ढंग है। अुससे शत्रु शत्रु नहीं रहता; अितना ही नहीं परंतु पछताकर वह हमारा मित्र बन जाता है। फिर अुसकी चिंता करने या अुसका गला पकड़ रखनेकी बात ही नहीं रहती। वह हमसे भी हमारा अधिक हितचिंतक बन जाता है, क्योंकि अब तक किये हुअे द्रोहका प्रायश्चित्त करनेका अुसमें अधिक अुत्साह होता है।

अिटली तो जब तक मित्रराज्योंका पंजा अुसकी गरदन पर रहेगा, तब तक मनमें अपनेको अपमानित और हारा हुआ मानेगा। दुनियामें कोअी अुसके सामने देखे या अुसकी स्थितिका सहज ही अुल्लेख कर दे, तो वह लज्जित होगा, अुसे धरतीमें समा जानेकी अिच्छा होगी। वह दबावके वश होकर मित्रोंके पक्षमें जोर लगायेगा, तो भी अुसमें कुछ दम नहीं होगा। परंतु अहिंसामय सत्याग्रहका बल यदि हम अंग्रेज सरकार पर चला सकें, तो अुस पर कैसा असर होगा? अुसे मानभंग या पराजय जैसा बिलकुल नहीं लगेगा। अब वह बुरे कृत्यसे मुक्त हो गअी है और अिसका बदला सत्याग्रही भारतको सहायक बनकर दे सकती है, अैसा मानकर अुसके अंतःकरणमें अुल्लास ही होगा, अभिमान ही होगा। दुनियामें कोअी अुसके सामने देखे तो अुसे शरम बिलकुल नहीं आयेगी। अुसे अैसा ही लगेगा, जैसे किसी सत्कृत्यके लिअे जनताकी तरफसे मिलनेवाली बधाअी जनार्दनके आशीर्वाद जैसी लगती है। अुसके मनमें यह अपेक्षा भी स्वाभाविक रूपमें रहेगी कि कोअी अुसे धन्यवाद और अभिनन्दनके दो शब्द कहेंगे। जिसके हृदयका अैसा परिवर्तन हो गया हो, अुसके मुंह पर हार या अपमानकी शर्म क्यों होगी?

क्या अहिंसामें सचमुच अैसी शक्ति है? अहिंसाका अर्थ है 'न मारना'। न मारनेसे अैसा परिणाम कैसे पैदा हो सकता है?

जो मारनेकी शक्ति होते हुअे भी यह व्रत लेकर जीता है कि 'मैं दुनियामें किसीको नहीं मारूंगा', अुसके साथ संसारको दूसरी ही तरहका बरताव करना पड़ता है। अीश्वरने हमारी रचना ही अिस ढंगसे की है कि अैसा व्रत पूरी तरह कोअी पाल नहीं सकता। जीनेके लिअे जाने-अनजाने कहीं न कहीं तो हम किसी न किसीको मारते ही हैं। परंतु अपनी मर्यादामें रहकर भी हम अहिंसाका काफी हद तक पालन कर सकते

हैं। "किसी मनुष्यकी हिंसा तो मैं हर्गिज नहीं करूंगा", यह प्रतिज्ञा लेना और अुसे पालना हमारे बूतेके बाहर नहीं है। अैसा करना कठिन तो बहुत है, सिरका सौदा है, परंतु असंभव नहीं है। लेकिन अगर हम सचमुच अिस प्रतिज्ञाका पालन करके दिखा दें, तो लोग हमारी तरफ अिज्जतसे देखे बिना नहीं रहते, हमारे प्रति अपने मनमें वैरभाव नहीं रख सकते और हम पर हाथ नहीं अुठा सकते। अर्थात् वे हाथ अुठाना चाहें तो हम अुन्हें रोकेंगे यह डर अुन्हें नहीं लगेगा; परंतु विरोधमें हाथ न अुठानेकी जिसकी प्रतिज्ञा है, अुस पर हाथ अुठानेका विचार ही मनुष्यको नहीं आ सकता। अिसमें अुसके मनुष्यत्वकी हीनता मालूम होती है।

यह अहिंसाका महान बल है। हम किसीको मारने लगें तो वह हमें बदलेमें जरूर मारेगा; यह जितना निश्चित है अुतना ही निश्चित यह भी है कि 'मैं किसी भी मनुष्यको नहीं मारूंगा' अिस व्रतका पालन करनेवालेको कोअी मारने नहीं आयेगा। प्राचीन कालमें लोग गांवके चारों ओर परकोटा खींचकर अुसके बल पर अेक हद तक निश्चिन्त रहते थे। वे छाती ठोककर कह सकते थे कि 'जब तक शत्रु अिस परकोटेको तोड़ सकनेवाली तोपें नहीं लाता और जब तक परकोटेको लांघनेके साधन अुसके पास नहीं हैं, तब तक हमें किसीका डर नहीं है'। अुन्हें अनुभवसे मालूम रहता था कि भारीसे भारी तोपोंका बल तोड़ सके अुससे ज्यादा मजबूत हमने अपना परकोटा बनाया है, और अनुभवसे अुन्हें यह भी ज्ञात होता था कि अितनी अूंचाअीको लांघने लायक साधन आसपास किसीके पास हो नहीं सकते। अिसी प्रकार जिसे मनुष्य-जातिके स्वभावका अनुभव है, वह विश्वासपूर्वक अुसके अिस स्वभाव पर आधार रखकर निश्चिन्त रह सकता है कि अगर मैं किसी मनुष्यको न मारनेके व्रतका पालन करता हूं, तो यह संभव ही नहीं कि मुझे मारने आनेकी किसीको अिच्छा हो। किलेवालोंका अंदाज गलत साबित हो सकता है, लेकिन यह अन्दाज कभी गलत हो ही नहीं सकता। यदि अैसा हो तो क्या अहिंसा किले जैसा ही अेक रक्षात्मक बल नहीं हो जाती?

अिस बातके विरुद्ध आप तुरंत आपत्ति अुठायेंगे: "अहिंसाके प्रतिज्ञाधारियोंको हमने बहुत बार मार खाते और दुःख सहन करते देखा है; अुन्होंने अहिंसाकी प्रतिज्ञा ली है, यह खयाल करके हिंसक लोग अुन्हें बचाते नहीं देखे जाते। वे सामना नहीं करते, अिससे तो हिंसक लोगोंकी बन आती है, अुन पर जुल्म करना अुनके लिअे आसान हो जाता है।"

"मैं किसी मनुष्यको मारूंगा नहीं", अिस तरह हमारे कहनेसे ही अत्याचारी कैसे बदल जायगा? भले हम छत पर चढ़कर बोले हों, अखबारोंमें हमने हस्ताक्षर करके घोषणा की हो, तो भी हिंसक लोग अथवा दुनियामें कोअी भी हमारी बात तुरंत तो कभी नहीं मान सकते। हम जब किसीको न मारनेका संकल्प करते हैं, तब अुसका यही अर्थ होता है कि "कुछ भी हो जाय, सारा धन और सम्पत्ति चली जाय, तो भी मैं किसीको नहीं मारूंगा; सुख चला जाय, आराम चला जाय

तो भी नहीं मारूंगा; मेरा सिर चला जाय तो भी मैं किसीको नहीं मारूंगा!" अैसे अैसे कष्ट आ पड़ें तो भी हम अुन्हें सहन कर लें और फिर भी न मारनेकी प्रतिज्ञाको न छोड़ें —— कष्ट सहन करें और वह भी हंसते-हंसते सहन करें, तभी लोगोंको यह विश्वास होगा कि हम सचमुच अिस प्रतिज्ञासे वंधे हुअे हैं। कष्ट सहन करते समय हम रो पड़ें, तव तो लोग हमारी निर्वलताको तुरंत पहचान लेंगे और हमें मारनेमें अुन्हें मजा आयेगा। क्योंकि अुन्हें विश्वास हो जायगा कि काफी वलका प्रयोग करके वे हमें वशीभूत कर सकेंगे।

और जो महा हिंसक होंगे, महा अत्याचारी और अन्यायी होंगे, वे तो तभी माननेको तैयार होंगे जव हम बहुत बड़ी मात्रामें और अेक नहीं परंतु अनेक बार कसौटी पर खरे अुतरेंगे और फिर भी अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहेंगे। वे पहले तो हमें अपने गजसे ही नापेंगे, और यह विलकुल स्वाभाविक है। वे शुरूमें तो यही मान सकते हैं कि हम सिर्फ मुंहसे न मारनेकी बात करते हैं, परंतु अवसर मिल जाय तो मारे बिना नहीं रहेंगे। हमारी सहिष्णुताको भी वे अेक हद तक ढोंग ही मानेंगे अथवा हमारी अेक युक्ति ही समझेंगे। बहुत समय तक तो वे यही मानते रहेंगे कि हम लोगोंकी नजरमें अपनेको अच्छा और अुन्हें वुरा दिखानेकी युक्ति कर रहे हैं।

अितना ही नहीं, हमारे हंसते-हंसते कष्ट सहन करनेसे भी हिंसक लोग हम पर विश्वास रखनेको तैयार नहीं होंगे। वे हमारे जीवनमें हमारी अहिंसाके अधिक स्पष्ट चिह्न ढूंढ़ना चाहेंगे। वे वारीक नजरसे जांच करेंगे कि हमारी अहिंसाकी प्रतिज्ञा हमारे समूचे जीवनमें कहां तक प्रकट हुअी है। हम अूपरसे कुछ भी दावा करते रहें, कुछ भी घोषणा करते रहें, परंतु यदि हमारे मनमें तिरस्कार और अीर्ष्या-द्वेषरूपी हिंसा छिपी होगी, तो हमारी बोलचालमें, हमारे हावभावमें, हमारी आंखोंकी पुतलियोंमें वह प्रकट हुअे विना नहीं रहेगी। सामान्य लोगोंकी अपेक्षा अुनमें यह पहचाननेकी कला बहुत अधिक विकसित होती है। अगर हमारे मनके गहरेसे गहरे कोनेमें भी अुन्हें हिंसाकी गंध आ गअी, तो वे तुरंत सावधान हो जायंगे और यह जान लेंगे कि हमारी अहिंसा केवल धोखा देनेके लिअे है। हमारी कीमत वे यही आंकेंगे कि मौका मिलते ही हम बिल्लीकी तरह नाखून वाहर निकाले बिना नहीं रहेंगे और फिर वे अुसी ढंगसे हमारे साथ व्यवहार करेंगे। अिसमें हम अुनको दोष तो दे ही नहीं सकते। अुनके लिअे यही रवैया स्वाभाविक है। हम अैसी आशा तो रख ही नहीं सकते कि वदलेमें न मारनेवालेको मारनेमें शरम अनुभव करनेवाला मनुष्य-स्वभाव हमारे संबंधमें अुन पर काम करेगा।

हमारी अहिंसाकी प्रतिज्ञा सच्चे अन्तःकरणकी होगी, तव तो अुसे हमारे प्रत्येक शब्दमें, हमारे प्रत्येक कृत्यमें, प्रेम और सेवाके स्पष्ट रूपमें प्रगट होना चाहिये। जब तक अिस रूपमें अुसके स्पष्ट दर्शन न हों, तब तक हिंसक लोग हमारी अहिंसा पर कैसे विश्वास करें? वे अपनी सलामतीके लिअे हमें शंकाकी दृष्टिसे क्यों न देखें? वे केवल शंकाकी नजरसे ही हमें नहीं देखेंगे, परंतु हमें वार-बार अुलट-पलट कर, चिढ़ाकर, खिजाकर हमारी सच्ची परीक्षा लेंगे! अिस कड़ी परीक्षामें भी अुन्हें विश्वास हो

जाय कि हमारे मनके किसी कोनेमें भी हिंसाकी अिच्छा नहीं है, अीर्ष्या-द्वेष या तिरस्कार सूक्ष्म रूपमें भी नहीं है; अिस कसौटी पर चढ़ने पर भी हमारे हृदयमें अुनके प्रति प्रेमके सिवा कोअी भाव नहीं होनेके स्पष्ट चिह्न वे देखें; और अिस वातका भी प्रत्यक्ष प्रमाण अुन्हें मिल जाय कि अुनकी तरफसे सताये जाने पर भी मौका पड़ने पर हम अुनकी सेवा करनेमें नहीं चूकते और अुनकी कठिनाअी देखकर हम खुश नहीं होते, तभी अुनके अन्तःकरणमें यह विश्वास जमेगा कि हम सचमुच ही अहिंसाका पालन करनेवाले हैं।

परंतु जिस क्षण अुन लोगोंके अन्तःकरणमें यह विश्वास हुआ कि हम सच्चे अहिंसावादी हैं, अुसी क्षण हमारे प्रति हिंसा करनेका अुनका अुत्साह न जाने कहां अुड़ जाता है। अुनके मनमें हमारे लिअे अेक प्रकारकी अूंची राय वन जाती है। अुनका अन्तःकरण अपने साथ हमारी तुलना करने लगता है, "मेरी भुजाओंमें जोर हो, तो मैं अिसकी तरह दुःख सहन करनेको कभी तैयार न होअूं। प्रतिज्ञाको तिलांजलि देकर विरोधीको मारने लगूं। मैं तो चाहूं तो भी अितना दुःख सहन नहीं कर सकता। वेशक, यह आदमी वदलेमें मारने नहीं आता, परंतु अुसमें कष्ट सहन करनेकी शक्ति मुझसे वहुत अधिक है। अुसे अपनेसे निर्वल समझनेमें मैंने भूल की है। वह हथियार नहीं अुठाता, परंतु मुझसे अधिक वलवान है। वह मुझसे ज्यादा वहादुर है। और सवसे वड़ी वात तो यह है कि वह मेरे द्वारा अितना सताये जाने पर भी मेरे प्रति प्रेम रख सकता है। सचमुच वह अिस योग्यतामें भी मुझसे श्रेष्ठ है।"

अिस प्रकार हमारे वारेमें अुनकी राय वदलने पर वे हमारे प्रति पहलेकी तरह हिंसाका व्यवहार कैसे रख सकते हैं?

तो किसीको न मारनेकी प्रतिज्ञाका हम पालन करें और अुसके साथ आनेवाले दुःख हंसते-हंसते सहन करें, तभी हिंसक लोगों पर हमारी अहिंसा-शक्ति अपने-आप वैसा अद्भुत शुभ प्रभाव अुत्पन्न करेगी, जैसा वसंत ऋतु वनके वृक्षों पर करता है,— अर्थात् अुनका हृदय-परिवर्तन कर देगी। हमारे प्रति अुनके हृदयमें सम्मान पैदा होगा, प्रेम पैदा होगा और हमारे प्रति वैर छोड़कर मित्रता रखनेमें ही अुन्हें आनन्द आयेगा।

यह कितनी सम्पूर्ण, शत-प्रतिशत विजय कही जायगी? कोअी भी हिंसक युद्ध अितनी सम्पूर्ण विजय कभी प्राप्त कर ही नहीं सकता।

अहिंसाके अिस अलौकिक वलको सत्याग्रहके वलके साथ मिला दें, तो अिन दो शुभ वलोंका मिश्रण अितना शक्तिशाली वन सकता है कि अुसके द्वारा हम अपनी तमाम लड़ाअियां लड़ सकते हैं और जीत सकते हैं।

प्रवचन ७०

असिसे स्वराज्य मिलेगा ?

असि बलका परिचय व्यक्तिगत और कौटुम्बिक जीवनमें तो थोड़ा-बहुत सबको होता ही रहता है। असि बलसे पत्नियां अपने पतियोंको, बच्चे अपने मां-बापको, और शिष्य अपने गुरुओंको जीतते हैं। असैसे अुदाहरण सब कोअी याद कर सकेंगे। मनुष्य सत्य-अहिंसाको जीवनमें विकसित करनेमें शिथिल रहते हैं, असिलिअे असैसे अुदाहरण बड़ी संख्यामें तो नहीं मिलते। परंतु अुनका सर्वथा अभाव भी नहीं होता।

असिसे जरा बड़े क्षेत्रमें देखें, तो जाति जैसी संस्थाओंमें भी कभी-कभी वे देखनेको मिलते हैं। जब कोअी आदमी जाति-बहिष्कारकी असुविधायें और मानहानि सहन करनेको तैयार हो जाता है और अुसका आधार सत्य तथा अहिंसा पर होता है, तब अन्तमें जातिके समर्थ पंच भी नरम पड़ जाते हैं।

राजाओंके जुल्मोंके विरुद्ध भी यह हथियार बहुत बार आजमाया गया है। सत्य-निष्ठ पुरुष अपने पास कोअी सत्ता न होने पर भी केवल अपने सत्यके प्रभावसे गलत रास्ते जानेवाले राजाओंको अुलाहना देते थे और रोकते थे। असैसा हमारे देशमें हमेशा होता रहा है। आज भी देशीराज्योंमें असिका सर्वथा अभाव नहीं हो गया है। गांववाले राजाके दुराचार या अन्यायके विरोधमें गांव खाली करके चले गये हैं और बादमें राजा पछता कर लोगोंको मना लाये हैं, असिके अुदाहरण भी अितिहासमें और आजके रज-वाड़ोंमें ढूंढ़ने पर मिल सकेंगे।

परंतु अेक शंका अुत्पन्न होती है—असैसी सब घटनाओंका सम्बन्ध व्यक्तियोंके साथ होता है। और अुनके बीच खूनकी या प्रेमकी कोअी गांठ भी होती है। रजवाड़ोंमें भी, जहां राजाका व्यक्तिगत राज्य होता है, अुसके और प्रजाके बीच अेक प्रकारका कौटुम्बिक प्रेमसे मिलता-जुलता प्रेम-संबंध होता है। असैसी परिस्थितिमें सच्ची बात पर डटे रहकर अहिंसक रीतिसे कष्ट, अन्याय आदि सहन कर सकें, तो व्यक्तिके हृदयको हिला सकना असम्भव नहीं, यह तो समझमें आता है। परंतु स्वराज्यकी लड़ाअीमें सत्य या अहिंसा काम दे सकती है, यह संभव नहीं लगता। अेक कारण तो यह है कि अंग्रेज शासक विदेशी हैं, असिलिअे अुनके साथ हमारा कोअी प्रेम-संबंध नहीं है। अुनका स्वभाव भी असैसा है कि वे हमारे साथ असैसा संबंध कायम करनेके लिअे तुरन्त तैयार ही नहीं होते। असिके सिवा, अुनका राज्य किसी अेक मनुष्यके द्वारा नहीं चलता कि अुसके हृदय पर हम असर पहुंचाने जायें। वह तो हजारों हाथों और हजारों सिरोंसे काम लेनेवाली अेक जड़ यंत्र जैसी नौकरशाही है।

परंतु नौकरशाही हो या और कोअी शाही हो—आखिर तो वह मनुष्योंकी ही बनी होती है न? और अंग्रेज कितने ही विदेशी क्यों न हों, परंतु वे सत्य-अहिंसाके प्रभावसे परे राक्षस नहीं बल्कि मनुष्य ही हैं।

दूसरी शंका यह होती है कि हम खुद सत्य और अहिंसाका संपूर्ण पालन करनेकी शक्ति कहां रखते हैं? अेक वातमें अुनका पालन करने लगते हैं, तो दूसरीमें अुनका भंग हो जाता है; और अेक आदमी अुनका पालन करता है, तो सौ आदमी अुनका भंग कर देते हैं। अैसे हम लोग स्वराज्य जीतने लायक वल अपने सत्य और अहिंसामें से कैसे और कव पैदा कर सकेंगे?

सत्य और अहिंसाका अितना संपूर्ण पालन हम करेंगे, तव तो भव-वंधनसे मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। पराये राज्यके वंधन तोड़नेके लिअे आवश्यक वल पैदा हो, अितना सत्य-अहिंसाका पालन करना हमारे लिअे ज्यादा मुश्किल नहीं है। "स्वराज्यकी लड़ाअीकी हद तक तो सत्यको हम जरा भी नहीं छोड़ेंगे, हिंसाका मार्ग कभी नहीं अपनायेंगे, जो भी संकट आ पड़ेगा अुसे आनन्दसे सहन करेंगे" — अितना मर्यादित वल दिखाना हमारे लिअे जरा भी असंभव नहीं, और वह हमारा वंधन-मुक्तिका कार्य सिद्ध करनेके लिअे पर्याप्त सिद्ध हो सकता है। हमारे देशकी करोड़ों मूक जनता अितना वल दिखा सके, तव तक हमें अितजार करनेकी भी जरूरत नहीं है। हम सेवक काफी संख्यामें तैयार हो जायं, तो भी जनताकी लड़ाअी लड़ सकेंगे।

यह वात अव केवल अनुमानकी नहीं रही, परन्तु अनुभवकी हो गअी है। हमारे सेनापतियोंने सत्य-अहिंसाके गोला-वारूदसे लड़नेके अनेक व्यूह खोज निकाले हैं और अुनकी हमें तालीम दी है। अुनके नेतृत्वमें हम महान स्वराज्य-संग्रामकी अनेक लड़ाअियोंके प्रयोग अव तक कर चुके हैं।

हमने अहिंसक सत्याग्रहों द्वारा सरकारको झुकाकर स्थानीय अन्याय दूर कराये हैं। हमने अन्यायी और अपमानजनक कानूनोंका सविनय भंग करके अुन कानूनों और अुन्हें वनानेवाली सरकारका तेज हरण किया है। असहयोग करके हम सरकारके तंत्रको काफी ढीला कर सके हैं। जव हमने अपने निःशस्त्र युद्ध व्यक्तिगत रूपमें लड़े हैं, तव सरकारको वड़ी परेशानीमें डाला है; कानूनोंका विरोध अुससे सहा नहीं जाता और सामने वार करनेमें अुसे शरम लगती है। हमने जव सामूहिक रूपमें अैसे युद्ध किये हैं, तव सरकारको, अुसका विशाल सैनिक वल होते हुअे भी, हमने ठंडा पड़ते देखा है। अैसे समय वह अिस मौकेकी ताकमें रहती है कि हममें से कोअी मोहमें पड़कर सत्य और अहिंसाका रास्ता चूके; और जव अैसा हो जाता है तो अुसकी वन आती है। क्योंकि तभी तो निःशस्त्र लोगोंके विरुद्ध अपनी सेनाका अुपयोग करनेके लिअे वह अपने मनको मना सकती है न? अिस नये वलसे हम स्वराज्य हासिल नहीं कर सके हैं, परन्तु अुसका स्वाद हमारी जीभको लग गया है। हमें अैसा विश्वास होने लगा है कि यह वल पूरी मात्रामें पैदा कर लेने पर हम जरूर स्वराज्य हासिल करेंगे।

स्वराज्यकी लड़ाअीका नाम सुनते ही आनंदके मारे आपके रोअें खड़े हो जाते हैं। आपको शौर्य चढ़ जाता है। आप अपने मनमें निश्चय करते हैं कि वस लड़ाअी करनी ही है, सेनापतियोंने आवाज लगाअी कि अुनके सिपाही वन जाना है। और

अुसके नशे ही नशेमें आप स्वराज्यके सपने देखने लगते हैं: "बस, अब गुलामीका कलंक मिटा देंगे। अंग्रेजोंको भारतसे विदा कर देंगे। अुनके दम घोंटनेवाले बंधनसे देश-शरीरको मुक्त करेंगे। देशकी लगाम हमारे अपने चुने हुअे नेताओंके हाथमें देंगे। सेना, पुलिस और तमाम अधिकारी हमारा हुक्म मानेंगे। विधान-सभाओंमें अैसे कानून बनायेंगे जिनसे लोग थोड़े ही समयमें दारिद्र्यसे मुक्त हो जायं, कोअी अपढ़ नहीं रहे, सब लोग हथियार रखने लगें, देश-विदेशमें भारतके लोगों और नेताओंका असर पड़ने लगे। . . ."

परंतु सावधान! सपनोंमें बहुत ज्यादा बह जाना अच्छा नहीं। सच्चे सैनिकोंको तरंगी न बनकर अपने शस्त्रोंसे सुसज्जित होनेमें, अपने गोला-बारूदको संभालनेमें अधिक लगे रहना चाहिये। हम तरंगमें आ जायंगे, तो हमारे शस्त्रोंको, जो नये ही प्रकारके हैं, हम भूल जायंगे। मुंहसे आप सत्याग्रह शब्द बोलेंगे, परंतु आपकी कल्पनायें तो आप अखबारोंमें रोज जिनकी बातें पढ़ते हैं वैसी स्थलसेना, जलसेना और वायुसेनामें ही रमती रहेंगी; मानो वैसी सेनायें खड़ी करके आप अंग्रेजोंके साथ युद्ध कर रहे हों, मानो अुस युद्धमें आप अखबारोंमें रोजाना पढ़ी जानेवाली तरह-तरहकी कपट-नीतिका कुशलतासे अुपयोग कर रहे हों, रेडियोकी झूठी बातोंमें भी मानो आप अुन लोगोंसे सवाये हो गये हों -- अिस तरहके सपने देखनेमें आप लग जायेंगे। आप सब चौंककर अैसे गगन-विहारसे जागेंगे तभी आपको पता लगेगा कि अरे! आप तो जमीन पर खड़े हैं; आपके शरीर पर बख्तर नहीं परंतु शुद्ध और सादी खादी है; आप विमानमें अुड़कर लन्दन पर बम नहीं बरसा रहे हैं, परंतु अपने गांवमें अथवा किसी जेलखानेमें बैठकर चरखा चले रहे हैं। आप सैनिक जरूर हैं, परंतु सत्य और अहिंसाके गोला-बारूदसे लड़नेवाले सैनिक हैं। आपके युद्धका प्रकार कोअी अनोखा ही है।

अुसमें सत्य आपका सबसे पहला बल है। आपकी लड़ाअी छोटी और व्यक्तिगत हो या देशव्यापी हो, परंतु वह पूरी तरह सत्यकी, न्यायकी लड़ाअी है। अुसमें आपका हरअेक कदम सत्यके आधार पर, न्यायके आधार पर ही होता है। आपका सत्य अितना प्रकाशमान और स्पष्ट होता है कि सूर्यकी तरह वह कभी छिपा रह ही नहीं सकता। अुसके प्रकाशके सामने असत्य-पक्ष रातके तारोंकी तरह मंद पड़ जाता है। अुसका अपना मन ही अुससे कहने लगता है कि वह झूठा है और सत्य सत्याग्रहीके पक्षमें है। आपकी अपने सत्यके अिस बल पर श्रद्धा जमेगी अथवा अखबारों और रेडियोकी झूठी बातें करके अपनी बातको सच्ची सिद्ध करनेका लालच आपको होगा?

आपका दूसरा बल यह है कि आप अपने सत्यको मरते दम तक भी नहीं छोड़ते। आप सत्याग्रही हैं। प्रतिपक्ष जब आपकी कड़ी कसौटी करेगा, तब आप अपने अिस बलको टिकाये रख सकेंगे न?

आपका तीसरा बल यह है कि आप विरोधी पक्ष पर अुंगली तक नहीं अुठाते। आप संपूर्ण अहिंसाका व्रत लिये हुअे हैं, अिसका अुसे पक्का विश्वास हो गया है। अिस-लिअे आप पर वार करनेके लिअे अुसका मन ही तैयार नहीं होता। परंतु लड़ाअीके

दरमियान छोटे-बड़े अैसे अनेक अवसर आपको जरूर मिलेंगे, जब आप विरोधीको कुछ न कुछ हानि पहुंचा सकते हैं, परेशान कर सकते हैं। अितनी बड़ी हजारों सिरोंवाली सरकारको वह हानि हलकी-सी चिमटी जैसी लगेगी। परंतु आपको शत्रुके अेकाध अंगको, अेकाध मनुष्यको सतानेकी लज्जत जरूर आयेगी। क्या अैसे लालचको रोककर आप अपने अिस अहिंसा-बलको टिका सकेंगे ?

आपका चौथा बल यह है कि विरोधी आपको जेल, मार, दंड, घरबार-हरण आदि दुःख देकर अुकसाता है, फिर भी आप हंसते-हंसते सब कुछ सहन करते हैं और अुस पर अुत्तेजित होकर हिंसाका मार्ग नहीं अपनाते; अिसके कारण अुसके दिलमें आपके लिअे आदर पैदा होता है। आपके साथ लड़ना अुसे अपने ही मनमें नीचता मालूम होती है। हंसते-हंसते कष्ट सहन करते रहनेमें, लंबे समय तक लगातार सहते रहनेमें आपकी अच्छी तरह परीक्षा होती है। अिसमें आप कायरता दिखायें तो दुश्मन आप पर जरूर चढ़ बैठेगा और आपके सत्याग्रहको कुचल डालेगा।

आपका पांचवा बल यह है कि विरोधी कितना ही सताये तो भी आप अपने मनकी गहराअीमें भी अुसके लिअे वैरभाव नहीं रखते। आपका प्रेम वह स्पष्ट देख सकता है। अिससे पूरी तरह अुसका हृदय-परिवर्तन हो जाता है। वह अपने मनसे आपका दुश्मन नहीं रहता, आपका हितचिन्तक बन जाता है और आपको स्वराज्यका भोक्ता बनानेमें अपना अहोभाग्य समझने लगता है।

अैसे हैं हमारे बल। अैसा है हमारा सत्य-अहिंसाका गोला-बारूद। अैसा है हमारा अहिंसामय सत्याग्रहका युद्ध। अिसी अर्थमें हमारे सेनापति सत्य और अहिंसाके सिद्धान्त हमारे सामने रखते हैं। अुन्हें आप कमरेमें बन्द होकर, आंखें बन्द करके जपनेके साधु-संतोंके मंत्र न समझियें। वे तो हमारा शक्तिशाली गोला-बारूद हैं। हमारी यह श्रद्धा है कि अिससे हम अपना स्वराज्यका युद्ध जीत सकते हैं, और अुसे जीतनेकी हमारी दृढ़ प्रतिज्ञा है। हमारी तो यह भी महत्त्वाकांक्षा है कि सारी दुनियाकी सब दलित प्रजायें भी हमारा युद्ध देखकर अहिंसामय सत्याग्रहके युद्धकी अलौकिक कला सीख लें।

प्रवचन ७१

हम क्यों जीतते और क्यों हारते हैं ?

सत्य और अहिंसा केवल साधु-संन्यासियोंके मंत्र नहीं, परंतु स्वराज्यके युद्धमें अिस्तेमाल करनेका तेज गोला-बारूद हैं, यह विचार हम कर चुके। आजसे पहले जब जब भी हमने अुनका प्रयोग किया, तब तब हमने देखा कि हम लगभग स्वराज्यके निकट जा सके हैं; परन्तु अन्तमें हमारा बल हमेशा कम हो गया है, कच्चा साबित हुआ है। अैसा क्यों होता रहता है? हममें से कुछका मन तो अिस प्रकार बार-बार पीछे हटनेके प्रसंगोंसे विचलित हो जाता है। बहुतसे यह कहकर हट गये हैं कि यह मार्ग स्वराज्यकी लड़ाअीके लिअे अुपयोगी नहीं है। हम गहरे पैठकर अिसके कारण नहीं ढूंढ़ेंगे, तो देर-सवेर हमारा भी यही हाल होनेवाला है।

मूल कारण यही है कि जिस बलसे हमें लड़ना है, अुसका संग्रह पूरी मात्रामें करनेकी हम कुछ भी योजना नहीं बनाते। हमारे हृदयमें स्वाभाविक रूपमें ही जो थोड़ा-बहुत सत्य-अहिंसाका मसाला अीश्वरने रख दिया है, अुसी पर आज तक हमारा व्यापार चला है।

अत्यंत थोड़ी पूंजीसे भी हम कअी बार विजयके नजदीक पहुंच गये हैं, अिससे कभी कभी खुद हमीको आश्चर्य होता है। हमारी ताकतको देखते हुअे हमें कभी-कभी आशातीत सफलताअें मिल गअी हैं। अुस समय हमारे मन अुसका अिस तरह स्पष्टीकरण कर लेते मालूम होते हैं कि हम अपने बलसे नहीं जीते हैं; सिर्फ हमारे शोरगुल और प्रचारसे सरकारके घबरा जानेसे ही हमारी जीत हुअी है।

हमारा मन अैसा मानने लगे, अिसके जैसी भयंकर बात हमारे लिअे और कोअी नहीं हो सकती। अिससे तो हम अीश्वरने हमारे अन्दर जो थोड़ा-बहुत सत्य-अहिंसाका प्रेम रख दिया है, अुसे भी खो बैठते हैं; और शोरगुल, अखबारोंकी अतिशयोक्तियों, झूठी बातों और अैसी दूसरी थोथी चीजों पर हमारा विश्वास जम जाता है। हम लड़ाअियोंमें अपनी स्वाभाविक निर्बलताके वश होकर छोटी-छोटी बातोंमें झूठ बोलते हैं, झूठे नाम देते हैं, माल-असबाब छिपाते हैं, छिपे रूपमें घूमते हैं और अचानक अपने कार्य-क्रमोंके छापे मारकर पुलिसवालोंको छकाते हैं तथा अधिकारियों और विरोधियोंका कहीं कहीं तगड़ा बहिष्कार करके अुनसे तोबा बुलवाते हैं — और अिन सबके प्रतापसे ही हमारी जीत होती है, अैसा भ्रम हमारी बुद्धिमें पैठ जाता है। अिस रास्तेमें हममें से कुछ लोग छोटे-छोटे व्यक्तिगत पराक्रम करते हैं और अनेक कष्ट अुठाते हैं, अुसके नशेमें अिस रास्तेमें कुदरती तौर पर हमारी दिलचस्पी बढ़ती है; और अिस बार अिस रास्तेमें हमारी जो जो खामियां रह गअीं अुन्हें आगेकी लड़ाअीमें न रहने दिया जाय, भविष्यमें पूरी होशियारीसे काम किया जाय, अनेक नअी नअी युक्तियां भी अुसमें शामिल की जायं — अिस तरहकी योजनायें हम अपने दिमागमें गढ़ने लगते हैं।

यह न तो सत्याग्रह है और न अहिंसा है। ये तो सैनिक युद्धोंके प्रकार हैं। अिनमें हमें मजा आता है, परंतु युद्धकौशल तो आजकल अितना आगे बढ़ गया है कि हमारे ये प्रकार अुसके दारुण व्यूहोंके सामने छोटे बालकोंके खेल जैसे लगते हैं। अिसके अलावा, कअी बार तो हम यह मान कर चलते हैं कि हमने अिस तरह जो कुछ किया वही अहिंसात्मक सत्याग्रह है। हम यह समझकर चलने लगते हैं कि हमारे सेनापति भीतरसे अैसा ही करनेको हमसे कहते हैं। लड़ाअीमें थोड़ी-बहुत जीत हो जाय, तब तो अुसके नशेमें अैसी भ्रमित मान्यता हमारे मनमें अच्छी तरह जम जाती है। हमने अपने सेनापतियोंको अभी तक अितना भी नहीं पहचाना कि यदि वे सचमुच सैनिक ढंगके युद्धमें विश्वास रखते, तो वे अितने समर्थ हैं कि अुस दिशामें हमें कोसों आगे ले गये होते, हमें छोटे बच्चोंके खेल न खेलाते रहते।

असलमें हमारी लड़ाअियोंमें जब हम जीतके नजदीक पहुंचते हैं, तब अुसका कारण हमारी यह होशियारी नहीं होती, अुसके कुछ और ही कारण होते हैं।

पहला कारण तो यह होता है कि हमारी लड़ाअियोंकी जड़में सत्य है। अंग्रेज हमें अितने खुल्लमखुल्ला कुचलते हैं और चूसते हैं कि अुनके पंजेसे छूटनेका हमारा प्रयत्न हमारे सच्चे और असंदिग्ध हककी बात है। हमारा यह सत्य अितना ज्वलन्त और स्पष्ट है कि अंग्रेज अुसके सामने नीचा देखने लगे हैं। वे कितना ही जोर क्यों न दिखायें तो भी अुनके मनको यह खयाल अपराधी और निस्तेज बनाये बिना नहीं रह सकता कि वे स्वयं असत्य पक्षमें हैं और हम सत्य पक्षमें है।

और यद्यपि हम सैनिक-गण और देशकी जनता लड़ाअीकी अनेक बातोंमें सत्यनिष्ठाकी बहुत कचाअी दिखाते हैं, परन्तु सौभाग्यसे हमारे सेनापतियोंकी सत्यनिष्ठा अितनी देदीप्यमान है कि हमारी छोटी-मोटी कचाअीसे हमारा काम बिलकुल नष्ट नहीं होता। फिर भी हम आंखें खोलकर देखेंगे तो मालूम होगा कि सत्याग्रहीके नाते हमारी प्रतिष्ठामें अुससे धक्का लगा है, सत्यनिष्ठाकी वह कचाअी सेनापतियोंके पैरोंमें पत्थर बांधने जैसी सिद्ध हुअी है।

हम अपने सत्याग्रहके खातिर काफी दुःख जरूर सहन करते हैं, फिर भी हमारे अपने हिसाबसे — हम जो परिणाम चाहते हैं अुसके हिसाबसे — वे काफी नहीं हैं। अिसमें भी हमारे सेनापतियोंके त्याग और कष्ट-सहनकी मात्रा अितनी बड़ी है कि हमारी निर्बलता अुससे ढंक जाती है और अंग्रेजोंके चित्त पर अुसका असर होता है। अंग्रेजोंको अपने हिसाबसे हम जो थोड़ा-बहुत कष्ट सहन करते हैं वह भी बड़ी बात लगती है, क्योंकि वे जानते हैं कि बदलेमें जवाब दिये बिना अपने सत्याग्रहके लिअे वे स्वयं कष्ट सहन करनेको तैयार नहीं हैं। अिसकी अुन्हें परम्परासे कभी शिक्षा नहीं मिली।

हमारा अहिंसा-बल पूरी तरह कारगर सिद्ध हो, अिसके लिअे हमारे मनमें भी हिंसा नहीं होनी चाहिये, वैरका लेश भी नहीं होना चाहिये। तो ही हम अंग्रेजोंका हृदय-परिवर्तन होनेकी आशा रख सकते हैं। यह चीज तो हममें लगभग शून्यवत् ही है। सेनापतियोंने अपने भीतर अिसका बहुत अच्छी मात्रामें विकास किया है और अुसका

प्रत्यक्ष प्रमाण भी अनेक अवसरों पर दिया है। परंतु हम सबके भीतर छिपी हुअी हिंसा-वृत्ति अुनके अहिंसा-बलको बहा ले जाती है और हृदय-परिवर्तनका फल हमें देखनेको नहीं मिलता। अथवा मिलता भी है तो वह फल बिलकुल मुरझाया हुआ, रस-हीन और सड़ा हुआ ही होता है। हम खास प्रयत्न करके अपने सत्य और अहिंसाके गोला-बारूदके संग्रहको बढ़ायेंगे नहीं और केवल अीश्वरकी दी हुअी पूंजीसे ही काम चलाते रहेंगे, तो अिससे अधिक फल कभी नहीं मिलेगा। अधिक मिलनेकी आशा रखनेका हमें अधिकार नहीं होगा। हम सदा विजयके किनारे पहुंचकर वापस धकेल दिये जायंगे। अितना ही नहीं, संग्रह बढ़ायेंगे नहीं, तो जितनी पूंजी हमारे पास है अुसे तेजीसे खो बैठेंगे। हमारी कमजोरी कहां कहां है, यह चतुर सरकार दिनोंदिन अधिक जानने लगी है और अुस परसे अुसने हमारी लड़ाअीको कुचल डालनेके अुपाय ढूंढ़ निकाले हैं; और दूसरे नये अुपाय भी वह ढूंढ़ लेगी।

अिसलिअे यह अत्यंत आवश्यक है कि हम गफलत छोड़कर सावधान हो जायं और यह विचार करने लगें कि हमारा अहिंसाका बल दिनोंदिन कैसे बढ़ सकता है। यह बाहरी शस्त्रों अथवा साधनोंसे अुत्पन्न होनेवाला बल नहीं कि अुसके कारखाने खोले जा सकें। वह तो हमारे अपने हृदयमें अीश्वरका भरा हुआ आत्मबल है। हमने अपनी अश्रद्धासे, आलस्यसे, भीरुतासे, भोग-विलाससे अथवा शास्त्रकारोंकी भाषामें काम, क्रोध, लोभ, मद, मोहसे अुस बलको दबा दिया है। यह सब गंदगी दूर करके हमें अपने आत्मबलको मुक्त करना पड़ेगा, अर्थात् अपना व्यक्तिगत जीवन शुद्ध करके अुसे सत्य और अहिंसाके मार्ग पर चलाना होगा।

आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

बारहवां विभाग

आश्रमी शिक्षाका अभ्यासक्रम
[अेकादश व्रत]

प्रवचन ७२

आत्म-रचनाकी बुनियाद

[सत्य-अहिंसा]

कल हम स्वराज्यकी लड़ाओीकी बात परसे कामक्रोधादिको जीतकर आत्मबल जगानेकी बात पर चले गये। अैसी भाषा सुनकर लोग चौंकते हैं। वे कह अुठते हैं: "हम तो स्वराज्यके सैनिक हैं। हम कोअी आत्मशुद्धि करनेके लिअे निकले हुअे साधु-सन्त नहीं हैं। हमारा व्यक्तिगत जीवन कैसा भी हो, अुसका स्वराज्यकी लड़ाओीके साथ क्या संबंध? अुस लड़ाओीके लिअे तो हम हर समय तैयार हैं। अुसमें हम बड़ेसे बड़ा त्याग और कुर्बानी करनेके लिअे तैयार हैं। अुस लड़ाओीके लिअे जितना सत्य-अहिंसाका पालन करना पड़ेगा अुतना हम करेंगे। अिससे अधिककी हमसे आशा नहीं रखनी चाहिये।"

परंतु अहिंसात्मक सत्याग्रहके मार्ग पर चलकर ही स्वराज्यका युद्ध करना स्वीकार करनेके बाद और अुस युद्धके सेनापतियोंके मातहत सत्याग्रही सैनिकोंके रूपमें भरती होनेके बाद हम अिस तरह आसानीसे छटक नहीं सकते। यदि हमारा युद्ध जीतनेके लिअे सत्य और अहिंसाकी शक्ति जनतामें खूब बढ़ाना आवश्यक हो और जनतामें अुसे बढ़ानेके लिअे हम सैनिकोंको अपने निजी जीवनमें सत्य और अहिंसाको ओतप्रोत करना जरूरी हो, तो यह कहकर हम अपने फर्जसे हट नहीं सकते कि 'यह तो आत्मशुद्धिकी बात है, साधु-संन्यासियोंकी बात है।'

यह तो स्पष्ट ही है कि यदि अहिंसामय सत्याग्रहमें हम सत्यका पालन न करें, तो अुसमें लड़ाओीका बल नहीं आ सकता। भले लड़ाओीके जितना ही सही, परन्तु अुतने सत्यकी रक्षा करना तो हमारा कर्तव्य है ही।

परंतु लड़ाओीके लिअे आवश्यक सत्यकी रक्षा करना भी क्या प्रयत्नके बिना हो सकता है? हमारा आज तकका अनुभव क्या कहता है? सेनापति निरन्तर जाग्रत रहकर रात-दिन लड़ाओी पर नजर रखें और हम जरा भी विचलित हों कि तुरन्त हमें जाग्रत करें, तो ही हम सत्य पर टिक सकते हैं। जीवनकी छोटी और तुच्छ बातोंमें सत्यका आग्रह रखनेकी — असत्यसे सर्वथा बचनेका आग्रह रखनेकी — आदत न होनेसे हम बड़ी बातोंमें असत्याचरण करनेका लालच रोक नहीं सकते। दो पैसेके तुच्छ फायदेके लिअे हमें नौकरके साथ झूठसे काम लेने या ग्राहकको धोखा देनेमें आपत्ति न होती हो, या छोटी-छोटी तकलीफोंसे बचनेके लिअे हमें घरके स्त्री-बच्चोंके साथ झूठ बोलनेमें संकोच न होता हो, तो स्वराज्य जैसी बड़ी बातमें हमें झूठसे काम लेनेमें हिचकिचाहट क्यों होगी? अुसमें तो असत्याचरण करनेका मोह अधिक प्रबल होगा। ज़रा झूठ बोलनेसे यदि लड़ाओीमें वेग आनेकी संभावना दिखाओी दे, सरकारको परेशानीमें

डालकर हमारे जीत जानेकी संभावना मालूम हो, तो वह मोह हम कैसे छोड़ सकेंगे? सरकारने लोगोंके कुछ प्रिय और आदरणीय नेताओंको मरवा दिया है, यह झूठी वात अुड़ानेसे लोग वहुत अुत्तेजित हो जायेंगे और लड़ाअीमें वड़ी संख्यामें शरीक होंगे — अैसा लोभ क्या हमें नहीं होगा? दूर दूरके दूसरे प्रान्तोंमें जोरोंसे लड़ाअी चलनेके झूठे वयान प्रकाशित करके अपने यहांके लोगोंमें लड़ाअीमें शामिल होनेका अुत्साह वढ़ानेका मोह क्या हमें नहीं होगा? अितना ही नहीं, सत्यके संवंधमें समझौता करने लग जाने पर, स्वयं लड़ाअीमें शामिल रहते हुअे भी, हमें अपना माल-असवाव वचानेके लिअे कैसी भी झूठी कार्रवाअी करनेमें वाधा क्यों होगी? दो पैसोंके लाभके लिअे या छोटी-सी असुविधासे वचनेके लिअे जिसे झूठा आचरण करनेकी आदत हो, वह अिस सार्वजनिक हितके वारेमें झूठ वोलनेका लालच छोड़ ही नहीं सकता। अैसे समय हमारा मन हमें यही सलाह देगा कि देशकी लड़ाअी जीतनेका मौका हो अुस समय सत्य-असत्यकी पूंछ पकड़े रखना निरी मूर्खता होगी।

फिर हम अपनी छोटी वुद्धिसे यह भी हिसाव लगा लेते हैं कि हमारा झूठ प्रकाशमें कहां आनेवाला है? लोगों और सरकार दोनोंकी नजरमें हम सत्यनिष्ठ ही रहेंगे। अिसलिअे अुन पर तो हमारे सत्यका जो असर पड़नेवाला होगा वह पड़ेगा ही।

अिससे अधिक धोखा देनेवाला हिसाव शायद ही दूसरा कोअी होगा। सत्य तो अेक स्वयं-प्रकाशित—सूर्यसे मिलती-जुलती वस्तु है। वह अकल्पित रूपमें प्रकट हो ही जाता है। अुसके पूरी तरह प्रकट होनेसे पहले हमारी आंखोंमें, हमारी आवाजमें, हमारी प्रत्येक क्रियामें अुसकी झलक आये विना नहीं रहती। झूठसे लोग अुत्तेजित होकर लड़ाअीमें शरीक होनेके वजाय हमारे प्रति विश्वास खो वैठते हैं और जिस लड़ाअीमें हमारे जैसे झूठे सिपाही हों अुसमें कभी न शामिल होनेका निश्चय कर लेते हैं। सरकार भी लंवे समय तक धोखा नहीं खायेगी। अितना ही नहीं, घरके छोटे वच्चोंसे भी हमारा झूठ वहुत समय तक छिपा नहीं रह सकता। हमारी आंखोंके कोने देखकर वे पहचान लेते हैं। तो चतुर सरकारसे यह कैसे छिपा रह सकता है? वह जान लेती है कि हम जेलमें जानेके लिअे तो तैयार हैं, परंतु घरवार खोकर जंगल-जंगल भटकनेको तैयार नहीं हैं। और वह तुरंत हमारी अिस दुर्वलता पर प्रहार करके हमें और हमारी लड़ाअीको कुचल देती है।

हम याद करेंगे तो देख सकेंगे कि हमारे खानगी जीवनमें सत्यके आग्रहका आन्तरिक शौक वढ़ा हुआ न होनेके कारण अपनी सार्वजनिक लड़ाअियोंमें हम सत्यका आग्रह नहीं रख सके; और सत्याग्रहकी लड़ाअीमें से यदि सत्य अुड़ गया तो अुसका सच्चा वल ही अुड़ गया। अिसलिअे आपको यह साधु-फकीरोंकी तरह हंसनेकी वात लगे या किसी वड़े राजनीतिक मुत्सद्दीकी तरह प्रतिष्ठाकी वात लगे — परंतु यदि आपको सत्याग्रह-युद्धके सैनिक वनना हो, तो छोटी-छोटी व्यक्तिगत वातोंमें सत्यका आग्रह रखनेकी आदत डालनी ही पड़ेगी। आदत ही नहीं, अुसका शौक भी वढ़ाना होगा। अर्थात् सत्य-पालनके खातिर जव आप कुछ न कुछ तकलीफ अुठायें, तव आपको अेक प्रकारका

आन्तरिक आनन्द हो, जिस हद तक अुस शौकको ले जाना पड़ेगा। सत्याग्रह-युद्धके सैनिककी योग्यता प्राप्त करनेके लिअे यह आपकी तालीम है — कवायद है। अुसमें माफी मिल ही नहीं सकती।

अहिंसाकी आपकी शक्ति भी अिसी तरह छोटी-छोटी व्यक्तिगत बातोंमें अुसका पालन करके आपको विकसित करनी होगी, ताकि स्वराज्यके लिअे किये जानेवाले सत्याग्रहोंमें वह हमें धोखा न दे। अपने अहिंसाके पालनसे हमें सरकारी तंत्र चलानेवाले लोगोंके अन्तःकरणोंमें परिवर्तन कर डालना है। परन्तु क्या हमने अपने संबंधियों, अपने मित्रों, अपने पड़ोसियों, अपने धंधेके साथियों, अपने गुरुभाअियों, अपने ग्राम-बंधुओं आदि पर अिसके प्रयोग किये हैं?

अुनके प्रति हमारा स्वाभाविक प्रेम और सहानुभूति होनेके कारण अुनके प्रति सूक्ष्मसे सूक्ष्म अहिंसाका पालन करना हमारे लिअे आसान होता है। अुनके लिअे असुविधाअें और दुःख सहन करना भी हमारे लिअे अपेक्षाकृत बहुत आसान होता है। लेकिन अुनके संबंधमें भी अहिंसाका प्रयोग करनेमें हम कहां विश्वास करते हैं? अुस समय हम कैसा व्यवहार करते हैं? हठ करनेवाले बच्चोंको, स्त्रीको या विद्यार्थियोंको मारने, डांटने या अुनका तिरस्कार करने और अुन्हें अपमानित करनेमें हम हिंसाका अुपयोग छूटसे करते हैं। अैसा करनेकी हमने आदत ही डाल ली है। बात-बातमें अिस तरह हिंसाका व्यवहार करनेवाले हम सत्याग्रहके समय अपने विरोधियोंके प्रति और अपने कार्यमें बाधक होनेवालोंके प्रति अहिंसाकी वाणी और अहिंसाका व्यवहार रखनेकी आशा कैसे कर सकते हैं?

यदि अूपर कहे अनुसार हम मारपीट नहीं करते, तो कायर बनकर अुनकी हठ चलने देते हैं। बीचमें पड़ेंगे तो तकरार होगी, अनबन हो जायगी, वे नाराज होंगे, अुनकी ओरसे मिलनेवाली सुख-सुविधामें बाधा आयेगी, गांवमें हमें बुरा कहा जायगा — अैसे-अैसे विचारोंसे हम कायर बन जाते हैं। अैसी कायरतासे कितने मां-बाप अपने बच्चोंको दृढ़तापूर्वक शिक्षा न देकर अुनके जीवनको पतवारहीन नाव जैसा बना डालते हैं? विद्यार्थियोंमें अप्रिय हो जानेके डरसे कितने शिक्षक अुनका दृढ़तापूर्वक पथ-प्रदर्शन करनेके कर्तव्यसे चूकते हैं?

हम नौजवान हों अथवा विद्यार्थी हों, तो हम बुजुर्गों और गुरुजनोंके साथ कैसा बरताव करते हैं? हमें देशभक्ति जैसी प्रेरक भावनाओंका अिस अुम्रमें आकर्षण होता है और बड़े-बूढ़े हमें लकीरके फकीर ही बने रहनेको दबाते हैं, यह अनुभव तो प्रत्येक युवकको होता ही है। अधिकांश युवक अुस समय अपनेको रोकनेवाले बुजुर्गोंसे झगड़ा करते हैं, परन्तु वह झगड़ा अहिंसाका नहीं होता। वे अुन्हें न कहने लायक वचन कहने लगते हैं, अुनका अपमान करते हैं; वे लाठी लेकर केवल अुन्हें मारते ही नहीं, बाकी तो हर तरहकी हिंसा करते हैं। अुनका हिंसाका अुबाल देखकर घड़ीभर तो सबको चिन्ता हो जाती है कि पता नहीं वे क्यासे क्या कर डालेंगे। परंतु ज्यादातर अुनका हिंसाका अुबाल दूधके अुफानसे भी जल्दी शान्त हो जाता है। फिर मां-बापको या

शिक्षकोंको अुनकी जरा भी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं रह जाती। वे चाहें अुससे भी नीची सतह पर जाकर अुनके नौजवान लड़के-लड़की या विद्यार्थी बैठ जाते हैं।

सचमुच युवक लोग मां-बापके आग्रहके वश होकर अपना आदर्श-प्रेम जितनी जल्दी छोड़ देते हैं और स्कूल-कॉलेजोंमें सयानी अुम्रके विद्यार्थी तक अपनेको मिलनेवाली छोटी-बड़ी सजायें जितने हलके मनसे, जरा भी मान-भंगका अनुभव किये बिना तुरंत नीची गर्दन करके सह लेते हैं, अुतनी करुण पराजय दुनियामें शायद ही और किसीकी देखनेमें आती है।

क्या अिसमें अहिंसा होती है? क्या गुरुजनोंके आदर या प्रेमके कारण वे झुक जाते हैं? हरगिज नहीं। अिन्हीं युवकोंने यदि अहिंसक युद्धकी कला सीखी हो, तो वे बड़ोंका अपमान नहीं करेंगे, अुनके हृदय प्रेम और सेवासे पिघला देंगे, परंतु अपनेको लकीरके फकीर बनाये रखनेके अुनके हठके खिलाफ तो डटकर युद्ध करेंगे। विद्यार्थी पाठशालाओंमें अन्यायपूर्ण दण्डके विरुद्ध टक्कर लेंगे। अैसा करनेमें घर या पाठशाला छोड़नी पड़े, निराधार स्थितिमें रहने और पढ़ाअी बिगड़नेका खतरा खड़ा हो जाय, तो भी अुस संकटको आनंद और साहससे वे सहन करेंगे और अपने अिस अहिंसामय कष्ट-सहनसे गुरुजनोंके हृदयोंको अधिक पिघलायेंगे। परंतु अहिंसाके पाठ सीखनेके अैसे प्रसंगोंका जीवनमें कितना कम अुपयोग होता है?

जहां देखिये वहीं अिस प्रकारकी कायरताका साम्राज्य दिखाअी देता है और अुस कायरताकी गिनती अिस गांधीयुगमें अक्सर अहिंसामें करनेको भी हम तैयार हो जाते हैं। परंतु अहिंसा अैसी कोअी फूलोंकी सेज नहीं है। अन्यायपूर्ण और असत्य हठके विरुद्ध युद्ध करना तो मनुष्यके नाते हमारा धर्म ही है। हम स्वाभिमानी मनुष्य हों तो अिस वीरधर्मसे हम कभी भाग ही नहीं सकते।

हठ करनेवालेके हठके विरुद्ध युद्ध करने और फिर भी अुसके साथ मारपीट या अुसका तिरस्कार न करनेमें ही अहिंसाका सच्चा प्रयोग निहित है। लड़का आलसी हो जाता है, अपने हिस्सेका काम नहीं करता। अुसे डांटने-फटकारनेकी अपेक्षा अुसके हिस्सेका बोझ भी हम प्रेमसे अुठा लें तो क्या परिणाम होता है, अिसका प्रयोग कर देखनेका धीरज हमें नहीं रहता। स्त्री बच्चोंको मिठाअियां खिलानेके मोहसे बीमार कर देती है। अुससे लड़ने-झगड़नेकी अपेक्षा हम स्वयं मिठाअियोंका सर्वथा त्याग कर दें, तो अुसके मोह पर कैसा असर पड़ता है, अिसका प्रयोग करनेकी हिम्मत हममें नहीं होती। पहले हमारे देशभक्ति आदिके कामोंमें जो गुरुजन बाधक होते थे, वे ही हम अहिंसाका प्रयोग करें तो हमें कैसे आशीर्वाद देते हैं, स्वयं भी हमारे रंगमें कैसे रंग जाते हैं, यह देखनेका धीरज भी किसमें होता है?

पड़ोसी हमारे आंगनके सामने रोज जूठन फेंकता है या अुसके घरकी नालीके कारण रास्तेमें गंदा कीचड़ हो जाता है, तब अुससे लड़नेका अथवा नगर-पालिकासे अुस पर जुर्माना करानेका हिंसक रास्ता हमें तुरंत सूझता है। परंतु फावड़ा लेकर गंदगी साफ करनेको निकल पड़नेका प्रयोग हमें झट नहीं सूझता। निकल पड़ें तो पड़ोसी दूसरे

ही दिन सीधा हो जायगा, यह आशा तो हम रखते हैं। मगर कीचड़ साफ करते करते अुसके कीचड़से भी अधिक गंदा तानोंका जो कीचड़ हम अुस पर फेंकते हैं, अुसका हम विचार ही नहीं करते।

नौकर कामकी चोरी करता है, यह देखकर हमें या तो अुस पर डांट-डपटकी या लाठीकी मार मारनेकी सूझती है, या अैसा सोचकर अुसकी खुशामद करनेकी बात सूझती है कि कुछ कहने लगेंगे तो जितना काम करता है वह भी नहीं करेगा। परंतु नौकरके साथ हम भी काम करने लग जायं, अुसके सुख-दुःखमें भाग लें, अुसके साथ भाअीचारा कायम करें — अिस तरहके अहिंसाके प्रयोग कर देखनेकी हमें फुरसत नहीं होती। अैसा करनेमें थोड़ी मेहनत होती है, अुससे हम जो अनुचित लाभ अुठाते हैं अुसे छोड़ना पड़ता है, जिसके लिअे हमारी तैयारी नहीं होती।

कोअी आदमी खेतमें से अनाजके भुट्टे चुरा ले जाता है। कोअी ग्वाला हमारे खेतमें गायें चरा लेता है। वह अगर कमजोर और सीधा-सादा दिखाअी दे तो मारपीट करनेका और सरकारसे कैद और जुर्मानेका दंड करानेका हिंसक मार्ग ही हमें सूझता है। और यदि वह गुंडा हो तो डरकर 'तेरी भी चुप और मेरी भी चुप' के अनुसार हम मुंह बंद करके बैठे रहते हैं। अहिंसाका प्रयोग तो अपने सगे-संबंधियोंके साथ भी करनेकी हमें आदत नहीं होती, तो फिर अिनके साथ करना तो सूझ ही कैसे सकता है? परंतु यदि स्वराज्यकी लड़ाअीमें अहिंसाका प्रयोग करनेकी अपेक्षा हो, तो अैसे अवसरों पर भी हमें अहिंसाका प्रयोग करनेका अभ्यास डालना चाहिये। गांवके लोग चोरोंको मारनेके लिअे अुन पर टूट पड़ें तब हमें बीचमें पड़ना चाहिये और अैसा करनेमें चोट आये तो अुसे सहन करना चाहिये; अिसके अलावा चोरके घरकी स्थिति जानना चाहिये और अुसके पास कोअी धंधा न हो तो अुसे धंधेसे लगाना चाहिये। अहिंसामें हम श्रद्धा बढ़ा लें तो अैसे कोअी न कोअी मार्ग हमें सूझ सकते हैं।

अहिंसाके अैसे प्रयोग हमारे व्यक्तिगत जीवनमें करनेका शौक बढ़ाये बिना अुसकी हृदय-परिवर्तन करनेकी चमत्कारी शक्तिमें हमारी श्रद्धा कैसे जम सकती है? और अैसी श्रद्धा जमे बिना स्वराज्यकी लड़ाअीमें अहिंसाका प्रयोग हम सच्चे दिलसे कैसे कर सकते हैं?

अिसका अर्थ यही होता है कि यदि हम अहिंसात्मक सत्याग्रहके सैनिक बननेकी अुम्मीद रखते हों, तो हमें अपना व्यक्तिगत जीवन सत्य और अहिंसाके आधार पर बिताना चाहिये। बात-बातमें झूठ बोलनेकी, छल-कपट करनेकी, अन्यायका आश्रय लेनेकी आदत पर हमें विजय प्राप्त करनी चाहिये। बात-बातमें गालियां देने, अपमान करने, तिरस्कार करने और हाथ अुठानेकी आदत भी हमें छोड़नी चाहिये। छोटे बच्चोंके साथ और गरीब लोगोंके साथ अैसा व्यवहार करनेसे हमारी बुरी आदतें स्वाभाविक-सी बन गअी हैं। अिस स्थितिको हमें अपनी सारी हिंसाकी जड़ समझ कर प्रयत्नपूर्वक सुधार लेना चाहिये। अितनी छोटी-छोटी बातोंमें और अैसे छोटे लोगोंके साथके व्यवहारमें भी सावधानी और प्रेमसे सत्य-अहिंसाका आग्रह रखकर हमें अुन्हें अपने

स्वभावमें गूंथ लेना चाहिये। असत्य और हिंसासे काम लेना हमें कभी सूझे ही नहीं, अिस तरहका आचरण करना हमारे लिअे असंभव हो जाय, हमारा शरीर, हमारी जीभ और हमारा मन अिस प्रकारका आचरण करनेसे अिनकार कर दे, अिस हद तक यह स्वभाव गहरा बन जाना चाहिये।

क्या अैसा करना असंभव है? तिरस्कारसे फेंका हुआ, घूरे पर डाला हुआ अन्न —भले ही वह पकवान हो, भले ही हमारे पेटमें भूख हो—क्या हम लेनेको तैयार होते हैं? क्या हमारी जीभ स्वयं अुस चीजको देखने पर भी रस छोड़नेसे अिनकार नहीं कर देती? शराब, तम्बाखू जैसी चीजोंके बारेमें भी मनुष्यका शरीर अुनकी अुग्र गंधसे ही अुन्हें ग्रहण करनेके खिलाफ विद्रोह करता है। परंतु दरिद्रताके मारे और व्यसनके कारण मनुष्य अपने स्वभावको नीचे गिर जाने देता है, तब अुसकी कैसी स्थिति होती है? भिखारी घूरेको अुलट-पलट कर जूठे टुकड़े बीनकर खाते हैं, स्वाद लेकर खाते हैं और अुनके लिअे अेक-दूसरेके साथ छीनाझपटी भी करते हैं। व्यसनी आदमी दिल जलाने और नालीमें लोटनेकी हद तक भी व्यसनोंका सेवन करते हैं। सत्य-अहिंसाके मामलेमें हमने सचमुच अिसी तरह अपने मूल स्वभावको नीचे गिरा लिया है। हमारे मन और शरीर, जिन्हें मूल स्वभावके अनुसार अैसे आचरणसे घृणा होनी चाहिये, हमारी बुरी आदतोंके कारण अुसमें मजा लेने लगे हैं। अिसलिअे आदतोंको सुधारकर हमें अपने मूल स्वभावको फिरसे जाग्रत करना चाहिये, अपने मानसकी रचना ही अैसी कर लेनी चाहिये कि छोटे बालकको मनानेकी बात हो अथवा स्वराज्यकी समझौता-वार्ता करनी हो, सत्यका भंग करनेके लिअे हमारे तन-मन कभी तैयार ही न हों; छोटे बच्चोंको मारने-पीटनेकी बात हो अथवा स्वतंत्रताका युद्ध हो, अहिंसाका भंग करनेसे हमारे तन और मन सर्वथा अिनकार कर दें। अिस प्रकार अपने स्वभावको बनाकर अपनी सुन्दर आत्म-रचना करनेमें आलस्य करनेसे हम अपने मानवोचित गुणोंको अपने हाथों बिगाड़ लेते हैं और जीवनका सच्चा रस खो बैठते हैं। लेकिन अुपरोक्त ढंगसे आत्म-रचना करके सच्चे मनुष्य बनना हमारा धर्म है।

और जिसे देशसेवा करके सच्चे स्वराज्यकी रचना करनी है, अुसे तो आत्म-रचना कर ही लेनी चाहिये। आत्म-रचनाके बिना स्वराज्य-रचना करने लगेंगे, तो वह बिना औजारके लकड़ी गढ़नेवाले बढ़ीकी-सी बात होगी। जो सैनिक स्वराज्यका संग्राम अहिंसामय सत्याग्रहके व्यूहसे जीतना चाहता है, वह यदि जीवनके बारीकसे बारीक अणु-परमाणुओंमें सत्य और अहिंसाको गूंथ लेनेके बारेमें आलस्य अथवा अश्रद्धा रखे, तो यह काठकी तलवारसे लड़ने जानेकी बात होगी।

परंतु अिस प्रकार आत्म-रचना करना और सत्य-अहिंसाको स्वभावमें गूंथ लेना क्या हमारे जैसे साधारण मनुष्योंके लिअे संभव है? क्या यह बड़े-बड़े साधु-महात्माओंसे ही हो सकनेवाली कठिन वस्तु नहीं है?

प्रवचन ७३

आत्म-रचनाकी अिमारत

सत्य और अहिंसाको जीवनमें ओतप्रोत करके आत्म-रचना करना असंभव नहीं है। अिसके जैसा संभव और सरल कार्य दूसरा कोअी नहीं हो सकता। हमारा जो धर्म हो, स्वभाव हो, वह हमारे लिये कठिन कैसे हो सकता है? क्या हमें कभी यह विचार भी आता है कि आगको तपनेमें और पानीको बहनेमें तकलीफ होती होगी? सत्य और अहिंसा हमारे स्वभाव-धर्म होते हुअे भी हमारी बुरी आदतोंके कारण आज अस्वाभाविक बन गये हैं, अिसीलिअे अति कठिन मालूम होकर वे हमें चौंका देते हैं। परंतु हमारे भीतर सोया हुआ आत्मबल जब तक जाग नहीं अुठता, तभी तक वे कठिन मालूम होते हैं। अिस बलको हम जगा लें तो आत्म-रचना करना बहुत आसान और हमारी शक्तिकी मर्यादाके भीतरका काम हो जाय।

हम कुछ अत्यन्त बुरी आदतें बना बैठे हैं, जिनसे हमारा मूल स्वभाव ही बिलकुल बदल गया है। हमने कुछ अैसे रिवाज डाल लिये हैं, जिनके जालमें अब हमारा मूल स्वभाव फंस गया है। हम कुछ विचित्र विचारोंकी मायासृष्टि रचकर अुसमें अितन रच-पच गये हैं कि हम अपने-आपको पहचानना भूल गये हैं, अपना स्वभाव ही भूल गये हैं और अिस तरहका आचरण कर रहे हैं, मानो मनुष्य न होकर हम कोअी नीची योनिके प्राणी हैं।

क्या आपको अैसा लगता है कि मेरा अिस तरह धर्मशास्त्रोंकी भाषा काममें लेना और स्वराज्यके सैनिकोंके सामने अैसी बातें करना आप पर बड़ा जुल्म है? परंतु धर्मशास्त्रोंसे हम चौंकें किसलिअे? क्या गुलामीमें सड़ना छोड़कर स्वराज्यका सैनिक बननेमें आपने अपने धर्मका पालन नहीं किया? हम प्रतिदिन सैनिक और सेवकके कर्मो पर विचार करते हैं और वह भी सत्याग्रही सैनिक और सेवकके धर्मो पर, अिसलिअे हम मनुष्यके अूंचेसे अूंचे धर्मकी ही बातें करते हैं। और धर्मशास्त्रोंका विषय भी यही है, अिसलिअे वे और हम अेक ही रास्ते पर आ जायं तो अिसमें कोअी आश्चर्य नहीं।

आजसे पहले धर्मबुद्धिवाले संत-महन्त राजनीतिकी बातोंमें बहुत नहीं पड़ते थे। वे अुसे षड्यंत्र, अुपाधि और गंदगी मानकर अुससे दूर रहते थे और भजन-पूजन करते तथा आराधनामें तल्लीन रहते थे। अुस समयके राज्य और सामाजिक विधान आजकी तुलनामें बहुत ही अुदार होते थे। आज २० वीं सदीमें तो मनुष्य-जीवनका अेक भी अंग अैसा नहीं रहा, जिसमें राज्यतंत्र अपने नाखून न घुसेड़ता हो। हम कातकर और बुनकर स्वदेशी-धर्मका पालन करते हैं, तो वह राज्य और कारखानेदारोंकी आंखोंमें खटकता है। गरीब लोगोंसे हम ताड़ी और शराब छुड़वाते हैं, तो भी वे यह मानकर चिढ़ते हैं कि हम अुनकी आमदनी डुबोते हैं। राज्यतंत्र अपनी ताकत बनाये रखनेके लिअे जातियों

और वर्गोंके बीच फूट पैदा करते हैं; अितना ही नहीं, आरामसे पेट भरकर हमारी मेहनतका फल भी हमें खाने नहीं देते। वे अपनी थालियां भरनेके खातिर अिस हद तक लोगोंको चूसते हैं कि अुनकी थालीमें दूधकी अेक बूंद भी रहने नहीं पाती। जिन देशोंमें स्वदेशी राज्यतंत्र होते हैं, वहां भी अमीर लोग हुकूमतको अपने हाथमें रखकर बाकीके लोगोंको बेहाल कर देते हैं, तो हमारे यहां तो विदेशी राज्य है। पेड़में घुसकर और अुसका जीवन-रस पीकर बढ़नेवाली परोपजीवी वनस्पतियोंकी तरह वह हमारे अणु-अणुका जीवन चूस लेता है। आज अिसे खटपटका या षड्यंत्रका विषय मानकर और अुससे अलिप्त रहकर भजन-पूजन करनेकी स्थिति नहीं रही। पुराने जमानेके साधु-संत भी अैसी हालतमें अलिप्त नहीं रह सके होते। अुन्हें भी हमारी ही तरह स्वराज्य-रचनाको अपने भजन-पूजनका साधन बनाना पड़ता।

पुराने साधु-संत राजनीतिक लड़ाअियां नहीं लड़ते थे और हम लड़ते हैं, अिससे यह माननेकी भूल नहीं करना चाहिये कि अिन दोनोंमें कोअी मौलिक भेद है। वे और हम —— दोनों अपने क्षुद्र स्वार्थी जीवनोंसे बाहर निकलकर जिसे हम अपना महान धर्म मानते हैं, अुस पर चलनेवाले लोग हैं। वे भगवे वस्त्र पहनते थे, वनमें जाकर तप करते थे और योग-साधना करते थे। हमारी साधनाका बाह्य रूप दूसरा है। परन्तु धर्मबुद्धिमें हम अेक ही जाति और अेक ही प्रकारके हैं, होना भी चाहिये। अैसा होनेके कारण अुनके धर्मशास्त्रोंकी भाषा और हमारी लड़ाअीकी भाषा अन्तमें अेक रास्ते पर आ जाय, तो अिसमें आश्चर्यकी क्या बात है? हमें धर्म और शास्त्र-वचन पर बहुत अश्रद्धा हो गअी हो, तो अिसका कारण आजकलके झूठे और ढोंगी भिखारी साधु हैं। हमारी बुद्धिमें यह भ्रम घुस गया है कि धर्मका अर्थ है अुनके जैसे लोगोंके आचरण और धर्मशास्त्रका अर्थ है अुनके जैसे लोगोंके लेख। अिसलिअे हमें धार्मिक कहलानेमें लज्जा आती है और कोअी धर्मशास्त्रोंकी भाषा काममें लेता है तो अुससे हम दूर भागते हैं।

परंतु आप यदि स्वराज्य-रचनाके सेवक बनना चाहते हैं और अहिंसात्मक सत्याग्रह-युद्धके सैनिक बननेकी अिच्छा रखते हैं, तो आज मेरे धर्मशास्त्रोंकी भाषा अिस्तेमाल करनेसे आपको अरुचि नहीं होनी चाहिये। आपको आत्म-रचना करके वैसे सैनिक बननेकी अपनी योग्यता बढ़ानी चाहिये। जो लोग अपने जमानेके साथ मेल खानेवाले ढंगसे साधना करके अपनी आत्म-रचना कर चुके हैं, अुनकी सलाह हम क्यों न लें? अुनके आजमाये हुअे अुपाय हम क्यों न स्वीकार करें?

आत्म-रचना करनेके ये अुपाय हैं —— हमारे अेकादश सिद्धान्त। अिसी कारणसे हम प्रतिदिन प्रार्थनाकी गंभीर घड़ीमें अुनका स्मरण कर लेते हैं। जो आत्म-रचना हमें करनी है, जो आत्मबल हमें जुटाना है, अुसमें हमें प्रतिदिन आगे बढ़ानेकी शक्ति अिन सिद्धान्तोंमें है।

अिनमें से सत्य और अहिंसाके पहले दो सिद्धान्तोंके बारेमें हम विचार कर चुके हैं। वे तो हमारे जीवनकी या हमारी लड़ाअीकी बुनियाद ही हैं। सत्य-अहिंसाको

अपना स्वभाव बना लेनेकी, अपने अणु-अणुमें गूंथ लेनेकी ही हम साधना करना चाहते हैं। यही हमारी आत्म-रचना है।

अिसके बादके नौ सिद्धान्त सत्य-अहिंसाको जीवनमें अुतारनेके साधन हैं। हम जो गलत विचार बनाकर अभी तक चले हैं, अुनके अनुसार हम अनेक हानिकारक रिवाज और आदतें बना बैठे हैं। अुन्हें समझकर, अुनमें से निकलकर सही रास्ते पर लगनेके ये सब प्रयत्न हैं। अुनमें अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्यके तीन साधन पुराने धर्म-शास्त्रोंके बताये हुअे हैं। बाकीके छह हमने अपने युगकी त्रुटियों पर विशेष विचार करके निश्चित किये हैं। वे हैं: शरीर-श्रम, अस्वाद, अभय, स्वदेशी, अस्पृश्यता-निवारण और सर्वधर्म-समभाव।

अिन नौ सिद्धान्तोंको जीवनमें अुतारनेका प्रयत्न किये बिना आत्म-रचना होना अर्थात् हमारा सत्य-अहिंसा पर आरूढ़ होना संभव नहीं है। यह कैसे किया जाय, अिसका हम आगे क्रमशः विचार करेंगे।

१. धंधोंमें सिद्धान्त

[अस्तेय]

हम कितने ही अूंचे और सफेदपोश बनकर फिरते हों, तो भी हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि हमारे सारे व्यवहारोंका आधार चोरी पर ही है। कोअी गरीब आदमी रातको अुठकर घरमें सेंध लगाकर धन चुरा ले जाता है अथवा खेतमें से फसल काट ले जाता है, तो अिन छोटी-छोटी चोरियों पर हम खूब क्रोध करते हैं और जब ये लोग पकड़े जाते हैं, तब अुन पर अपना क्रोध अुंड़ेलनेमें हम नहीं चूकते। परंतु जो असली चोरियां हैं, बड़ी चोरियां हैं, अुनके बारेमें मानो हम सबने आपसमें मिलकर यह समझौता कर लिया है कि अुन्हें चोरी न माना जाय — अुन्हें हमारा साधारण व्यवहार ही समझा जाय।

हमारे सब व्यापार-धंधोंकी बुनियाद चोरीके सिवा और क्या है? मामूली चोर तो पकड़ा जाने पर शर्मिन्दा होता है, परन्तु हमने अपनी चोरीको व्यवहारका प्रतिष्ठित सिद्धान्त बना लिया है और अुससे शरमानेकी बात ही नहीं रखी।

धंधोंमें भी जो सादे और शरीर-श्रमके धंधे हैं, अुनमें दूसरोंसे बहुत थोड़ी चोरी है; परंतु जितनी बड़ी अुथल-पुथल, जितने बड़े व्यापार-रोजगार, जितने बड़े कारखाने और जितने बड़े बाजार होते हैं, अुतनी ही चोरीकी मात्रा बढ़ती जाती है। वह सूक्ष्म और घातक बनती जाती है। अुसकी अेक कला ही बन जाती है। अुन धंधोंमें लोगोंके धन और श्रमका अपहरण होता है तथा पृथ्वीके कस और धातुओंका हरण होता है। जिनकी वस्तुकी चोरी होती है अुन्हें पता तक न लगे, अितनी सफाअीसे चोरी की जाती है। और अिस प्रकार धनवान बननेवालोंको समाजमें मान-प्रतिष्ठा देकर हम चोरी पर अपनी सम्मतिकी मुहर लगा देते हैं। क्यों न लगायें? मौका लग जाय तो क्या हम खुद भी चोरीके धंधेमें शामिल होनेके अुम्मीदवार नहीं हैं?

कमाअीके धंधे तो अपार निकल आये हैं। परंतु अिन सबको पीछे रखनेवाला और सबको अपने पंखोंमें समेटकर अुड़नेवाला बड़ा धंधा जो दुनियामें आज चल रहा है वह राज्य-व्यवस्थाका है। व्यापारोंमें तो बाहरसे सचाअी और प्रामाणिकताका दिखावा करनेकी भी कुछ परवाह करनी पड़ती है, परंतु अिस धंधेमें चोरीके मामलेमें किसी प्रकारका दुराव-छिपाव होता ही नहीं। अिसके विपरीत, शासकगण गर्वके साथ दावा करते हैं कि जनताका हित करनेके लिअे ही हम राजनीतिके दाव अर्थात् चोरी और झूठके दाव खेलते हैं। और वे जनताका हित कैसा करते हैं? वे सीधे करोंके रूपमें और भोले लोगोंको पता भी न चले अिस ढंगसे परोक्ष करोंके रूपमें अुसका खून जैसा महंगा धन चुराते हैं और अुससे नौकरशाही तथा सेनाका पोषण करके अुसी जनताको हमेशा अपने पंजेमें रखते हैं। वे राजसत्ताके जोरसे लोगोंके अनेक प्रामाणिक अुद्योगोंको नष्ट कर डालते हैं और नये शोषक अुद्योगोंको प्रोत्साहन देते हैं।

यह राज्य-व्यवस्थाका धंधा अधिकाधिक फैलता जा रहा है। अुसमें जो सीधा भाग लेते हैं वे तो अपना जीवन चोरीमय बनाते ही हैं, परन्तु राज्यसत्ताकी चमक-दमकसे अैसे धंधेकी प्रतिष्ठा बढ़ाकर साधारण लोगोंके मनमें भी चोरीकी वृत्ति पैदा कर देते हैं।

"धंधे तो हम धंधेके ढंगसे ही करेंगे, केवल प्रार्थनामें बैठेंगे अथवा देव-मंदिरमें जायेंगे, तब अेकादश व्रतोंका चिन्तन करेंगे। सद्‌गृहस्थ और सन्नारियां बनकर अेक-दूसरेके साथ मिले-जुलेंगे, तब जहां तक हो सकेगा झूठ नहीं बोलेंगे और न किसीके छतरी-जूते चुरायेंगे, और कोअी भूल गया होगा तो अुसके घर तक ये चीजें पहुंचा देंगे। हमारे बच्चे झूठ बोलेंगे या चोरी करेंगे, तो अुन्हें हम डांट देंगे। अिस प्रकार जीवनके अैसे बिना जोखिमवाले अवसरों पर सत्य और अस्तेय पर जोर देनेको हम तैयार हैं, परंतु हमारे कमाअीके धंधेमें और हमारे राजकाजके धंधेमें हम पठितमूर्खोंका व्यवहार करने लगें तो हमारा खर्च कैसे चले? हमारा घर कैसे चले? हमारी संतानें सुख-समृद्धिका अुपभोग कैसे कर सकेंगी?" यह है हम सबका रवैया।

अिस प्रकार रोजगार-धंधों और राजनीतिकी, जो हम लोगोंके जीवनका पौना हिस्सा समेट लेनेवाले व्यवसाय हैं, सारी रचना ही हमने चोरी पर की है, फिर भी हम अुसे चोरी नहीं मानते। अैसी स्थितिमें जीवनमें सत्य और अहिंसाके पालनकी आशा ही कहां रह जाती है? चोरीके घने, कटीले पेड़ोंके बीच सत्य-अहिंसाके कोमल पौधे लगाकर अुनके बड़े होनेकी आशा हम कैसे रख सकते हैं?

धंधोंमें खुल्लमखुल्ला चोरी करके हम भले सभ्य बनकर ज्ञानकी बात करें, दान दें, देशसेवाके कुछ कामोंमें भी भाग लें, परन्तु यह सब 'सौ चूहे मार कर बिल्ली हजको चली' जैसी बात हो जाती है। हमारे अिन कामोंमें न तो गहराअी आती है, न सचाअी आती है और न जोश आता है।

अिसलिअे सत्य-अहिंसाके पालनमें आगे बढ़ना हो, तो हमें अपने जीवनके डाल-पत्तोंको सींचना छोड़कर अुसका बड़ा भाग समेटनेवाले हमारे धंधोंमें अस्तेय और

प्रामाणिकता लानेका प्रयत्न करना चाहिये। अिस मामलेमें हम सब समान रूपसे झूठे बन गये हैं। अतः अिसके लिअे मनको तैयार करना, अिस प्रकार व्यवहार करते हुअे थोड़ी आमदनीसे काम चलाने और सुख-वैभवमें कमी करनेके लिअे मनको तैयार करना, कठिन प्रतीत होगा। परन्तु साहसके साथ धंधेमें अस्तेय अथवा प्रामाणिकताका पालन करनेका संकल्प कर लें, तो हमारा जीवन छल-कपटके खड्डों और टेकरियोंके बजाय सत्य-अहिंसाकी सीधी सड़क जैसा बन जाय, सत्य-अहिंसाको जीवनके सूत्रोंके रूपमें देखनेकी श्रद्धा हममें पैदा हो और देशके बड़े कामोंमें सत्य-अहिंसा पर चलनेकी हिम्मत आ जाय।

२. सुख-सुविधाओंमें सिद्धान्त

[अपरिग्रह]

परिग्रहका अर्थ है सुख-सुविधाओंके साधनोंका संग्रह करना। हमने अिस मामलेमें भी आपसमें 'चोरोंका समझौता' कर लिया है : "हम यथासंभव देशसेवाका काम करेंगे, धर्मका पालन करेंगे और यथाशक्ति सत्य-अहिंसाका भी अमल करेंगे, परन्तु हमारे घरेलू जीवनमें कृपा करके कोअी दखल न दें। अुसमें हम जैसे चाहिये वैसे सुख-सुविधाके साधन अिकट्ठे करेंगे, हमें जो खाना-पीना होगा हम खायेंगे-पियेंगे, जो भोग भोगने होंगे सो भोगेंगे। हमें जैसा कमाना — अर्थात् चोरी करना — आयेगा अुसके अनुसार हम सुख भोगेंगे। आपको जैसा कमाना आये अुसके अनुसार आप भी भोगिये। यह आपका और हमारा निजी जीवन है। अिसमें कितना भोगें और कितना न भोगें, यह देखना हमारा काम है। दूसरोंको अिसमें दखल देनेका हक नहीं। जिस तरह दिनमें खानेको अच्छी तरह न मिले तो काममें जी नहीं लगता, अुसी तरह निजी सुख-वैभवमें कमी हो तो जीवनमें कोअी रस नहीं रहता। पहले अपनी रुचिके अनुसार व्यक्तिगत वैभव भोगें, फिर फुरसतसे सिर पर पगड़ी रखकर या खादीकी टोपी पहनकर तथा निश्चिंत होकर हम देशका काम करने निकलेंगे।"

अैसा करनेमें मानो हम पूरी तरह स्वाभाविक निर्दोषताका व्यवहार कर रहे हैं, अिससे हमारी मानवोचित प्रतिष्ठामें कोअी कमी नहीं आती, अैसा हमने परस्पर सम्मतिसे तय कर लिया है।

सब अपने-अपने निर्वाहके लिअे कमाअी करें और अुससे आवश्यक सुख-सुविधायें जुटा लें, अिस नियममें आपत्तिकी कोअी बात नहीं है; परन्तु यह तभी ठीक माना जायगा, जब कमाअी पसीने और अीमानदारीकी हो। अिस तरह कमानेवालेके पास जरूरतसे ज्यादा साधन अिकट्ठे नहीं हो सकते। अुनका अुपभोग करनेकी फुरसत भी अुसे नहीं मिलती, और वृत्ति भी नहीं होती। परन्तु हमारी कमाअी कैसी है, यह तो मैंने अस्तेयके सम्बन्धमें बोलते हुअे कह दिया है। जिसे चोरीकी आसान कमाअी करनी हो, अुसे सुख-सुविधाके साधनों पर और व्यक्तिगत भोग-विलास पर अंकुश रखनेकी

अिच्छा क्यों होगी? वह सादे भोजनसे क्यों तृप्त होगा? वह छोटे घरसे क्यों सन्तोष मानेगा? वह बाग-बगीचा, नौकर-चाकर, गाड़ी-मोटर, धन-दौलत आदि सब कुछ बढ़ानेमें क्यों संकोच करेगा?

अिस प्रकार व्यक्तिगत सुखोंको पर्याप्त मात्रामें भोगनेसे हमारी परिग्रह-वृत्ति संतुष्ट होती तो भी काफी अच्छा होता। परन्तु हम तो चारों ओर देखते रहते हैं कि अिन सब बातोंमें दूसरा कोअी हमसे आगे तो नहीं बढ़ जाता? कोअी बढ़ जाय अिसे हम सहन नहीं कर सकते। अुससे हमारे अभिमानको चोट पहुंचती है। क्या हमें कमानेकी कला अुससे कम आती है? और, हम अपने धंधे बढ़ाते हैं, चोरीके नये नये प्रकार ढूंढ़ निकालते हैं और अधिकसे अधिक पैसा जमा करने लगते हैं। अैसा करके हम पागलोंकी तरह सुख-सुविधाअें बढ़ाते तो हैं, परन्तु धंधेमें अितने फंस जाते हैं कि अुनमें से किसी प्रकारकी सुख-सुविधा भोगनेकी शक्ति ही गंवा देते हैं। हम पकवान खाते हैं, परन्तु अुन्हें पचा नहीं सकते; पलंग पर सोते हैं, परन्तु नींद नहीं आती। फिर भी परिग्रहके मिथ्याभिमानके खातिर परिग्रह बढ़ाते ही जाते हैं। रुपयोंका बैंकमें खोला हुआ खाता भी हमारा अेक प्रिय परिग्रह बन जाता है। अुस पैसेसे जो भी चाहिये सब लाया जा सकता है, अिसलिअे नहीं। वह तो हमें चाहिये अुससे अधिक हम जमा कर चुके हैं। घरमें हमारे परिग्रहोंकी भीड़ने हमारे लिअे बैठने तककी जगह नहीं रहने दी है। अब हम पर अेक ही पागलपन सवार है। दूसरोंसे हमारी पूंजी अधिक होनी चाहिये। अिसलिअे अधिक कमाअी करनी चाहिये, अधिक धंधे चलाने चाहिये, अधिक चोरी करनी चाहिये। अैसा करनेमें खानेकी फुरसत न रहे, पारिवारिक जीवनका आनंद लेनेका समय न रहे, तो भी हमें आपत्ति नहीं होती। देखनेवाले आलोचना करते हैं कि यदि कमाअीको भोग नहीं सकते, तो ये धंधे किसलिअे हैं? यह दौड़धूप और धांधली किसलिअे है? अुसमें बोला जानेवाला झूठ और की जानेवाली यह चोरी किसलिअे है? हमारे पास धन खिचकर आता है अिसमें कितने ही लोग बेकार बनते होंगे, चूसे जाते होंगे। हमारे धंधे कितने ही लोगोंको बुरे रास्ते लगाते होंगे, कुटेवोंमें डालते होंगे, व्यसनोंमें फंसाते होंगे। यह सब भी आखिर किसलिअे? लेकिन हम आलोचकोंकी हंसी अुड़ाते हैं और कहते हैं: बड़ी पूंजी अिकट्ठी करनेमें और प्रतिदिन अुसे बढ़ाते ही जानेमें कितना आनन्द है, यह वे क्या जानें?

अिस तरह परिग्रह बढ़ानेकी सनक मनुष्यको पागल बना देती है। लोगोंके कमाकर खानेके जमीन जैसे साधन भी हथिया लेनेमें अुसे हिचकिचाहट नहीं होती। लोगोंके लिअे अपने सिवा और कोअी आधार न रहने देकर वह अुन्हें अपनी मनमानी शर्तोंसे कुचलता है और अुनका रक्त चूसता है। अुसे लोगोंको अपने शिकार माननेके सिवा और कोअी भावना रखना बरदाश्त नहीं होता। अुसके पागलपनसे कितनी हिंसा हुअी, कितने लोग मरे, कितने बरबाद हुअे, कितने व्यसनोंमें लग गये, कितने अनीतिमें फंस गये, कितने बेकार और भिखारी बन गये, यह सोचनेको वह ठहर नहीं सकता।

परिग्रहका शौक रखना और अहिंसाका पालन करना, ये दोनों साथ साथ कभी चल ही नहीं सकते। औरोंको दुखी किये विना, तवाह किये विना कोअी परिग्रहकी भूख मिटा नहीं सकता। यदि परिग्रह-वृत्ति पर अंकुश लगाना न सीखें, तो हम जीवनमें अहिंसाको अुतार ही नहीं सकते। परिग्रहके लोभमें लोगोंके प्राण लेनेमें जिसे जरा भी दुःख नहीं होता, अुससे स्वराज्यकी लड़ाअीमें सूक्ष्मतासे अहिंसाका पालन करनेकी आशा कभी नहीं रखी जा सकती। लेकिन अैसा आदमी स्वराज्यकी लड़ाअीमें खड़ा ही क्यों रहेगा? अुसे तो अपना शौक पूरा करनेके लिअे विदेशी हुकूमतके साथ रहनेमें ही अधिक लाभ मालूम होगा।

परिग्रहके सम्बन्धमें आज तक मनुष्यके मनमें अेक प्रकारकी शरम रहती थी। वह मनमें यह स्वीकार करता था कि अुसमें दूसरोंकी चोरी होती है, दूसरोंका द्रोह होता है। परन्तु अव तो अेक दूसरे ही प्रकारकी विचारसरणी प्रचलित होने लगी है। अुसमें यह सिद्धान्त वना लिया गया है कि परिग्रह जितना अधिक, अुतनी ही सभ्यता अूंची। अुसमें संयमकी हंसी अुड़ाअी जाती है और यह माना जाता है कि वह मनुष्यको पुराने पाषाण-युगमें वापस ढकेल देगा। परन्तु अिसके जैसा खतरनाक सिद्धान्त और कोअी नहीं। अंग्रेजोंने परिग्रहके सुख भोगनेकी हद कर दी है; क्या हम अुसीके परिणाम-स्वरूप अुनकी गुलामी नहीं भोग रहे हैं? यह वात जरा भी छिपी नहीं है कि अंग्रेज और दूसरी गोरी जातियां दुनियाकी रंगीन जातियोंको अपनी राज्यसत्तामें जकड़कर अुन्हें लूटती हैं, अिसीलिअे वे अतिवैभवका परिग्रही ज़ीवन भोग सकती हैं। हमें तो अिसका अैसा अनुभव हो रहा है कि जगतके अन्त तक हम अुसे भूल नहीं सकते। अिस गुलामीसे हमारे सीखने लायक यदि कोअी सवक हो, तो वह यही होना चाहिये कि परिग्रह-सुख पर संयम रखा जाय।

अिसीलिअे हम स्वराज्यकी कल्पना गोरोंके राज्योंसे भिन्न करते हैं। हम अुसमें वड़े-वड़े और विलासी शहरोंके, वड़े वड़े कारखानोंके और वड़ी वड़ी सेनाओंके सपने नहीं देखते। परन्तु अुद्योगी, स्वावलंवी, स्वशासन-भोगी, स्वच्छ, स्वस्थ और सुखी गांवोंकी ही कल्पना करते हैं। अैसे स्वराज्यका निर्माण हम अपनी ही मेहनतसे और अीश्वर द्वारा हमें दिये हुअे साधनोंसे, दूसरी प्रजाओंका शोषण किये विना, कर सकते हैं।

परन्तु परिग्रहको ही सभ्यता वतानेवाले पश्चिमी विचारके लोग कहते हैं: "हम अपने व्यक्तिगत जीवनमें परिग्रहोंका सुख भोगनेकी राय रखते हैं, परन्तु अपने देशको परिग्रह नहीं करने देना चाहते। देशके राज्यको हम दृढ़ नियंत्रणमें रखेंगे। अुसे हम अिस ढंगसे चलायेंगे कि वह दूसरी प्रजाओंको लूटने न जाय। और साथ ही देशके अुद्योगों और शिक्षाको अितना वढ़ा देंगे कि देशके ही साधनोंसे देशके सव लोग परिग्रहका अूंचेसे अूंचा वैभव लूट सकें। हम अपने वुद्धिवलसे अैसे यंत्र खोजेंगे, जिनकी सहायतासे सुख-सुविधाओंके साधनोंका पहाड़ खड़ा कर देंगे और अैसे कानून वनायेंगे कि देशमें सव समान रहें और कोअी किसीको लूटकर धन-संग्रह न करे। अिस प्रकार हम वैभव और परिग्रह पर खड़ी शहरी सभ्यता स्थापित करना

चाहते हैं। हम देहाती नहीं रहना चाहते, क्योंकि अिस तरहके संकुचित जीवनकी चार-दीवारीमें हमारे मनुष्यत्वको विकास करनेका पूरा अवकाश नहीं मिल सकता।"

अिस प्रकार विचार करना क्या मनुष्य-जातिके लिअे अत्यंत भयंकर अभिमान करने जैसा नहीं है? व्यक्तिगत जीवनमें परिग्रहका वैभव बढ़ानेमें विश्वास रखते हुअे भी सार्वजनिक — देशके — जीवनमें अुस पर अंकुश रखनेकी सन्मति हममें टिकी रहेगी, यह छाती ठोककर कहना आकाशमें महल बनाने जैसी असंभव बात है, और निरा अभिमान है। यह महामारीके क्षेत्रमें रहने पर भी छूतसे बचनेका अभिमान रखने जैसी बात है।

समझदारी और सुख-शान्ति तो अपरिग्रहको हमारे जीवनका सिद्धान्त बनानेमें ही है। अुस रास्ते चलकर हम स्वच्छ, सुघड़, अुद्योगी, शान्त, ज्ञानी, सेवापरायण और सुखी लोगोंका ग्राम-स्वराज्य खड़ा कर सकेंगे। अपना व्यक्तिगत जीवन हम अैसा रखेंगे, तो जैसे हम होंगे वैसा ही हमारा स्वराज्य भी अपने-आप निर्माण हो जायगा। वह अैसा होगा, जिसे हम सत्य और अहिंसाके मार्ग पर चला सकेंगे और सत्याग्रहके बलसे जिसकी रक्षा कर सकेंगे। हम यह नहीं मानते कि वह हमारे संपूर्ण विकासके लिअे संकुचित होगा।

३. व्यक्तिगतसे व्यक्तिगत जीवनमें भी सिद्धान्त

[ब्रह्मचर्य]

अिस सम्बन्धमें हमने परस्पर समझौते द्वारा मानो यह नियम तय कर लिया है कि, "यह विषय मनुष्यके जीवनका अत्यंत व्यक्तिगत विषय होनेके कारण कोअी अुसकी कुछ चर्चा ही न करे। जिसकी जैसी मरजी हो, वैसा वह करे। संयम रखना हो तो संयम रखे, लम्पट बनना हो तो लम्पट बने। जब तक मनुष्य व्यभिचार करता हुआ पकड़ा न जाय, तब तक कोअी किसीके व्यवहारकी बिलकुल बात न करे।"

मनुष्यके मन पर कामदेवका जो महादुर्दम्य साम्राज्य है, अुसे देखते हुअे अिस मामलेमें अैसी ढीली नीति रखकर हम लोगोंने भयंकर भूल की है। यद्यपि व्यभिचारके लिअे समाजमें खूब निन्दाकी वृत्ति है और कोअी पकड़ा जाय तो अुसे राजदंड तथा समाज-दंड देने और मारपीट करनेमें भी हम पीछे नहीं रहते; परन्तु हमारा यह क्रोध अिस बातका चिह्न हरगिज नहीं है कि हमने स्वयं अपने जीवनमें काम पर संयम प्राप्त कर लिया है।

समाजमें अधिकांश लोग विवाहित जीवनकी सीमामें भले रहते हों, परन्तु अुस सीमाके भीतर भी जो मनुष्य कामके वश होकर चलता है, वह कितना ही लम्पट बन सकता है। हम अपने घरकी चारदीवारीमें कैसे रहते हैं, यह भले ही हम अेक-दूसरेसे न कहते हों, परन्तु हमारा असंयम — हमारी कामुकता छिपी नहीं रह सकती। वह तो दीवारोंके आरपार फूटकर प्रगट हो ही जाती है।

हमारी जनता युगोंसे गुलामीमें कुचली जाती रही है, और अुससे मुक्त होने लायक पराक्रम नहीं दिखा सकती। अिस स्थितिके चाहे जितने शिष्ट और सम्य कारण दिये जा सकते हैं। परन्तु अुसकी जड़में हमारी छिपी कामुकता ही है, यह जान लेनेकी जरूरत है। वह हममें शौर्य चढ़ने ही नहीं देती। अुसके कारण हमारा मन सदा घरमें ही भटकता रहता है। घरकी सलामती नष्ट हो, अैसे किसी खतरेके लिअे खड़े होनेका साहस ही हमारे पैरोंमें नहीं रह पाता।

हमारे नौजवान लड़के-लड़कियोंमें स्वाभाविक परिस्थितियोंमें बहादुर सिपाही और श्रद्धालु सेवक बननेकी अुमंग पाअी जानी चाहिये। अुसके बजाय अुनमें नखरे, विलासिता क्यों देखनमें आती है? क्या यह हमारी छिपी कामुकताका असर नहीं? आजन्म सेवा और साहसका व्रत लेकर निकल पड़नेवाले ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियां हमारे यहां बहुत ही थोड़ी निकलती हैं। अिसकी जड़में भी यही कारण मानना चाहिये।

घरमें कितने ही लंपट बनकर रहनेकी वृत्तिको समाजमें प्रतिष्ठा मिल गअी, अिसलिअे अुसका असर गांवोंमें रहनेवाले करोड़ों लोगों पर भी पड़े बिना नहीं रहा। अैसी अपेक्षा रहती है कि अुनके भोले जीवनमें कामुकता स्वाभाविक तौर पर ही मर्यादामें रहेगी। परन्तु अेक बार अूपरके वर्गोंने अेक आचारको प्रतिष्ठित बना दिया कि अुसके अनुकरणके लालचसे गांववाले कैसे बच सकते हैं? अिस प्रकार हमारे गांव भी कामांध और अविवेकी जीवनमें फंस गये हैं। अिसके फलस्वरूप कमानेकी ताकत नहीं और खानेवाले बहुत, अैसी अुनकी हालत हो गअी है। हमारी जनताकी अैसी दीन दशा हो रही है, मानो वह मनुष्यसे किसी नीची योनिकी हो।

हमारे स्त्री-समाजकी स्थितिको देखें, तो वहां भी हम लोगोंके विषयीपनकी छाप दिखाअी दिये बिना नहीं रहती। अुन्हें हम जीवनके कोअी अूंचे विचार करनेका मौका ही नहीं देते। अुनका सारा दिन हमारी सुख-सुविधाओंका ध्यान रखने अथवा बन-ठनकर हमारी मेहरबानी बनाये रखनेमें जाता है। वे हमारी नजर परसे समझ जाती है कि अैसा करनेमें ही अुनकी खैरियत है। हमने स्वयं देशसेवाका जीवन स्वीकार कर लिया हो, तो भी हम गृह-जीवनमें व्यक्तिगत सुख छोड़नेको तैयार नहीं होते। अिसलिअे हमारा कुदरती रवैया यही रहता है कि स्त्रियां हमारी व्यक्तिगत सेवा करती रहें। अपने सेवा-जीवनमें अुन्हें हिस्सेदार बनानेके प्रयत्नमें हम अत्यंत ढीले हैं; अिसका और कोअी स्पष्टीकरण है?

ब्रह्मचर्यके सिलसिलेमें हम लोगोंने और भी कअी बलवान लक्षणोंकी कल्पना की है। जो मनुष्य अपने कामको जीत लेता है, अुसे चाहे जैसा ढीला, सिद्धान्त-रहित और साहस-विहीन जीवन अच्छा नहीं लगता। अुसे अनुशासन-हीन, अनियमित और चौबीसों घंटे अुद्योग-रहित जीवनमें दिलचस्पी ही नहीं होती। अुसे बुद्धिको मंद रखना और लकीरके फकीर बने रहना भी पसन्द नहीं होता। वह अपना ज्ञान बढ़ानेके प्रयत्न करनेमें कभी थकता ही नहीं। हमारे युवक और कुल मिलाकर हमारी जनता आज अिन गुणोंमें कितनी नीचे गिर गअी है?

ब्रह्मचर्यके बिना हमारा सारा जीवन बिना रीढ़के शरीरकी तरह शिथिल रहता है। अुसमें दृढ़ता और तेज आता ही नहीं। रोजके खानगीसे खानगी जीवनमें कोअी टेक या कोअी जोर पकड़नेकी आदत नहीं होनेसे हम लोग सार्वजनिक जीवनमें भी तेज और पराक्रम नहीं दिखा सकते; सत्याग्रहके लिअे आवश्यक दृढ़ता और शौर्य हममें अुत्पन्न नहीं होते। अहिंसाके पालनमें जो हंसते हंसते कष्ट अुठानेकी कला आनी चाहिये, वह भी हममें नहीं आ पाती। हम किसी भी प्रकारके कमजोर डंठलोंसे महल बनाने लगते हैं। तब फिर अुसमें रोज पीछे हटना पड़े तो आश्चर्य कैसा? अिसलिअे हम सेवकोंको तो व्यक्तिगत जीवनमें बलवान सुधार करके देशमें से कामुकताकी हवाको मिटा डालनेका प्रयत्न करना चाहिये।

कुछ व्यक्ति शायद अिन विचारोंको अपना सकें, लेकिन सब लोग कब सुधरेंगे, अैसा निराशापूर्ण विचार करनेकी यह बात नहीं। हम सब कामुकताको प्रतिष्ठा देकर बैठ गये हैं, हम सब अुसकी अुपेक्षा करते हैं, अिसीलिअे अैसा होता है। हम अपने जीवनमें अिस स्थितिको मिटा देंगे, तो जनतामें वांछित सुधार अपने-आप हो जायगा। यह वैसी ही बात है जैसे आसपासकी हवा सुधरते ही लोगोंका स्वास्थ्य अपने-आप सुधरने लगता है। देशसेवक अिस मामलेमें गंभीर बन जायं, तो यह शुभ परिणाम थोड़े ही अर्सेमें ला सकते हैं; अैसा हो तो सारी जनताका जीवन कामुकताका न रहकर संयमका बन जाय और जनतामें से तेजस्वी, वीर, बुद्धिमान, सत्याग्रही और सेवापरायण ब्रह्मचारियोंकी फसल बहुत अधिक मात्रामें पैदा होने लगे।

अेक तो हमारी जनता कमजोर हो गयी है; अिसके सिवा, पश्चिमके विचार अुसमें अिस प्रकारका बुद्धिभ्रम पैदा करने लगे हैं, "काम तो प्रकृतिका दिया हुआ स्वभाव है। अुसे अंकुशमें रखना असम्भव है। अिसलिअे अैसा व्यर्थ प्रयत्न क्यों किया जाय? कोअी ध्यान रखने जैसी बात हो तो अितनी ही कि देशकी आबादीको हमारे खाद्य आदि साधनोंसे अधिक न बढ़ने दिया जाय। अिसके लिअे हमारे वैज्ञानिकोंने साधन ढूंढ़ लिये हैं। अुनके द्वारा कामसुख भोगते हुअे भी हम आबादीके बोझसे बच सकेंगे।"

जब यह पुकार अुठायी जाती है कि अिससे लोगोंके शरीर क्षीण हो जायंगे, तो डॉक्टरोंका यह मत सामने रखा जाता है कि यह निरा भ्रम है; और जब यह चेतावनी दी जाती है कि अिससे मन निस्तेज, अस्थिर, अपराक्रमी और कामी बन जायगा, तो मानसशास्त्री अुसे वहम बताकर अुसकी हंसी अुड़ाते हैं। भारतकी यह प्राचीन जनता कृत्रिम साधनोंके बिना भी कामुकताकी शिकार बनकर शरीर-बल और आत्मबलकी दृष्टिसे किस हद तक निस्तेज और निष्प्राण हो गयी है, अिसका जीता-जागता प्रमाण देखकर भी क्या वे प्रयोगशालाके कमरोंकी ही बातें करते रहेंगे? कृत्रिम साधन मनुष्यको अधिकसे अधिक सन्तानकी जिम्मेदारीसे मुक्त कर देंगे, परन्तु मुख्य वस्तु तो मनकी कामुकताको जीतकर जन-जीवनको प्राणवान बनाना है। वह कामुकता तो अुलटी जिम्मेदारीके न रहने पर सौगुनी बढ़ जायगी।

नहीं नहीं, हमें अिस पश्चिमी हवामें नहीं फंसना है। अुन लोगोंको अपने विज्ञानका मानो अपच हो गया है, अभिमान हो गया है। अुन्हें यह घमंड है कि, "हर मामलेमें हम भोग-विलासको पूरी छूट दे देंगे और फिर भी अपने विज्ञानके बलसे अैसे कृत्रिम साधन ढूंढ़ निकालेंगे कि अुसके दुष्परिणामोंसे हम मुक्त रहेंगे।" अिसके दुष्परिणामोंसे कदाचित् मुक्त रहा जा सकता हो, परन्तु हम तो मानते हैं कि यह अिकरार करना ही मनुष्यके मनुष्यत्वको लांछन लगानेवाला है कि 'भोग-विलासको — कामुकताको जीतनेमें हम अशक्त हैं'। हम यह मानते हैं कि विज्ञानमें हम कितने ही आगे क्यों न बढ़ जायं, परन्तु यदि लोग कामी बन जायं, तो वे सच्चे स्वराज्यकी रचना कभी नहीं कर सकते। हमें तो आत्म-रचनाके द्वारा ही अपनी स्वराज्य-रचना करनी है, कृत्रिम साधनों द्वारा नहीं।

४. भोग-विलास पर संयम

[शरीर-श्रम]

आत्म-रचनाके लिअे अर्थात् जीवनमें सत्य-अहिंसाके सिद्धान्तोंको गूंथ लेनेके लिअे — आत्मबल बढ़ानेके लिअे हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंने जो तीन महान राजमार्ग बताये हैं, अुनका विचार हम कर चुके। अर्थात् अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्यका विचार हमने कर लिया। अब हम शरीर-श्रम वगैरा बाकी छह सिद्धान्तोंका विचार करेंगे। वे हमारे युगकी परिस्थिति परसे निकाले हुअे नये सिद्धान्त हैं। असलमें वे अुपरोक्त राजमार्गोंमें शामिल ही हैं, अुनके अुपमार्ग जैसे हैं। अस्तेय वगैराका पालन हमारे लिअे सरल कैसे बने, अिसकी गहराअीमें जाते ही हम देखते हैं कि अुसका अेकमात्र अुपाय शरीर-श्रम वगैरा सिद्धान्तोंका पालन ही है।

अुनमें सबसे महत्त्वका सिद्धान्त है शरीर-श्रम। हमारे शरीरकी रचना और हमारे मूल स्वभावको देखते हुअे मेहनत करना, अपनी मेहनतसे रोटी कमाना, कुछ भी सृजन करना हमें आनन्द, अुत्साह और प्रेरणा देनेवाली वस्तु होनी चाहिये। परंतु हम लोग तो अिस सम्बन्धमें बिलकुल अुलटे सिद्धान्त बनाकर चलते हैं:

"शरीर-श्रमसे शरीर क्षीण होता है और बुद्धि भी मन्द हो जाती है। मेहनत करना तो बुद्धिहीन लोगोंका काम है। मेहनत करना नीच लोगोंका काम है, हलकापन है, असभ्यताकी निशानी है। शरीर-श्रमकी बेगारमें हम जिन्दगी बितायें, तो बुद्धिका विकास कब करें? वगैरा वगैरा।"

अब जिसे शरीर-श्रम अिस तरह कड़वा लगता है, परन्तु सुख सभी भोगने हैं, वह और क्या करेगा? वह तरकीबें निकालेगा, बुद्धिको काममें लेगा और दूसरोंसे मेहनत करायेगा। क्योंकि कोअी मेहनत न करे, तब तक सुखके साधन तैयार नहीं हो सकते। परन्तु दुनियामें दूसरेके हिस्सेकी मेहनत करनेको कौन तैयार होगा? प्रेमके खातिर तो मनुष्य दूसरेकी कितनी भी सेवा कर लेता है, परन्तु अैसे श्रमचोरके लिअे किसे प्रेम होगा? अुसने खुद कभी किसीके लिअे कष्ट किया हो तभी तो

दूसरा अुसकी सेवा करनेको तैयार होगा? अुसे तो लोगोंसे मजदूरी करानेके लिअे चालाकी, अन्याय और अत्याचारके ही रास्ते अपनाने पड़ेंगे। अुन्हें जीतना पड़ेगा, गुलाम बनाना पड़ेगा, बेकार बनाना पड़ेगा, शिक्षा-विहीन रखना पड़ेगा, गालियां देनी पड़ेंगी और मारपीट करनी पड़ेगी। मेहनत न करके भोग भोगनेके रास्ते पर चलनेवाला मनुष्य कोअी भी पाप करनेमें यदि हिचकिचाये तो अुसका काम नहीं चलेगा। मेहनतकी चोरी बड़े-बड़े पापोंका मूल है।

दुनियामें सर्वत्र लोग अिसी न्यायसे चलते आये हैं। हमारे यहां भी यही हुआ है। हमारे कुटुम्बों और जातियोंकी रचनामें यह पाप काफी मात्रामें आ गया है। जिन्हें कमजोर देखा अुन्हें हमने अपने मजदूर बना लिया है। सबसे पहले तो पुरुषोंने समूची स्त्री-जातिको अपनी गुलामीमें जकड़ लिया है। अुसके बाद शूद्रोंका बड़ा समाज खड़ा कर दिया है। अिन सब मेहनत करनेवालोंको हम नीच मानते हैं। वे कभी अूंचे न हो जायं, शिक्षित न बन जायं, हमारे पंजेसे छूट न जायं, अिसी दृष्टिसे हम सदा बुद्धि चलाते रहते हैं और अुन पर हमेशा अपना प्रभुत्व जमाये रहते हैं।

अब हमें सेरका सवा सेर मिल गया है। अंग्रेज भी यही मानते हैं कि मेहनत किये बिना अमीर बन जायं और भोग-विलासमें लीन रहें। और अिस मामलेमें वे हमसे आगे बढ़े हुअे हैं। हमारा काम तो मामूली सुखसे चल जाता था, परन्तु अुनको तो सारी प्रजाको बादशाही सुख भोगना है। बादशाहत आपसमें अेक-दूसरेको चूसनेसे नहीं मिल सकती। अिसलिअे वे समुद्रको पार करके हम पर चढ़ आये हैं और हम पर हुकूमत जमाकर हमें चूसते हैं। अिस प्रकार हमें अपने पापका फल ब्याज-सहित मिल रहा है।

बादशाही भोगना, अर्थात् परिग्रह बढ़ाना और कामी व भोगी जीवन बिताना, निश्चित ही बड़ा पाप है। परन्तु वह भोग अपनी मेहनतसे न कमाकर दूसरोंकी मेहनतसे प्राप्त करना अुससे भी बड़ा पाप है। खुद मेहनत करनी पड़े तो भोगों पर थोड़ा-बहुत स्वाभाविक अंकुश रह सकता है, परन्तु पराअी मेहनतसे भोग भोगने लगें तो वह अंकुश नहीं रहता। फिर तो जितने भोग भोगते हैं अुतनी ही भूख बढ़ती जाती है। घरसे संतुष्ट न होकर राज्य लेनेकी भूख पैदा होती है और राज्यसे सन्तुष्ट न रहकर साम्राज्यकी भूख जागती है। और फिर अुस भूखकी ज्वालामें दुनियामें किसीके लिअे कोअी सहानुभूति, ममता या अहिंसा रखनेसे काम नहीं चलता। दूसरेके परिश्रमका कैसे शोषण किया जाय, दूसरोंका धन कैसे हड़प किया जाय, अिसीमें बुद्धि रमती रहती है और कोअी कपट, कोअी अन्याय, कोअी क्रूरता और कोअी पाप न करने जैसा नहीं रहता। सत्यके साथ तो सदाके लिअे वैर बांध लेना पड़ता है।

अैसे भोगी, कामी, शरीर-श्रमकी निन्दा करनेवाले और जगतमें सबके द्रोही लोग अिकट्ठे होकर जो राज्य स्थापित करेंगे, वह कल्याणकारी कैसे हो सकता है? हमें अैसा स्वराज्य स्थापित नहीं करना है। हमें तो दूसरी ही तरहके स्वराज्यकी — सर्वोदय प्रदान करनेवाले स्वराज्यकी — रचना करनी है। अुसमें हमें शरीर-श्रमको

गौरवपूर्ण स्थान देना है; और अिसीलिअे हम अपनी आत्म-रचनामें भी अुसे गौरवका स्थान देते हैं।

परन्तु फिर पश्चिमसे मायावी आवाज आती है : "मनुष्य जैसे बुद्धिमान प्राणीके लिअे पशुओंकी तरह मेहनत-मजदूरी करना अुसकी बुद्धिका अपमान है। हम बुद्धिका अुपयोग करके तरह तरहके यंत्र बनायेंगे, अुनमें हवा, पानी, धुआं और बिजली वगैराकी कुदरती ताकतोंको जोड़ देंगे और मेहनत किये बिना आवश्यक और आवश्यकसे भी अधिक सुख-सुविधाके साधन तैयार कर लेंगे और अुनके द्वारा अैसा सुख भोगेंगे जैसा आजसे पहले राजाओं और अमीरोंने भी नहीं भोगा होगा। यह सच है कि अैसा करनेसे पूंजीपतियोंके हाथोंमें संसारके अधिकांश मनुष्य गुलामों और नौकरोंकी तरह बन गये हैं और पशुसे भी हीन जीवन बिताने लगे हैं। परन्तु अब हम चेत गये हैं। हमने जैसे फौलादकी मशीनें बनाअी हैं, वैसे अब राज्यतंत्रकी भी जैसी और जिस करामातकी चाहिये वैसी मशीनें बना लेंगे। अुनके बलसे हम सबको समान बना देंगे। पूंजीवादियोंकी पूंजी ले लेंगे और सबको समान स्तर पर रखेंगे। हमारी राक्षसी मशीनें अितने साधन और सुविधायें जुटा देनेमें समर्थ हैं कि सबको समान रूपसे बादशाही सुख-भोग प्राप्त हो सके।"

यह मायावी आवाज दूसरोंकी बेगार करके शरीरसे, मनसे और आत्मासे भी छिन्न-भिन्न हो चुकी जनताको आकर्षक लगती है। परन्तु लोहे और राजनीतिके यंत्र कैसे भी क्यों न बना लें, तो भी अुनसे मनुष्य-जीवनका सच्चा विकास कर सकनेकी आशा रखना गलत है, सुख-भोग प्राप्त करनेकी आशा भी गलत है। हम तो यह भी मानते हैं कि भोगेच्छामें रमे रहने और शरीर-श्रमसे बचनेका व्यर्थ प्रयत्न करनेके विचार ही वास्तवमें नीचे हैं, मनुष्यकी मनुष्यताको नीचे गिरानेवाले हैं।

५. आत्म-रचनाका 'बायें-दाहिने'

[अस्वाद]

अिस विषयमें आहार-सम्बंधी वार्तालापमें मैं काफी कह चुका हूं। जीभकी स्वाद-लोलुपताकी बात छोटी है, परंतु अुसके प्रति लापरवाही रखना ठीक नहीं। जीभ और शरीरकी दूसरी अिंद्रियां, सब हमारे जीवनमें अुपयोगी सेवाके लिअे ही हो सकती हैं, अुनके अपने स्वादके लिअे कभी नहीं। जीभका काम अमुक वस्तु खाने लायक है या नहीं अिसकी परीक्षा करना ही हो सकता है। पेटमें भूख न हो तो भी जीभके स्वादके खातिर चाहे जो चीज मुंहमें डालते रहना जीभका केवल दुरुपयोग है। यह अभिमान रखना हितावह नहीं कि खाने-पीने जैसी व्यक्तिगत बातोंमें हम कुछ भी करते रहें, अुससे हमारे सार्वजनिक कामोंमें कोअी बाधा नहीं पड़ती। जीभका स्वाद फच्चरकी नोक ही है। अुसे तुच्छ समझकर जीवनमें घुसने दें, तो वह सारे जीवनको फाड़कर छिन्न-भिन्न बना देती है।

अस्वादकी बात छोटी है, परंतु तालीममें — आत्म-रचनामें अैसी छोटी बातें ही बड़ा फल देनेवाली बन जाती हैं। 'बायें-दाहिने' करना आना और बिगुलकी आवाज सुनते ही दौड़कर पहुंच जाना छोटी बातें हैं, परंतु वे फौजी शिक्षाके पहले पाठ हैं। अुनसे सिपाहीके जीवनको निश्चित रूप मिल जाता है। वही स्थान अहिंसात्मक सत्याग्रहके सैनिकोंकी तालीममें अस्वादका है। अिससे अुनके जीवनको अेक निश्चित रूप प्राप्त होता है। अिससे अुन्हें हमेशा यह याद रहता है कि अुनकी कल्पनाके स्वराज्यकी रचना संयम और सादगीके आधार पर होगी।

६. लड़ाका सत्याग्रह

[अभय]

हमारी स्वराज्य-रचनामें हमें पीछे हटानेवाली किसी अेक वस्तुका नाम लेना हो, तो वह हमारी भीरुता ही है। लम्बे अरसेसे हमारे भीतर रहा शौर्यका गुण नष्ट करने और हममें डरपोकपन पैदा करनेका योजनापूर्वक प्रयत्न चल रहा है। हमारे तमाम हथियार छीन लिये गये हैं और हमें निहत्थे बनाकर हमारी छाती पर सिरसे पैर तक हथियारोंसे लैस सरकार चौबीसों घंटे गुर्राती हुअी खड़ी रहती है। बहादुरसे बहादुर लोग भी अैसी दशामें लम्बे समय तक रहें तो डरपोक बने बिना कैसे रह सकते हैं?

हमारे कुटुम्ब-कबीले और माल-असबाबकी रक्षा करनेमें हमारी हड्डियोंमें घुसा हुआ यह डरपोकपन सदा बाधक होता है। अिसलिअे हम व्यक्तिगत और सार्वजनिक दोनों अवसरों पर कितना पामर और लज्जाजनक दृश्य अुपस्थित करते हैं। आपसी झगड़ोंमें हमारी सारी बहादुरी मुकदमेबाजीमें खतम होती है। बाहें चढ़ा चढ़ा कर हम विरोधीको पुलिससे पकड़वा देनेकी, अदालतमें घसीटनेकी और बेड़ियां डलवानेकी धमकी देना सीख गये हैं, और हथियारबन्द डाकू-लुटेरे आ जायं तो हम बाल-बच्चोंको घरमें अकेले छोड़कर भाग जाते हैं। अितना ही नहीं, गांवकी सीमामें बाघ-चीते जैसा जंगली जानवर आ जाय, तो भी सरकारसे प्रार्थना करनेके सिवा हम दूसरा कुछ करनेकी स्थितिमें नहीं रहते।

अैसे डाकुओंका भय तो किसी किसी दिन होता है, परन्तु हमारे सिरों पर रात-दिन जो डर लटकता रहता है, वह तो सरकारी कर्मचारियोंका है। वे हमारे गांवोंमें तो मौतका-सा असर पैदा करते हैं। भय और आतंक फैलानेको जब वे हमारे बीचमें आते हैं, तब खास तौर पर डरावनी पोशाक पहन कर आते हैं। अुनके सामने सिर अूंचा करनेवालेको वे पुलिसके और अदालत, जेल, जुर्माना और जब्ती वगैराके कैसे चक्करमें डाल देते हैं, यह हम कभी कभी आंखोंसे देखते हैं और सदा अुनसे डरे हुअे रहते हैं। अुनकी गालियां और अपमान हम नीचा सिर करके सह लेते हैं। गांवके बीचमें अुनकी गालियां सुन सुनकर हम हिम्मत और अिज्जत दोनों खो बैठे हैं।

और स्वराज्यके बारेमें हमारी जनता पूरी तरह जानती है कि सरकारके पास नयेसे नये ढंगके शस्त्र और फौजी सामान हैं तथा सदा सुसज्जित रहनेवाली सेनायें हैं, जब कि हमारे पास भोथरी छुरी भी नहीं रहने दी गअी है। अुसके खिलाफ लड़नेकी हिम्मत ही दिलमें कैसे पैदा हो सकती है? अंग्रेज लोग अूपरसे कानूनका दिखावा करनेका जो शौक रखते हैं, अुसे देखकर हम कानूनकी मर्यादाका ध्यान रखकर सभायें करते हैं, भाषण देते हैं, अखबार निकालते हैं, अपने दुःखोंका रोना रोते हैं और अुनके कानूनसे मेल खानेवाली अर्जियां लिखकर भेजते हैं। अपनी सारी बहादुरी हम अिसमें खर्च कर देते हैं। परन्तु निर्बल लोगोंकी चिल्लाहट लम्बे समय तक कौन सहन करे? सरकार घुड़कियां देती है कि हम तुरन्त कायर बनकर घरमें घुस जाते हैं।

अिस प्रकार हमारी वर्तमान भयभीत दशा हमारे स्वभावमें पैदा हुअी वस्तु नहीं है, परन्तु हममें योजनापूर्वक दाखिल की गअी है। अब तो पुरानी आदतके कारण वह हमारा स्वभाव जैसी ही बन गअी है।

अिससे हमारा अुद्धार कैसे हो? हमें हथियार मिलनेकी आशा नहीं और सरकार तो दिन-दिन अपना सैनिक बल बढ़ाती ही जाती है, कानूनों और कर्मचारियोंका भय बढ़ाती ही जाती है। परन्तु हमारे सौभाग्यसे हमारे नेताओंने अहिंसात्मक सत्याग्रह ढूंढ़ निकाला है। अुसका हम अपनेमें विकास कर लें, तो हथियारोंके बिना भी हम बहादुर बन सकते हैं, अपने घर और गांवकी रक्षा कर सकते हैं और स्वराज्यकी लड़ाअी लड़ सकते हैं। सच्ची वीरता हथियारोंमें नहीं है, परन्तु अिस बातमें है कि हमारे हृदयमें साहस और निर्भयता हो। हथियार मिलनेकी आशामें बैठे रहनेकी अपेक्षा हृदयकी वीरता, हृदयका अभय-गुण विकसित करना ही अिसका सच्चा अुपाय है।

परन्तु डरपोक बने हुअे हम लोग अहिंसा और सत्याग्रहका अर्थ भी अपने भीरु स्वभावके अनुसार ही लगा लेते हैं। हम मान लेते हैं कि यह अेक खतरेसे रहित लड़ाअीका प्रकार है। अिसमें हमें कोअी जानसे नहीं मारेगा, हमें लूटेगा नहीं, हमारे गांवको तोपसे अुड़ा नहीं देगा; अधिकसे अधिक जेलमें बन्द कर देगा और वह भी अुन्हीं लोगोंको जो जान-बूझकर कानून भंग करने निकलेंगे। हम मानते हैं कि सत्याग्रह हमारे होशियार नेताओंकी ढूंढ़ी हुअी अेक विलक्षण युक्ति है, जिससे सरकार हार जाती है और हम खतरेसे बच जाते हैं।

परन्तु अैसा बिना खतरेका खेल तो जब तक सरकार सत्याग्रहकी नअी चीजसे अनभिज्ञ थी तभी तक चल सका। जब अुसे पता चल गया कि यह तो सच्चा खेल है, स्वतंत्रता लिये बिना हम चैन लेंगे ही नहीं; जब अुसने देखा कि हम जो डरपोक थे, अब धीरे-धीरे सत्याग्रहके शौर्यमें आगे बढ़ते जा रहे हैं, तो वह अपने पंजे बाहर निकालने लगी। निहत्थे लोगों पर प्रबल शक्तिका अुपयोग करनेमें अुसे शुरूमें जो शरम मालूम होती थी, वह शरम अब अुसने छोड़ दी है। अैसी हालतमें अगर

हममें से कोअी किसी जगह अुसके जुल्मसे तंग आकर हाथ अुठाता है तब सरकारको सख्त हाथोंसे काम लेनेका बहाना मिल जाता है।

अब हम देखते हैं कि हमने अपने शौर्यहीन मनमें सत्याग्रहके बारेमें जैसी कल्पना की थी, वैसा बिना खतरेवाला वह नहीं है। किसी भी युद्धमें रहनेवाले खतरे अिसमें भी मौजूद हैं। अुनमें से जेल तो हलकेसे हलका खतरा है — मानो फूलोंकी मार मारी जाती हो। माल-असबाबकी लूट अिसमें भी अच्छी तरह होती है। हमें अुग्र बनकर सत्याग्रह करना आता हो तो अुसमें लाठियां भी पड़ती हैं और गोली भी चलती है। हम अधिक बहादुरीसे लड़ें, तो गांवको अुड़ा देनेके प्रसंग भी अुसमें जरूर आ सकते हैं।

यह जरूरी है कि सत्याग्रहको दुर्बलोंका बिना खतरेवाला हथियार समझनेके बजाय हम अुसका सच्चा स्वरूप समझ लें और अैसे तमाम जुल्मोंके सामने भी न दबनेका अभय-बल अपने दिलमें पैदा कर लें।

शौर्य हृदयमें किस तरह पैदा किया जा सकता है? साधारण मान्यता यह है कि कसरत करें, कवायद करें, सैनिक ठाटकी पोशाक पहनें और हथियार बांधकर घूमने लगें, तो ही वह गुण आ सकता है। अैसा खयाल रखनेवाले लोग सत्याग्रहके मार्गको शौर्यका हनन करनेवाला मार्ग मानते हैं। कुछ लोग अिस बातकी भी हिमायत करते हैं कि सरकारको किसी भी तरह राजी करके अुसकी फौजमें भर्ती होकर हथियार धारण किये जायं, तो हममें बहादुरीका गुण आ सकता है। लेकिन हमें बहुत समयसे हथियार देखनेको नहीं मिले, अिसीलिअे हमें हथियारोंका अैसा मोह है; अन्यथा अैसे हथियार धारण करनेवाले सिपाही तो जानते हैं कि अिस तरह पराअी नौकरीमें धारण किये हुअे हथियार बहादुरीके चिह्न नहीं, बल्कि गुलामीकी जंजीरें ही हैं।

अिसलिअे अच्छा यही है कि हम अिस मोहसे मनको हटाकर अपने हृदयमें ही शौर्य अुत्पन्न करनेके अुपाय काममें लें। परमेश्वरकी कृपा है कि हम चाहें तो वह बल हृदयमें पैदा किया जा सकता है। क्या हम बहुत बार नहीं देखते कि कमजोर और निःसत्त्व मनुष्य भी जोशमें आ जाते हैं, तब भारी खतरेके काम कर डालते हैं? प्राणोंका खतरा जिसमें हो अैसे तूफानमें भी वे कूद पड़ते हैं? क्षणिक क्रोध और मूर्खतामें यदि अैसा जोश पैदा करनेकी शक्ति है, तो देशभक्ति, स्वराज्य हासिल करनेकी तमन्ना, दारिद्रच-पीड़ित जनताके प्रति सेवाकी भावना — आदिसे तो जोशका कितना अटूट स्रोत प्राप्त किया जा सकता है?

यह जोश सौभाग्यसे हममें काफी मात्रामें है। हमारे शूरवीर और त्यागी नेताओंकी छूतसे अुसमें दिनोंदिन वृद्धि हो रही है। परन्तु हमारा जोश अभी तक बहुत अल्पजीवी होता है। हममें वीरताका अुभार तो आता है, पर वह थोड़ी ही देरमें बैठ जाता है। हम लड़ाअी छेड़ने और संकट सहनेके लिअे तैयार तो होते हैं, परन्तु अुस स्थितिमें लंबे समय तक टिक नहीं सकते।

अैसा क्यों होता है? हमें आरामदेह सुख-सुविधाओंमें रचे-पचे रहनेकी आदत पड़ गअी है, और जिस वातसे अिसमें वाधा पैदा होती है अुससे हम विलकुल कायर वन जाते हैं। यह तुरन्त स्वीकार करना हमें अच्छा नहीं लगता, हमें अुसमें शरम आती है। हम अभिमानसे कहते हैं, "रोज हम कैसा भी जीवन क्यों न वितायें — हम कोअी त्यागी या आश्रमवासी नहीं हैं, परन्तु जव पुकार होगी तव पीछे रह जायं तो कहिये।" अिस प्रकार अपने-आपको धोखा देकर हम अपने प्रयत्नमें लापरवाह रहते हैं।

हम जीवनके वारेमें वेपरवाह रहनेको ही मानो अपना धर्म वना लेते हैं; अपने घरको अैश-आराम और भोग-विलासकी भूमि वना देते हैं। खाने-पीनेमें जीभको लाड़ लड़ाना, कामकाजमें आलस्य करना, सुख-सुविधामें किसी प्रकारकी वाधा न होने देना और विषय-भोगकी तृप्ति ही हमारा घरेलू जीवन है। स्वभावमें से वीरता और साहसकी जड़ें खोद डालनेके लिअे अिससे अधिक कारगर जीवन विताना संभव नहीं। हमारे स्वराज्य — स्वतंत्रताके आदर्शोंको और हमारी वीरताको पोषण देनेवाली हवा ही हम वहां नहीं रखते।

अैसे घरेलू जीवनमें मशगूल रहनेसे, छप्परके नीचे वहुत समय तक रखे रहनेवाले पौधेके जैसा फीकापन हमारे स्वभावमें आ गया है। हमारी सहन-शक्ति क्षीण हो गअी है और साहस-वृत्ति मारी गअी है। खाने-पीने वगैराकी शारीरिक सुविधाओंके सामने हम जो लाचार हो गये हैं और सीधा संवंध न वता सकें तो भी मारका और मौतका हम लोगोंमें जो वड़ा डर घुस गया है, वह भी अिस भोगमय गृह-जीवनका ही परिणाम है।

अिसलिअे चाहे जैसा जीवन विता कर भी हम अपनी देशभक्ति और वीरताको कायम रख लेंगे, अैसा अभिमान न रखकर अपने दैनिक जीवनमें अुन्हें दिनोंदिन अधिक पुष्ट करनेकी सावधानी रखना ही अच्छा है। दैनिक जीवनकी रचना अपरिग्रह, व्रह्मचर्य, अस्वाद और शरीर-श्रमके सिद्धान्तों पर करनेसे हम अपने भीतर शौर्यका — अभयका गुण विकसित कर सकते हैं।

हमारी अुगती सन्तानोंको अैसा स्वस्थ घरेलू जीवन न मिलनेके कारण खतरों-भरी और लंवे कष्ट-सहनकी लड़ाअीके प्रति अरुचि और मृत्युका भय अुनकी हड्डियोंमें रम जाता है। अुठकर खड़े होते ही अुन्हें कुछ कर दिखानेकी चिन्ता कुतरने लगती है। छोटे वच्चे भी वीमार मां-वापकी सेवाका कर्तव्य छोड़ देंगे, परन्तु परीक्षा छोड़नेको तैयार नहीं होंगे — अेक साल विगाड़नेका साहस नहीं दिखा सकेंगे। वड़ी अुम्रके विद्यार्थी शुरूमें वीरता दिखाते हैं, परन्तु अुनके मन भी परीक्षाके दिन ज्यों-ज्यों नजदीक आते हैं, त्यों-त्यों ढीले पड़ने लगते हैं। हम माननेको तैयार हों या न हों, परन्तु जव तक दैनिक जीवन भोग और आरामकी वुनियाद पर खड़ा रहेगा, तव तक दीर्घजीवी साहस और शौर्यको पोषण मिलना संभव ही नहीं। शरीर और मन अैन मौके पर पीछे हट जाते हैं और हमसे मनुष्यको शोभा न देनेवाला पलायन कराते हैं।

हमारी मूक ग्राम-जनता अितनी मूढ़ और निराशामय स्थितिमें आ फंसी है कि अुसे अपने दुःखका और वह दुःख कहांसे आया है अिसका पूरा पता ही नहीं है।

अिसलिअे शिक्षितोंको देशभक्ति और आजादीकी भावनाओंसे जो वल मिलता है, वह ग्रामवासियोंके हृदयोंको नहीं हिला सकता। अिस स्थितिसे मुक्त होनेकी शक्ति अुनके भीतर है, अिसका अुन्हें भान ही नहीं होता। अुनकी दरिद्रताने और सरकारी कर्मचारियोंके भयंकर वरतावने अुन्हें भयभीत और लाचार वना दिया है। अुन्हें वीर देशभक्त वनानेके लिअे अेक ही वातकी जरूरत है—अुन्हें नींदसे जगाया जाय, अुनकी स्थितिका अुन्हें भान कराया जाय, और अुनके भीतर सोअी हुअी शक्तिका अुन्हें परिचय कराया जाय। अुन्हें हम जगायेंगे तो अहिंसामय सत्याग्रहका कीमिया अुन्हें तुरंत ही पसन्द आ जायगा। यह चीज जैसी हमें अपरिचित लगती है, वैसी अुन्हें नहीं लगती। वे तो जागे कि समझ लीजिये अुनका भय भागा।

अुन्हें जगाने जाना भी हमारे लिअे अेक वहादुरीका ही काम है। हमारा अखवारोंका शोरगुल अुन तक नहीं पहुंचेगा। हमारे भाषण वे समझेंगे नहीं। भयभीत दशाके कारण अुन्हें हम पर और हमारी जवानी वातों पर तुरन्त विश्वास नहीं होता। सवसे डरकर रहनेकी आदतवाले ये लोग हमसे भी डरकर चलनेमें ही अपनी सलामती मानते हैं। अुन्हें जगानेके लिअे अुनके वीच जाकर हमें अुन्हींके जैसे वनकर रहना होगा, अुनके साथ वसकर अुनके चारों तरफसे छिन्न-भिन्न जीवनकी पुनर्रचना करनी होगी।

यह तभी किया जा सकता है, जव हम सुख-सुविधा और भोग-विलाससे भरे घरोंकी ठंडी छाया छोड़नेका शौर्य धारण करें, परीक्षाओं और यशको गंवा देनेका भय छोड़ दें। अिसमें साहस और शौर्यकी जरूरत पड़ेगी। सत्याग्रहके समय जो शौर्य हमें धोखा देता है, वह क्या अिस काममें हमारा साथ देगा? यह शौर्य पैदा करनेके लिअे भी भोगी, कामी और सुख-सुविधाका जीवन छोड़कर सैनिक जीवन वितानेकी आदत डालनी पड़ेगी।

रचनात्मक कामके लिअे ग्राम-जीवन अंगीकार करनेमें हमें दोहरा लाभ है। वहां हमें लोगोंका जीवन वनानेके साथ अपना जीवन वनानेका भी अवसर मिल जाता है। आज हम गांवोंमें सेवकके रूपमें वसनेका शौर्य दिखायेंगे, तो वहांका निवास हमें अपनेमें पूर्ण सत्याग्रहीका शौर्य—प्राण निछावर करने तकका शौर्य पैदा करनेमें सहायक सिद्ध होगा। हमें जो अभय अथवा शौर्य चाहिये, अुसे पैदा करनेका यही अेक तरीका है। शस्त्र धारण करना या फौजी पोशाक पहनना अुसे पैदा करनेका सही तरीका नहीं है।

७. विशाल स्वदेशी

स्वदेशी आन्दोलन हमारे देशमें किस प्रकार शुरू हुआ और वढ़ता गया, अिसके वर्णनमें आज मुझे नहीं जाना है। अुसकी सामान्य जानकारी आप सवको है ही। अुसके परिणामस्वरूप ही तो हम सवमें स्वदेश-भक्तिकी भावना पैदा हुअी है।

परन्तु केवल भावना अुत्पन्न होनेसे ही हम संतोष नहीं कर सकते। अिस भावनाका विकास करते करते हम अुसे अितनी अुत्कट वना लेना चाहते हैं कि स्वदेशके खातिर किसी भी हद तक त्याग या कष्ट सहन करनेमें हम कभी पीछे

न रहें, स्वदेशके नाम पर सारी जिन्दगी बेघरबार बनकर भटकना पड़े या कारावासमें सड़ना पड़े, तो भी हमें कभी कायरताका विचार न आये, स्वदेशका कार्य करनेके लिअे स्कूल-कॉलेजकी पढ़ाअीका त्याग करने, साहित्य-विलासकी कुर्बानी करने, तथा यश और कीर्तिको आग लगा देनेका हमें कभी पछतावा न हो, देशके चरणोंमें सिर चढ़ा देना हमें देवताको फूल चढ़ाने जैसा आसान लगे।

स्वदेश-भक्तिकी भावनाको अितनी तीव्र बनाना केवल देशभक्तिके गीत गानेसे, नारे लगानेसे अथवा राष्ट्रीय साहित्य पढ़ते रहनेसे भी संभव नहीं होगा। अिसके लिअे तो हमें अपने दैनिक जीवनमें स्वदेशीपन अर्थात् व्यवहारमें देशके प्रति भक्ति प्रगट करनेका आग्रह पैदा करना होगा।

हम अपने जीवनकी जांच करें तो मालूम होगा कि मौखिक भक्ति, अथवा गीत गानेकी भक्ति होने पर भी क्रियात्मक देशभक्तिमें हम बहुत ढीले हैं।

हम कहते हैं कि हमारे गांव ही हमारा देश हैं, पर अुन स्वदेशी गांवोंमें बसनेकी नौबत आ जाय तो वहांकी दरिद्रता, गंदगी, बीमारी, सभ्यताके साधनोंका अभाव वगैरासे थोड़े ही समयमें हम अूब जाते हैं।

हम अपने स्वदेश-बंधुओंके प्रेमके गीत भी गाते हैं, परन्तु क्या हम अुन अपढ़, भोले, स्वदेशी ग्रामवासियोंके साथ अेकजीव बनकर रह सकते हैं? अुनके साथ रहकर, अुनके जैसी असुविधायें भोगकर, अुनके जैसा मेहनती जीवन बिताकर, अुनके हास्य-विनोदमें शरीक होकर, अुनके साथ हृदयकी गांठ बांधकर हम अपना प्रेम प्रगट कर सकते हैं? हम अुनके प्रति अेक प्रकारकी अरुचि, अुनके सहवाससे अुकताहट दिखाये बिना शायद ही रह सकते हैं।

हमारी स्वदेशी भाषाओंको ही लीजिये। वे हमें प्रिय हों तो अुनके लिअे अपना प्रेम हम किस अमली ढंगसे प्रगट करते हैं? क्या हमने परिश्रम करके राष्ट्रभाषा सीख ली है? क्या हम अंग्रेजीमें बोलकर अपने ग्रामवासियों पर अेक प्रकारका रोब जमानेका अभिमान छोड़ते हैं? क्या हम बोलने और लिखनेमें स्वदेशी भाषाके लिअे सजीव आग्रह रखते हैं?

और यदि हमें स्वदेशीका सच्चा अभिमान हो, तो क्या स्वदेशी बनावटकी चीजों पर हमारा स्वाभाविक प्रेम है? हम अपने व्यक्तिगत जीवनमें स्वदेशी वस्तुअें ही काममें लेनेका कितना अुत्कट आग्रह रखते हैं, अिसी परसे हमारे स्वदेश-प्रेमका अंदाज लगाया जा सकता है, मुंहसे बताये जानेवाले प्रेमसे हरगिज नहीं।

हम जानते हैं कि हमारे देशके अुद्योग-धंधे नष्ट हो गये हैं और अुन्हें हर प्रकारसे प्रोत्साहन देना चाहिये। फिर भी हम मशीनोंकी चमकीली वस्तुअें अिस्तेमाल करनेके शौकीन बन गये हैं। हमें गांवोंमें बनी हुअी खादी मोटी लगती है; गांवोंके जूते पैरोंमें काटते हैं; कुम्हारके कवेलूके बदले छत पर टीन डालना अच्छा लगता है; अपने शौकके लिअे चाहे जितनी महंगी टोपी, धोती, कोट, जूते और फाअुन्टेनपेन वगैरा खरीदनेमें सस्ते-महंगेका सवाल कभी बाधक नहीं होता; परन्तु

स्वदेशी ग्रामोद्योगोंको प्रोत्साहन देनेके लिअे गांवके जुलाहेको मिलसे दो पैसे अधिक देनेका मौका आने पर हमारी अुदारता न जाने कहां चली जाती है? अैसे व्यवहारोंमें प्रगट होनेवाली ढीली देशभक्ति महान संकटोंके समय हमारा साथ कैसे दे सकती है?

स्वदेशी लोग, स्वदेशी गांव, स्वदेशी भाषाअें, स्वदेशी अुद्योग-धंधे आदिके क्षेत्रोंमें अपने दैनिक जीवनको स्वदेश-भक्तिसे रंग देना, अपने नीचे दरजेके शौकोंको अुसमें बाधक न बनने देना — हमारी आत्म-रचनाका अेक बड़ा जरूरी क्रियात्मक भाग है।

८. अूंचनीच-भेदका जहर

[अस्पृश्यता-निवारण]

अस्पृश्यता-निवारणके संबंधमें आप अैसा विवाद अुठायेंगे: "देशसेवाकी भावनावाले तथा सत्याग्रहके सैनिक बननेकी तमन्नावाले हम लोगोंको भी आप अस्पृश्यता-निवारणका अुपदेश करेंगे? क्या आप यह मान लेंगे कि हम अितना भी नहीं समझते?" परंतु अिस विषयमें आप जितना समझते होंगे अुससे कहीं गहरे हमें अुतरना होगा। हम जितना कुछ जानते हैं अुतना और अुससे भी बहुत अधिक जीवनमें अुतारना होगा और वह सब आधे मनसे नहीं, परंतु सच्चे हृदयसे अुतारना होगा।

हरिजनोंको छूनेमें हम आपत्ति न मानें और अुन्हें 'हरिजन' के नामसे पुकारें, सिर्फ अितनेसे ही काम नहीं चल सकता। हमें अिस सिद्धान्तके मर्ममें अुतरकर अुसका अैसा पालन करना होगा कि अुससे हमारी आत्म-रचना हो और अुसके फलस्वरूप हममें स्वराज्य-रचनाका बल अुत्पन्न हो।

हरिजनोंका स्पर्श करनेका अर्थ केवल अुनका स्पर्श करना ही नहीं है, परंतु अुन्हें अपना लेना है। अुनके मनमें यह खयाल ही न रहना चाहिये कि वे अलग हैं या दूसरोंसे नीचे हैं। तभी यह कहा जा सकता है कि हमने अस्पृश्यता-निवारणके सिद्धान्त पर सचमुच अमल किया है। हमारे सच्चे अमलकी परीक्षा यही है कि अुसके फलस्वरूप हरिजन अन्य भारतीयोंकी तरह खुद भारतीय होनेका अभिमान करने लगें और स्वराज्यके कार्यमें सबके साथ कंधेसे कंधा मिलाकर जुट जायं। अंग्रेज भी अुनके और हमारे बीच फूट न डाल सकें; हमारे लिअे हरिजनोंके मनमें बिलकुल अविश्वास न रह जाय।

यह परिणाम अूपर अूपरकी 'दिखावटी' सेवासे नहीं लाया जा सकता। अुन्हें छूना, अुन्हें सभाओं और पाठशालाओंमें स्थान देना, अुनके मुहल्लोंमें कभी कभी सभा या भजन करने जाना ही काफी नहीं होगा। अुन्हें छात्रवृत्तियां देकर पढ़नेमें मदद करना और नौकरियां दिलाना भी काफी नहीं होगा।

कुअें और मंदिर अभी तक अुनके लिअे खुले नहीं हैं। सवर्णोंमें बड़ा विरोध खड़ा हो जायगा और बड़ी लड़ाअी छिड़ जायगी, अिस डरसे अिस प्रश्नको हमने अेक तरफ डाल दिया है। कहीं कहीं अुनके लिअे हम अलग कुअें, अलग पाठशालाअें और अलग मंदिर बनवाते हैं, परंतु यह तो दयाभावसे की जानेवाली सेवा हुअी। हमें तो

अुन्हें न्याय देना है; अुनका दुःख ही नहीं मिटाना है, परन्तु अुनके अपमान और तिरस्कार भी मिटाने हैं। अुनके लिअे कुअें और मंदिर खुलवानेका आन्दोलन हम पूरे वेगसे छेड़ेंगे और अुसमें तीव्र सत्याग्रह करके बलिदान देनेको तैयार होंगे, तभी हरिजनोंके अन्तरमें हमारे प्रति रहा अविश्वास हटेगा।

हमारे मनमें भेदभावका जहर जरा भी न रहने देनेके लिअे हमें अपने दैनिक जीवनमें सावधानी रखनी पड़ेगी। छोटासा बच्चा भी, अुसके साथ बोलने और खाने-पीनेमें भेदभाव बरता जाय तो, अुसे समझे बिना नहीं रहता। तो हरिजन हमारी आंखों परसे हमारे मनके भीतरका भेदभाव समझे बिना कैसे रह सकते हैं? क्या हम अुन्हें अपने घरमें प्रेमसे बुलाते हैं? क्या अुन्हें साथ बिठाकर खिलाते समय हमारे मनकी गहराअीमें शंका नहीं रहती है? क्या अुनके बालकोंके साथ हमारे बालक खेलें, तो हम भीतर ही भीतर नाराज नहीं होते हैं? क्या हमें भीतर ही भीतर यह शंका नहीं रहती है कि अुनके बच्चोंके साथ खेलनेसे हमारे बच्चोंमें बुरे संस्कार पड़ेंगे? क्या हम चुपके-चुपके अपने बच्चोंको अैसा न करनेकी सीख नहीं देते हैं? अैसा भेदभाव हममें जरा भी होगा तब तक हम हरिजनोंके अन्तरमें विश्वास, प्रेम और मैत्री कैसे पैदा कर सकेंगे? अुन्हें पैदा करनेके लिअे तो हममें से बहुतोंको अुनके बीच रह कर जीवन अर्पण करना पड़ेगा, अुनके धन्धे सीखने पड़ेंगे, अुन्हें अच्छीसे अच्छी शिक्षा देनी पड़ेगी। अुनके साथ बसकर हमें स्वयं यह अनुभव करना पड़ेगा कि अन्याय और तिरस्कार अुन्हें कहां कहां बाधक होते हैं, अछूत होनेके कारण अुन्हें कहां कहां दुःख भोगने पड़ते हैं; और अुनके खातिर आगे बढ़कर सत्याग्रह करने होंगे।

हमारा अस्पृश्यता-निवारणका काम अितना तेजस्वी होगा, तभी अुससे हमारी आत्म-रचना हो सकेगी और हममें स्वराज्यकी शक्ति भी पैदा हो सकेगी।

और अस्पृश्यता-निवारणकी बात तो अिससे भी बहुत अधिक व्यापक है। हमने अूंच-नीचके भेदोंसे सारे समाजके जीवनको जहरीला बना दिया है। हमारे गांवोंमें रहनेवाले दुःखी, दरिद्री देशबंधुओंको हम छूते तो हैं, परंतु और सब तरहसे अुनके साथ कैसा अशिष्टता और अपमानका बरताव करते हैं? हमने अुनके जो नाम रखे हैं, अुनसे हमारे मनका मैल पहचान लिया जाता है। हम किसीको 'कालीपरज' कहते हैं, किसीको 'दुबला', किसीको 'धाराला', तो किसीको 'वाघरी'* कहते हैं। अुन्हें हम शूद्र और मजदूर मानते हैं। अुन्हें सम्मानसे बुलानेकी तो बात ही क्या, हम अुन्हें मनुष्य ही नहीं गिनते। गांवकी आबादीकी गिनती करते हैं, तब अुनकी संख्या हमें याद ही नहीं आती। गांवके प्रश्नों पर विचार करने बैठते हैं, तब अुनके सवालोंका हमें खयाल ही नहीं आता। देशके आन्दोलनोंमें भी हम अुन्हें सदा टालते रहते हैं। हमारे मनमें और हमारी बातोंमें सदा यही भाव रहता है कि अुनके जन्मके संस्कार कभी नहीं मिटेंगे, वे कभी नहीं सुधरेंगे।

---

* ये सब गांवकी हलकी मानी जानेवाली आदिम जातियोंके तिरस्कारसूचक गुजराती नाम हैं।

हमारे अैसे व्यवहारकी जड़ वहुत छिपी हुअी नहीं है। हम जानते हैं कि अुनकी मेहनतके शोपण पर ही हमारे सव धंधे चल रहे हैं। जव तक वे अज्ञानमें डूवे रहेंगे, स्वतंत्रताके विचारोंसे दूर रहेंगे, तभी तक हमारा अैसा व्यवहार वे सहन करेंगे। अिसलिअे अिन वर्गोमें शिक्षा, शरावबंदी, जाति-सुधार और कताअी-वुनाअी जैसे रचनात्मक काम कोअी करता है तो हम वहुत चौंक जाते हैं। हमें डर लगता है कि अिन निर्दोप मालूम होनेवाली प्रवृत्तियोंसे अुन लोगोंका ज्ञान वढ़ जायगा और वे स्वतंत्र स्वभावके वन जायंगे। अुनके वीच सीधा स्वराज्यका आन्दोलन कोअी छेड़े, तव तो हमें वह अति भयंकर अुत्तेजना जैसी ही लगती है।

भेदभावका यह हलाहल जहर हमारी जनतामें स्वराज्यकी शक्ति कैसे आने देगा? हमारे देशकी अधिकांश आवादी अैसे लोगोंकी ही है। अुनके आगे आनेसे यदि हम चौंकें, तो हम थोड़े पढ़े-लिखे लोग स्वराज्यकी रचना कैसे कर सकेंगे?

हम सेवकोंको, जैसा काम हम अछूतोंमें करते हैं, वैसा ही अिन सव पिछड़े हुअे वर्गोमें भी करना होगा। जव तक अुन सवके साथ हमारे संवंध नहीं सुधरेंगे, अुन सवका प्रेम और विश्वास हम सम्पादन नहीं करेंगे, अुन सवको स्वराज्यकी लगन नहीं लगायेंगे, तव तक हमारी अपनी और हमारे स्वराज्यकी रचना भी कच्ची ही रहेगी।

९. सच्ची धार्मिकता

[सर्वधर्म-समभाव]

हमारा ग्यारहवां सिद्धान्त सर्वधर्म-समभावका है। आप कहेंगे: "हम स्वराज्यके योद्धा हैं; हम मानते हैं कि राजनीतिक मामलोंमें धर्मका नाम नहीं होना चाहिये। हम अिस मामलेमें अपने धर्मको वीचमें नहीं लाते और दूसरोंके वारेमें भी अिस वातकी परवाह नहीं करते कि कौन किस धर्मका पालन करता है अथवा किसी भी धर्मका पालन करता है या नहीं। अिसलिअे हमारे सामने धर्मकी वात ही आप क्यों करते हैं?"

धर्मके मामलेमें सचमुच अैसा अनासक्त रुख हम सवका होता, तव तो वहुत अच्छा होता। परंतु देशमें हिन्दू, मुसलमान वगैरा अलग अलग धर्मोका पालन करनेवाली जातियोंके वीच अविश्वास और अप्रेमका जो वातावरण फैला हुआ है, अुससे क्या सिद्ध होता है? यही कि हमारे दिल साफ नहीं हैं, हम सवको अपना-अपना धर्म दूसरोंके धर्मसे अूंचा लगता है, मौके-वेमौके हम अपना सिर अूंचा अुठाकर और छाती फुलाकर कहते हैं कि हमारा धर्म सवसे अूंचा है — हमारी संस्कृति सवसे अूंची है।

अिस तरह अभिमान करनेका हमारा आशय तो यही है कि हम अन्य सव धर्मवालोंसे कहते हैं: "तुम सव अभागी कौम हो, तुम्हारा जन्म हलके दरजेके धर्ममें हुआ है, तुम्हें नीचे दरजेकी संस्कृतिका अुत्तराधिकार मिला है।" हमारी अिस रायका अधिक पृथक्करण करें, तो अुसका सार अैसा निकलेगा मानो हम अन्य धर्मवालोंसे कहते हों: "तुम जन्मसे ही हर तरह हमसे नीचे हो, अिसलिअे देशमें हमेशा हमसे नीचे रहनेको

ही तुम बनाये गये हो। राजकाज, कला और अुद्योग, विद्वत्ता और धन-वैभव सभी बातोंमें हम अूंचे धर्मवाले अूंचे स्थानों पर ही सुशोभित होंगे और तुम नीचे लोग नीचे स्थान पर ही शोभा दोगे।"

कोअी भी स्वाभिमानी मनुष्य या स्वाभिमानी जाति अपने पड़ोसियोंका अैसा अभिमान कैसे सहन कर सकती है? क्या हम अीमानदारीसे कह सकेंगे कि यह अभिमान हमारे मनमें, हमारी वाणीमें और हमारे व्यवहारमें जरा भी नहीं है? साधारण लोगोंकी बात छोड़ दें, साम्प्रदायिक हलचल करनेवालोंकी बात भी जाने दें; परंतु हम सेवक, स्वराज्यके सैनिक, भी क्या छाती ठोककर यह दावा कर सकते हैं कि हम अिस अभिमानसे सर्वथा मुक्त हैं? अिस अभिमानके जहरको हमारे व्यक्तिगत जीवनसे निर्मूल कर डालना हमारी आत्म-रचनाका अेक अत्यन्त आवश्यक कार्य है। अिस बारेमें जब तक हम अपने जीवनको शुद्ध नहीं बनायेंगे और अपने जीवनकी बुनियाद असत्य और राग-द्वेष पर रखेंगे, तब तक हमारी जनतामें स्वराज्यकी शक्ति कभी पैदा नहीं हो सकेगी; हम अपनी सत्याग्रहकी लड़ाअियोंमें भी कभी सच्चा प्रभाव पैदा नहीं कर सकेंगे।

सच पूछें तो अिस प्रकार अपने धर्मका अभिमान करना और दूसरोंके लिअे मनमें तिरस्कारका भाव रखना धर्मनिष्ठ मनुष्यका लक्षण हो ही नहीं सकता। अैसे मनुष्यको यदि धर्मनिष्ठका पद दिया जाय, तो दुनियामें अधर्मी किसे कहेंगे? संसारके किसी भी धर्ममें अैसी वृत्तिकी निन्दा की जाती है और अैसी वृत्तिको जीतनेवाले मनुष्यके लिअे लोगोंमें पूज्यभाव होता है।

जो सच्चे धार्मिक मनुष्य होते हैं, वे भले किसी भी धर्मका पालन करते हों, परंतु अुनका व्यवहार और अुनके विचार हमेशा अेकसे ही होते हैं। सब धर्मोंके सच्चे धर्मनिष्ठ मनुष्य सत्यनिष्ठ होते हैं, सब जीवोंके लिअे अुनके हृदयमें प्रेमकी धारा बहा करती है, वे सबमें भगवानका वास देखते हैं, तथा सब तरहके अभिमानसे मुक्त, व्यसनोंसे अछूते, नम्र और भक्तिपरायण होते हैं। अुनके जीवन संयमी होते हैं। और किसी भी धर्मके अूंचे चरित्रवाले ज्ञानी साधु-संतोंको देखकर अुनके अन्तरमें पूज्यभाव प्रगट होता है। अपने-अपने धर्मोंके रिवाजके अनुसार भले ही वे अलग अलग पैगम्बरों और धर्मग्रंथोंको मानें, भले ही कोअी मक्काका हज करे और कोअी गंगा-यात्रा करे, भले ही कोअी मंदिरमें पूजा करे और कोअी मस्जिदमें नमाज पढ़े, भले ही पोशाक और दूसरे चिह्न वे अपनी अपनी परम्पराओंके अनुसार धारण करते हों, परंतु अूपर बताये हुअे लक्षणोंमें तो वे हमेशा अेकरूप ही होते हैं। अुनमें धर्मके नाम पर झगड़ा करनेकी वृत्ति ही नहीं होती।

परन्तु धार्मिक मनुष्य स्वधर्मके मामलेमें रूखे, सूखे और अुदासीन भी नहीं होते। अुन्हें अपने धर्मके प्रति अत्यन्त ममता होती है, अपने पैगम्बरके लिअे अत्यन्त भक्ति भी होती है। जिनके जीवन और वचनामृतसे वे सदा प्रेरणाका पान करते हैं, अुनके लिअे अुनके मनमें भक्ति क्यों न हो? जो कोअी मिले अुसीको अपने धर्मका और

अपने पैगम्वरका प्रेरक सन्देश समझानेका अुत्साह भी अुनमें क्यों न अुमड़े? परन्तु अिससे अुनमें दूसरोंके धर्म आदिको घटिया समझनेकी मति पैदा नहीं होती। अुलटे वे अपने अुदाहरणसे अिस वातको समझ सकते हैं कि दूसरोंको अुनके धर्म, पैगम्वर वगैरा कितने प्यारे होंगे। और अिसलिअे वे वहुत ही सावधानीसे अेक-दूसरेकी भावनाओंका आदर करते हैं।

सचमुच दो अलग अलग धर्मोंके सच्चे धर्मनिष्ठ मनुष्य जव अिकट्ठे होते हैं, तव अेक-दूसरेके प्रति अुनका व्यवहार देखने लायक होता है। वे अेक-दूसरेकी भावनाओंका और परम्पराओंका कितनी सूक्ष्मतासे, कितनी सावधानीसे आदर करते हैं? किसी हिन्दू महात्माके घर कोअी मुस्लिम फकीर पधारते हैं, तव वे कैसा व्यवहार करते हैं? नमस्कार करनेमें वे मुस्लिम पद्धति काममें लेते हैं; आसन, खानपान आदिमें अुनके रीति-रिवाजोंके अनुकूल वननेका प्रयत्न करते हैं; आपसमें धर्म-संवाद करते हैं तो अुसमें मुस्लिम धर्मशास्त्रोंका विशेष आदर-सम्मान करते हैं। खुद मूर्तियोंकी पूजा करनेवाले हों, तो भी अुस दिन मूर्तियोंको वीचमें लाकर अेक-दूसरेके मनमें विक्षेप पैदा नहीं होने देते। प्रार्थना करते हैं, तो अुसमें अुस दिन खास तौर पर मुस्लिम संतोंके भजन पसंद करते हैं और तीव्र स्वरोंके वाद्योंको शान्त रहने देते हैं।

अिसी प्रकार किसी मुस्लिम धर्मात्माके यहां हिन्दू सन्तका जाना होता है, तव हिन्दुओंके आचार-विचार, रुचि-अरुचिका खयाल रखकर हिन्दू सन्तकी आवभगत की जाती है। अुस दिन घरमें मांसाहार वन्द रखा जाता है। अेक थालीमें खानेका रिवाज अुस दिनके लिअे स्थगित रखकर सवको अलग अलग थालियोंमें परोसा जाता है। मेहमान पूजापाठ करनेवाला हो तो अुसके लिअे घरमें अेक शान्त कोना सजा दिया जाता है। नमाजके समय अुसके लिअे वैठनेका आसन विछा दिया जाता है और शायद नमाजके वाद दो शव्द कहनेकी प्रार्थना करके अुसे वाज पढ़नेका वड़ा सम्मान भी दिया जाता है।

अैसे दृश्य सचमुच वहुत अद्‌भुत और पवित्र होते हैं। वे अैसे होते हैं कि अुनकी खूवी देखकर जी भरता ही नहीं। अुनमें कितनी वारीकी और कितनी सूक्ष्मता होती है! अेक-दूसरेके प्रति कितनी हृदयपूर्ण शिष्टता होती है! अेक-दूसरेकी भावनाको समझकर अुसके अनुकूल वननेका कितना हार्दिक प्रयत्न होता है! अहिंसाका, आदरका, प्रेमका अिससे अुत्तम नमूना मिलना मुश्किल है।

यह तो हमने अुन प्रसंगोंकी कल्पना की, जव धर्मात्माके घर धर्मात्मा जाता है। परन्तु आप यह न मानें कि कोअी समूची जाति अन्यधर्मी जातिके प्रति अैसा वढ़िया वर्ताव नहीं रख सकती। कुदरतका अैसा कोअी कानून नहीं है कि जाति-जातिके वीच हमेशा आजके जैसा वैर ही होना चाहिये, या आजके जैसा अविश्वास ही होना चाहिये। वहुत वार जातियांकी जातियां देशभक्तिके ज्वारमें अथवा अुनके वीच किसी महात्माके आ जानेसे धार्मिक वृत्तिवाली वन जाती हैं। हमारे देशमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, अीसाअी, सिक्ख वगैरा अलग अलग धर्मोंका पालन करनेवाली जातियोंके मामलेमें कअी वार

अैसा हुआ है। अितना ही नहीं, हालके कुछ वर्षोंके झगड़ोंको छोड़ दें, तो ज्यादातर अैसा प्रेम-सम्बन्ध ही अुनके बीच रहा है। वैसे समयमें हिन्दुओंके प्रति प्रेम और शिष्टता दिखानेके लिअे मुसलमानोंने गोमांसका त्याग किया है, हिन्दुओंने मुसलमानोंकी भावनाओंके खातिर अपने अुत्सवों और मंदिरोंमें बाजे बजाना बन्द रखा है, हिन्दुओंकी धर्म-सभाओंमें मुस्लिम महात्माओंका अुपदेश हुआ है और मुसलमानोंकी सभाओंमें हिन्दू महात्माओंका अुपदेश हुआ है। मुसलमानोंकी धार्मिक लड़ाअियोंमें अन्य सब धर्म-समाजोंने भाग लिया है; सिक्खोंकी धार्मिक लड़ाअियां छिड़ीं, तब भी अुनमें सबने भाग लिया है। आजके बिगड़े हुअे दिनोंमें हमें यह सब सपने जैसा लगता है। परन्तु हम अपने देशका अितिहास देखें, तो हमेशा अैसा ही होता आया है।

हम सेवक दूसरे धर्मोंके सम्बन्धमें कैसी भावना रखें, दूसरे धर्मावलम्बियोंके प्रति कैसा प्रेम और शिष्टाचार रखें, यह सच्चे धार्मिक पुरुषोंके व्यवहारसे हमें समझ लेना चाहिये। अैसी धार्मिकता हम अपनेमें लायेंगे, तो हमारे धर्म हमारे बीच वैरभाव और झगड़े बढ़ानेवाले न रहकर प्रेम और परस्पर सहायताकी ही वृद्धि करेंगे। हम अेक-दूसरेकी सेवाके अवसर ढूंढ़ते ही रहेंगे। वैसे तो किसीकी भी सेवा करनेमें हमें आनन्द आयेगा, परन्तु अन्यधर्मियोंकी सेवाका अवसर जिस दिन मिलेगा, वह दिन तो हमें विशेष सौभाग्यका प्रतीत होगा। हमारे व्यक्तिगत जीवनमें भी हम सब पड़ोसियोंके साथ प्रेम और सहयोग रखेंगे, परन्तु अन्यधर्मियोंके साथ तो कुटुम्बियों जैसा और मित्रताका संबंध बनानेकी खास कोशिश करेंगे; अुनकी भाषा, अुनके धर्मग्रंथ, अुनके रीति-रिवाज अित्यादिका हम आदरपूर्वक अध्ययन करेंगे और अुनकी खूबियां अुनकी दृष्टिसे देखने लगेंगे।

हम देशसेवाके कामोंमें अनेक सेवकोंके साथ मिलकर काम करते हैं और सगे भाअियोंसे भी ज्यादा प्रेमके साथ रहते हैं। अिन साथियोंमें अन्यधर्मी साथी भी हमें मिल जायं, अिसकी हम सदा लालसा रखेंगे और मिल जाने पर अीश्वरका आभार मानकर अुन्हें हर तरहसे प्रेमसे नहला देंगे।

हम पर राजनीतिक और दूसरे कअी कारणोंसे परधर्मी जातियोंका गहरा अविश्वास हो गया है। हमारे अेक भी कार्यको या अेक भी शब्दको जो शंकाके बिना नहीं देख सकते, अुनमें विश्वास पैदा करनेका सच्चा अुपाय यही है। सर्वधर्म-समभावके सिद्धान्तका सच्चा अमल यही है। अिसे ज्यों ज्यों हम अपने जीवनमें अुतारेंगे, त्यों त्यों हमारी अपनी आत्म-रचना होगी, हमारी सत्य और अहिंसा सूक्ष्म और सुन्दर बनेगी और त्यों त्यों सारे देशके लोगोंमें भी स्वराज्यकी शक्ति आने लगेगी।

आप शुरूमें कहते थे कि 'हम तो स्वराज्यके सिपाही हैं, हमें किसी भी धर्मका पालनका नहीं करना है और न हमें अिसकी परवाह है कि दूसरे लोग कौनसे धर्मका पालन करते हैं अथवा किसी भी धर्मका पालन करते हैं या नहीं करते हैं।' परन्तु अैसी लापरवाही हमारे लिअे अुपयोगी नहीं होगी। धर्माभिमानी लोगोंको अैसा लापरवाहीका व्यवहार बहुत ही अपमानजनक लगेगा। आप खुद नमाज पढ़नेकी परवाह भले न

करें, परन्तु जो दूसरे लोग अुसे अपने जीवनमें प्राणोंके समान स्थान देते हैं, अुनकी भावनाकी यदि आप परवाह न करें, तो अुनके साथ अेकात्मता कैसे साध सकते हैं? आपको न केवल अुनकी सुविधाका ध्यान रखना चाहिये, परन्तु व्यक्तिगत रुचि न होते हुअे भी सूक्ष्म शिष्टाचार और आदर दिखानेके लिअे अुनकी नमाज आदिमें साथ देना चाहिये।

और चूंकि धर्माभिमानसे झगड़े पैदा होते हैं, अिसलिअे अुकताकर धर्मोंको ही फेंक देनेको तैयार हो जाना भी गलत रास्ता है। यह तो पगड़ीका बोझ लगनेके कारण सिरको काटकर फेंक देनेके समान है। धर्मोंका पालन करते हुअे लोग जैसे कट्टर धर्माभिमानी बन सकते हैं, वैसे अुनका पालन करते हुअे सच्ची धार्मिक वृत्तिके और चरित्रवान भी बनते हैं। और हमें स्वराज्यका अैसा ही निर्माण करना है, जिसमें अैसी धार्मिक वृत्तिका शुद्ध चरित्रवाला जीवन वितानेकी सब लोगोंको पूरी अनुकूलता मिले। अिसलिअे धर्मके नामसे ही अरुचि रखना हमारे लिअे कभी लाभदायी नहीं हो सकता।

धर्म तो हमारी कल्पनाके स्वराज्यके लिअे अत्यन्त पोषक सिद्ध होगा। अिसी अर्थमें हम स्वराज्यको बहुत बार रामराज्य अथवा धर्मराज्यका नाम देते हैं। रामराज्यका अर्थ अैसा राज्य नहीं, जिसमें गांव-गांवमें राम-मंदिर स्थापित किये जायंगे और रामानंदी तिलकधारी महंतोंके भण्डार चलते रहेंगे। धर्मराज्यका अर्थ मंदिरों, मसजिदों और गिरजाघरोंका राज्य नहीं और न माला, पूजा, नमाज, आदिमें दिनभर वितानेका सब लोगोंको हुक्म देनेवाला राज्य ही है। रामराज्य द्वारा हम यह बताना चाहते हैं कि हमारे स्वराज्यमें हम राज्यसत्ताका तेजस्वी शस्त्र केवल श्री रामचन्द्र जैसे परम धार्मिक वृत्तिवाले, कर्तव्य-निष्ठ, सर्वथा निर्दोष चरित्रवाले लोगोंके हाथमें ही सौंपेंगे। 'धर्मराज्य' शब्द द्वारा हम यह सूचित करना चाहते हैं कि हमारे स्वराज्यमें हम अैसी परिस्थितियां पैदा करेंगे, जिनमें लोगोंके भीतर सत्य, प्रेम और ज्ञानके गुण विकसित होंगे, जिनमें लोगोंकी वृत्ति संयमी, मेहनती और सेवापरायण जीवनकी तरफ रहेगी और जिनमें लोग अैसे शूरवीर बनेंगे कि अपने सिद्धान्तोंके खातिर धार्मिक जोशके साथ सत्याग्रह छेड़नेको सदा तत्पर रहेंगे।

आज झगड़ों, वैरभाव और शंकाके कीड़े जन-जीवनको कुरेदकर खा रहे हैं। अिनके साथ भिन्न भिन्न धर्मोंके नाम जोड़ दिये जाते हैं, परन्तु अिन झगड़ोंके साथ सच्चे धर्मका कोअी सम्बंध नहीं होता। यह तो अलग अलग कौमोंके बीच राजकाजमें अधिक सत्ता हथियानेकी छीनाझपटी मची हुअी है। छोटी कौमें अपना संख्याबल बढ़ाकर, धन-दौलतकी ताकत बढ़ाकर, अधिक सत्ता प्राप्त करनेके लिअे तरह तरहकी तिकड़में कर रही हैं; बड़ी कौमें बहुमतका लाभ हाथसे निकलने न देनेके लिअे साजिशें कर रही हैं। आज तो सत्ता बढ़ानेका अेक ही साधन है — विदेशी हुकूमतका आश्रय प्राप्त करना, अैसी कोअी तरकीब करना जिससे अुसकी कृपा अपने ही हिस्सेमें आये और दूसरी कौमोंके हिस्सेमें न जाने पाये।

विदेशी हुकूमत भी मौका देखकर अपना दाव फेंकती रहती है, और कभी अिसे और कभी अुसे चढ़ाती रहती है। अन्तमें तो अिससे दोनोंका बना हुआ राष्ट्र-शरीर निर्बल होता है और विदेशी हुकूमतकी जड़ें ही मजबूत बनती हैं। धर्ममें प्राणोंकी बलि देने तकका जोश पैदा कर देनेकी जो अजीब ताकत है, अुससे चालाक नेता लाभ अुठाते हैं और कोअी न कोअी धार्मिक कारण तथा सूत्र सामने रखकर अपनी भोली-भाली कौमोंमें जोश पैदा कर देते हैं। गोपूजाके बहाने हिन्दू नेता अपनी कौमको अुकसाते हैं और नमाजकी शान्तिके बहाने मुस्लिम नेता अपनी कौमको पागल बनाते हैं। परंतु जरा गहरे अुतरें तो तुरन्त दिखाअी देता है कि गायके नाम पर धर्मान्ध बनकर झगड़े करनेवाले हिन्दुओंमें गो-पूजाके सच्चे धर्मका कोअी पालन नहीं करता। हिन्दुओंके घरमें गो-वंश जितना दुःखी होता है अुतना और कहीं नहीं होता होगा। गायकी अुपेक्षा करके भैंसका दूध लेनेमें या गोपुत्रको तीखी आर चुभानेमें अुन्हें धर्म नहीं रोकता। नमाजकी शांतिके लिअे लड़ाअी करनेको तैयार हो जानेवाले मुसलमानोंमें नमाजके समय कितने लोग अेकाग्र और भक्तिपरायण रह सकते होंगे?

किसी भी धर्मका अुद्देश्य अपने अनुयायियोंको सत्य, जीवदया, मनुष्य-प्रेम, सेवा, संयम और अीश्वर-भक्ति वगैरा सिखाना ही होता है। धर्मके नाम पर पत्थर या छुरियां चलानेवाले लोगोंमें अैसी धार्मिकता नहीं हो सकती। सच्चे धर्म-परायण लोग अैसे क्रूर हो ही नहीं सकते; अितने अज्ञानी भी नहीं हो सकते। अुनके हृदयोंमें वैरका बीज कभी नहीं अुग सकता। अिसके विपरीत वे आसपासके वैर-द्वेषको शान्त करनेवाले ही होते हैं।

भयंकरसे भयंकर साम्प्रदायिक दंगोंके समय भी हर सम्प्रदायमें अैसे धार्मिक वृत्तिके पुरुषोंके अुदाहरण देखनेको मिलते हैं, जो जानको खतरेमें डालकर भी सच्चे धर्मका पालन करते हैं, संकटमें फंसे हुअे अन्यधर्मियोंको प्रेमसे आश्रय देते हैं, अुन्हें सलामतीके साथ घर पहुंचाते हैं; अपनी जातिकी अुन्मत्त भीड़को अुलाहना देकर शान्त करने निकल पड़ते हैं। कौम और धर्मके नाम पर होनेवाले झगड़ोंमें धर्मका दर्शन करना हो तो वह अैसे, कहीं कहीं दूर कोनेमें होनेवाले, धार्मिक वृत्तिके सज्जनोंके कार्योंमें ही होता है। जहां दंगा-फसाद चलता हो वहां और अखबारोंके स्तम्भोंमें जिस प्रकारकी घटनाओंका वर्णन हम देखते हैं अुनका धर्मके साथ कोअी सम्बन्ध नहीं होता। अुन्हें धर्मके नामके साथ गलत तौर पर जोड़ दिया जाता है। वे तो शुद्ध राजनीतिक और आर्थिक दंगे होते हैं, और किसी भी धर्मके विरोधी होते हैं।

यह समझकर धर्मके नामके प्रति घृणा पैदा कर लेना हमारे लिअे ठीक नहीं है। हम सेवकोंको अपने व्यक्तिगत जीवनमें सच्ची धार्मिक भावना पैदा करनेका प्रयत्न करना चाहिये। हम अपना हृदय अितना शुद्ध कर लें कि अुसमें कितना ही कपटी मनुष्य भी अन्य किसीके प्रति वैरभाव अुत्पन्न न कर सके। अपना जीवन हम अितना शुद्ध बना लें कि कितने ही जनूनी लोगोंमें भी हमारे प्रति वैरवृत्ति जाग्रत न हो। हम धार्मिक वृत्तिके लोग सर्वधर्म-समभावका सिद्धान्त जीवनमें पालेंगे, अिसलिअे कैसी

भी हालतोंमें, अेक-दूसरेके विरुद्ध कितना ही क्यों न भड़काया जाय, तो भी हम आपसका प्रेम नहीं छोड़ेंगे, अेक-दूसरे पर शंका नहीं करेंगे। हमारे जन-जीवनको हम सदा निर्मल, शान्त और प्राणवान बनाये रखेंगे। हमारी यह श्रद्धा है कि धार्मिक वृत्तिके थोड़ेसे लोगोंका जीवन भी अुनकी कौमके समग्र वातावरण पर असर डाले बिना नहीं रहता।

धर्मोंके बीच, कौमोंके बीच, अैसे समभावकी वृत्ति हम अपने व्यक्तिगत जीवनमें विकसित कर लें, तो अुससे स्वराज्यकी कितनी प्रबल शक्ति पैदा हो सकती है, यह समझना कठिन नहीं है।

प्रवचन ७४

आत्म-रचनाका त्रिविध फल

मेरा खयाल है कि अब आप हमारे अेकादश व्रतोंका वास्तविक स्वरूप समझ गये होंगे। वे कोअी अद्‌भुत धर्ममंत्र हैं और अुनका जप करनेसे वैकुण्ठ या कैलास जानेका पुण्य मिलेगा, अैसी किसी अन्धश्रद्धासे हमने रोज प्रार्थनामें अुनका स्मरण करनेका नियम नहीं बनाया है। वह तो हमारी आत्म-रचनाका अभ्यासक्रम है।

हम स्वराज्य-युद्धके सैनिक हैं और सैनिकके नाते हम कच्चे नहीं रहना चाहते। हमें सैनिकके नाते अपने भीतर बल और शौर्यका पूर्ण विकास करना है। वे अिस प्रकारकी आत्म-रचना द्वारा ही विकसित किये जा सकते हैं, क्योंकि हमारे युद्धका गोला-बारूद अहिंसामय सत्याग्रहका है। वह दूसरे साधारण गोला-बारूद जैसा नहीं है, जो किसी भी कारखानेमें अमुक रासायनिक द्रव्योंके मिश्रणसे बनाया जा सके। सब आवश्यक रसायनोंकी काफी बड़ी मात्रा हमारे भीतर आत्मबलके रूपमें मौजूद ही है। अुसे परिपक्व करके हम सैनिकोंको अुसमें से अहिंसात्मक सत्याग्रहका गोला-बारूद हमारे हृदयरूपी कारखानेमें बना लेना है। सत्य और अहिंसा हमारे लिअे केवल दो शब्द न रहें, वे हमारे जीवनमें ओतप्रोत हो जायं, हमारा स्वभाव बन जायं, तो ही हम प्राणोंकी बलि देनेवाले सच्चे सत्याग्रही बन सकते हैं; तो ही हम अहिंसाकी अैसी लहर दौड़ा सकते हैं, जिससे विरोधीका हृदय-परिवर्तन हो जाय। ये दोनों बल हम अेकादश सिद्धान्तोंका बहुत बारीकीसे पालन करके ही अपने हृदयमें अुत्पन्न कर सकते हैं।

परन्तु सावधान! आप जब यह कहते हैं कि हम तो स्वराज्यके सैनिक हैं, व्रत-अभ्यास करनेवाले भगत नहीं हैं, तब यदि आपके मनमें यह भाव हो कि आपको जैसा मिल जाय वैसा ही स्वराज्य जीत लेना है और अुसके लिअे मनचाहे ढंगका युद्ध करना है, तो यह गोला-बारूद आपके कामका नहीं। सत्याग्रहका गोला-बारूद लेकर यदि हिटलरी युद्ध लड़नेका आप अिरादा करेंगे, तब तो केवल निराशा ही आपके

हाथमें आनेवाली है, और अुस रणक्षेत्रके नख-शिख शस्त्रसज्ज योद्धाओंमें आपकी केवल हंसी ही होगी।

हमारा युद्ध दूसरे ही प्रकारका है और हमें जो स्वराज्य जीतना है वह भी भिन्न प्रकारका है। परन्तु हमारे अिस भिन्न युद्धके लिअे हमारा अपना गोला-बारूद पूरी तरह कारगर है, पूर्ण विजय दिलानेकी शक्ति रखता है।

तो चलिये पहले हम यह देख लें कि हम कैसा युद्ध लड़ना चाहते हैं और अुसके लिअे हमारे आत्मबलके हथियार कितने अुत्तम हैं।

हमारे युद्धका साधारण नाम अहिंसात्मक सत्याग्रह है। परन्तु वह प्रसंगानुसार भिन्न भिन्न व्यूह धारण करता है।

कभी अुसमें अन्यायी, अत्याचारी और स्वाभिमानका भंग करनेवाले सरकारी कानूनोंका सविनय भंग करना होता है।

कभी हमें गुलामीमें रखनेवाले सरकारी तंत्रके किसी अंगके अथवा सारे संचालनके खिलाफ असहयोग करना होता है।

कभी सरकार हम पर दमनका वार करे, तब अुसे बहादुरीसे जरा भी झुके बिना सहन करना होता है।

कभी निःशस्त्र प्रतिकार अर्थात् निःशस्त्र होने पर भी हमारी ओरसे व्यवस्थित आक्रमण करना होता है।

सत्याग्रह-युद्धके ये अेकसे अेक कठिन व्यूह हैं। अपनी छातीमें काफी गोला-बारूद भरकर रख सकें, तो ये सब सत्याग्रह हम निःशंक होकर जीत सकते हैं। वह गोला-बारूद कौनसा है?

(१) अेक गोला-बारूद तो यह है कि हम पूरी तरह शुद्ध सत्यकी ही लड़ाअी लड़ते हैं। लड़ाअीमें हम बड़ेसे बड़े लाभके लालचसे भी लेशमात्र झूठ या धोखेबाजी नहीं करते। अिसके परिणामस्वरूप विरोधी पक्ष शरमिन्दा और ढीला हो जाता है और शस्त्र होते हुअे भी हम पर प्रहार करनेकी अुसकी अिच्छा नहीं रहती।

जगतमें किसीको हमारे सत्यके बारेमें जरा भी शंका न रहे; सरकारको हमारा सत्याग्रह अच्छा लगे या बुरा, परन्तु अुसे हमारे सत्यके विषयमें तो पक्का भरोसा ही रहे, यह स्थिति कब आ सकती है? यह स्थिति लानेके लिअे हमें अपने व्यक्तिगत जीवनकी सूक्ष्मसे सूक्ष्म बातोंमें ग्यारह सिद्धान्तोंका पालन करके सत्यके आग्रहवाला स्वभाव बनाना होगा; अिसी प्रकार हमें अपने व्यक्तिगत जीवन और सार्वजनिक जीवन दोनोंमें अनेक कसौटियोंमें से पार होकर और प्रलोभनोंके बीच शुद्ध रहकर अपने सत्यकी प्रतिष्ठा कायम करनी होगी।

(२) हमारा दूसरा गोला-बारूद यह है कि हम अपने सत्याग्रहमें जरा भी पीछे नहीं हटते और फिर भी लड़ाअीमें सम्पूर्ण अहिंसाका पालन करते हैं। अिसके परिणाम-

स्वरूप विरोधी पक्षके पास हथियार होते हुअे भी अुसका दिल हम पर वार करनेसे अिनकार करता है।

हमारी अहिंसा सच्ची है या जबानी और मौका देखकर काम करनेवाली है, अिसकी परीक्षा करनेको विदेशी सरकार दमन तो करेगी ही। हमारी अहिंसाको परीक्षा पास होने लायक निर्मल और मजबूत बनानेके लिअे तथा हमारी अहिंसाकी शत्रुपक्ष पर भी प्रतिष्ठा जमानेके लिअे जीवनकी छोटीसे छोटी बातोंमें भी ग्यारह सिद्धान्तोंका अमल करना परम आवश्यक है।

(३) हमारा तीसरा बल यह है कि सत्याग्रह करते समय विरोधी पक्ष हमें कितने ही दुःख दे, तो भी अुसके प्रति हम जरा भी वैरभाव नहीं रखते; अुसका हित ही करना चाहते हैं। अिसका विश्वास हो जाने पर अुसका हृदय ही पलट जाता है; वह शत्रु न रहकर हमारा अत्यन्त अुत्साही मित्र बन जाता है।

परन्तु अैसी अवैर-वृत्ति साधना किये बिना नहीं आ सकती। जब तक अुसका प्रत्यक्ष प्रमाण हम अपने जीवनके अनेक छोटे-बड़े अवसरों पर नहीं दें, तब तक विरोधी पक्ष अुसे माननेको कभी तैयार नहीं होता। हमारे अवैर अथवा प्रेमका अिस हद तक विकास करनेके लिअे भी ग्यारह सिद्धान्तोंको जीवनमें अुतारना जरूरी है।

किन्तु क्या हमें यह श्रद्धा है कि सत्य और अहिंसा ही मनुष्य-जीवनका सारसर्वस्व है? यह श्रद्धा होगी तो ही हमें अहिंसात्मक सत्याग्रहकी सेनाके लिअे सैनिक बननेका अुत्साह चढ़ सकेगा। हमें अपने नेताओंके प्रति पूज्यभाव है, अुनकी शक्ति पर, अुनके त्याग पर हम मोहित हैं। अिसलिअे अुनकी सत्याग्रही सेनामें भरती होना हमें अच्छा लगता है। परन्तु अितनी-सी अूपरकी श्रद्धा और अितना-सा अूपरसे अच्छा लगना लंबे समय तक कैसे काम दे सकते हैं? ये कड़ीसे कड़ी अग्नि-परीक्षाओंके समय हमें कैसे दृढ़ रख सकते हैं? अिस श्रद्धाको हमें अपना स्वभाव बना लेना होगा। अिसके लिअे भी अेकादश सिद्धान्तोंका सेवन करके आत्म-रचना करना अत्यन्त आवश्यक है।

हम अपने घरके धंधों और अन्य व्यवहारोंमें अस्तेयका पालन करेंगे, तो ही हमारे सत्य और अहिंसा कच्चे न रहकर पक्के बनेंगे।

हम अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य, अस्वाद और शरीर-श्रमके सिद्धान्तोंका पालन करके अैश-आराम और विलासी वृत्ति तथा अहंदीपनको संयममें रखेंगे, तो ही हममें सत्य और अहिंसाको पग पग पर छोड़नेके लालच पर विजय पानेका मनोबल पैदा होगा।

हम अपने भीतर अभयका गुण पैदा करेंगे, तो ही सत्य और अहिंसाकी लड़ाअियां लड़ते समय आनेवाले संकटोंके सामने हम दृढ़ रह सकेंगे। यह कोअी अैसा गुण नहीं है, जिसका प्रयत्न किये बिना ही विकास किया जा सके। दैनिक जीवनमें अनेक छोटे-बड़े सत्याग्रह करते रहेंगे और अुसमें पड़नेवाली मारको बहादुरीसे सहनेकी आदत डालेंगे, तभी हमारे हृदयमें रहनेवाला भय मिटकर अुसमें अभयकी — सत्याग्रहके शौर्यकी स्थापना होगी।

अिस प्रकार, हमारे सिद्धान्तोंमें हमारी आत्म-रचना करनेकी — हमारी सत्य-अहिंसाकी श्रद्धाको पक्की और गहरी बनाकर हममें सत्याग्रही सैनिककी योग्यता अुत्पन्न करनेकी अलौकिक शक्ति है। अिसीलिअे हम कभी यह नहीं कह सकते कि "हम तो स्वराज्यके सैनिक हैं, हमारा अिन सिद्धान्तोंके साथ क्या सम्बन्ध है? हमारा व्यक्तिगत जीवन चाहे जैसा हो, अुसके साथ स्वराज्यकी लड़ाअीका क्या वास्ता है?"

हमारे सिद्धान्तोंमें रहे स्वदेशी, अस्पृश्यता-निवारण और सर्वधर्म-समभाव — ये तीनों हमें सत्य-अहिंसाके पालनके और अुसकी लड़ाअीके अनेक पाठ सिखानेवाले विशाल क्षेत्र हैं।

स्वदेशी व्रतका सूक्ष्म आचरण करके हम अपनी स्वदेशी-भक्तिको अमली जामा पहनानेका आनंद ही नहीं लूटते, बल्कि अपने ग्रामवासी स्वदेश-बंधुओंको न्याय, आदर और प्रेम देकर अपने सत्य-अहिंसाको अधिक समृद्ध बनानेकी तालीम पाते हैं।

अस्पृश्यता-निवारणका पालन करके हम अपने जीवनसे अूंच-नीच-भेदरूपी असत्य और हिंसाको निकाल डालनेकी तालीम ग्रहण करते हैं।

सर्वधर्म-समभावका विकास करके हम अपने जीवनमें गहरी आध्यात्मिक धार्मिकता लानेका प्रयत्न करते हैं। वह न हो तो हमारे सत्य और अहिंसामें गहराअी नहीं आ सकती।

हम कहते हैं कि हमें अपने स्वराज्यकी रचना सत्य और अहिंसाके आधार पर करनी है। हम अपने अिन आखिरी तीन सिद्धान्तों पर कितनी अीमानदारीसे अमल करते हैं, यह देखकर ही लोग हमारे अिस कथनको मानेंगे या नहीं मानेंगे। हम दलितों, पीड़ितों और अपमानितोंके साथ समानताका व्यवहार करेंगे, अुनके दुःख और अन्याय दूर करनेके लिअे सदा कोशिश करते रहेंगे — लड़ाअियां लड़ते रहेंगे, तो अुन्हें स्वाभाविक रूपसे यह विश्वास हो जायगा कि हम अुन्हींके हैं, जिस स्वराज्यके लिअे हम लड़ रहे हैं वह न्याय और सत्यका ही होगा, वह अुन्हींका स्वराज्य होगा। अुस स्वराज्यका अुन्हें डर नहीं लगेगा। अुसके लिअे अुनके मनमें प्रेम पैदा होगा। अुन्हें विश्वास हो जायगा कि अंतमें अैसा स्वराज्य आयेगा, जिसमें कोअी हमारा शोषण नहीं करेगा, हमें सतायेगा नहीं, जिसमें हम अपने प्रामाणिक परिश्रमकी रोटी सुखसे खा सकेंगे, जिसमें हमारे लिअे अुन्नतिके सब दरवाजे अन्य सब लोगोंकी तरह ही खुले होंगे।

और अिन तीन सिद्धान्तोंमें से ही हमारे सारे रचनात्मक कार्यक्रमका विस्तार होता है। अिसके द्वारा हम दलित, पीड़ित लोगोंमें स्वराज्यकी शक्ति अुत्पन्न करनेका सदा प्रयत्न करते हैं। यह कार्य यदि हम पूरे प्रेमसे करेंगे, तो स्वराज्यका सूर्य अुदय होनेसे पहले ही लोगोंको अुसकी जीवनदायिनी गरमीका अनुभव होने लगेगा। अुस स्वराज्यका स्वरूप अुन्हें पहले ही समझमें आ जायगा, अुसका स्वाद अुन्हें लगेगा। स्वाद लगनेके साथ ही अुन्हें सत्याग्रहकी युद्ध-पद्धतिमें अधिकाधिक रस आने लगेगा। वे हमारी लड़ाअियोंमें शरीक होनेको अधिकाधिक तैयार होंगे। वे ज्यों

ज्यों समझते जायेंगे और कुरबानी करते जायेंगे, त्यों त्यों अुनकी बहादुरी बढ़ती जायगी और अुनकी आंखें खुलती जायंगी। वे यह समझने लगेंगे कि हमारे हाथमें हथियार न होनेके कारण दुर्बल बने रहकर गुलामीमें सड़नेकी जरूरत नहीं है; सत्याग्रहकी शक्ति हमारे भीतर ओीश्वरने जितनी चाहिये अुतनी भर दी है।

ये अंतिम तीन सिद्धान्त — स्वदेशी, अस्पृश्यता-निवारण और सर्वधर्म-समभाव हम बारीकीसे अमलमें लायेंगे, तो अुसके परिणामस्वरूप हमारा जीवन पूंजी-पतियों, जमींदारों और सरकार आदि हमारे सब विरोधियोंके लिअे पारदर्शक बन जायगा। अर्थात् हम सचमुच सत्य और अहिंसाके स्वराज्यके लिअे ही लड़ रहे हैं, अिसका प्रत्यक्ष परिचय अुन्हें हमारे अिन सिद्धान्तोंसे प्रस्फुटित होनेवाले रचनात्मक कार्योंमें रोज रोज मिलता रहेगा। हम अुनके अन्यायोंके विरुद्ध लड़ाअियां लड़ते रहेंगे, लोगोंके भीतर भी अुनके विरुद्ध लड़नेकी शक्ति दिन-दिन बढ़ाते जायेंगे, अिससे अुनकी परेशानी तो बढ़ेगी ही। परन्तु हमारे सैद्धान्तिक जीवनमें और हमारे रचनात्मक कार्योंमें प्रकट होनेवाले हमारे सत्य और अहिंसाको देखकर अुन्हें यह भरोसा हो जायगा कि हमारी लड़ाअी अुनके नाशके लिअे नहीं है। वे स्वाभाविक रूपमें हमें और हमारे साथ लड़ाअीमें भाग लेनेवाले लोगोंको कष्ट देंगे। परन्तु यदि हमारे जीवनमें और रचनात्मक कार्योंमें सत्य और अहिंसा अच्छी मात्रामें दिखाअी दें, तो कष्ट देनेमें भी अुनके हाथ अत्यंत क्रूरतासे नहीं चल सकेंगे; और अंतमें काफी सताने और कसौटी कर लेनेके बाद वे हमारा विरोध करना छोड़ देंगे, हमारे कार्यमें आशीर्वाद और सहयोग देने लगेंगे, यह आशा रखना बहुत अधिक नहीं होगा।

अिस प्रकार ग्यारह सिद्धान्तोंके आधार पर हमें श्रद्धापूर्वक आत्म-रचना करके ये तीन फल अुत्पन्न करने हैं:

अेक फल तो यह पैदा करना है कि हमारे भीतर सत्य-अहिंसा पर अितनी गहरी श्रद्धा जम जाय कि वे हमारा स्वभाव बन जायं और हम सच्चे वीर सत्याग्रही बन जायं।

दूसरा फल हमें यह प्राप्त करना है कि हम स्वराज्य-निर्माणका कार्य करनेवाले सच्चे सेवक बनें, रचनात्मक कार्य द्वारा जनताको आजसे ही स्वराज्यका कुछ न कुछ स्वाद चखा दें और अुनमें अुसके लिअे लड़नेका अुत्साह पैदा करें।

तीसरा फल यह पैदा करना है कि जिनके विरुद्ध हमें सत्याग्रह करना है अुनके हृदयोंमें से अन्याय और क्रूरताको मिटाकर अुनमें निवास करनेवाले अुच्च मानव स्वभावको जाग्रत करें।

ये ग्यारह सिद्धान्त माला फेरनेका मंत्र नहीं हैं, परन्तु अिस प्रकारकी आत्म-रचनाका अभ्यासक्रम हैं। अिस आत्म-रचनाके लिअे हार्दिक प्रयत्न करके ही हम स्वराज्य-रचना करनेकी योग्यता और शक्ति प्राप्त कर सकेंगे, केवल 'हम सैनिक हैं' यह कहकर छाती फुलानेसे कभी नहीं।

प्रवचन ७५

आत्म-रचनाकी शाला — आश्रम

स्वराज्य-रचनाका कार्य करनेकी जिसे अुमंग हो, अुसके लिअे आत्म-रचना कर लेना अर्थात् सत्य, अहिंसा आदि ग्यारह सिद्धान्तों पर अपने जीवनको यत्नपूर्वक गढ़ लेना कितना आवश्यक है, अिस संबंधमें हम विस्तारसे विचार कर चुके। हम सब स्वराज्य-रचनामें अपने जीवन अर्पण करनेकी तमन्ना रखनेवाले लोग हैं, अिसलिअे अैसी आत्म-रचनाकी साधनाके हेतुसे ही हम यहां आश्रममें अिकट्ठे हुअे हैं।

यों तो मनुष्य चाहे तो घरमें रहकर भी आत्म-रचना कर सकता है। आत्मामें बल और ज्ञान तो सोये पड़े ही हैं। जिसकी सत्याग्रहकी आंख खुल जाती है, मनकी सुस्ती अुड़ जाती है, जिसे जीवनकी कुंजी मिल जाती है, अुसे आत्म-रचनाका अभ्यासक्रम तैयार करने अथवा अुसकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिअे किसी पाठशालामें जानेकी जरूरत नहीं होगी। परन्तु अिस तरह अपने-आप आंख खुल जानेका अवसर कभी कभी ओीश्वर-कृपासे किसी प्रबल आत्माके जीवनमें ही आता है। हम सामान्य मनुष्य तो आसपासका जैसा वातावरण हो अुसीमें बहनेवाले होते हैं। हम घर बैठे रहें और अनुकूल परि-स्थितिसे लाभ न अुठायें, तो आज ओीश्वर-कृपासे देशसेवाकी जो भावना दिलमें जागी है अुसे भी परिस्थितिवश खो बैठेंगे।

किसी देशसेवकको देखकर, अथवा किसीकी प्रेरक वाणी सुनकर, या कोअी तेजस्वी ग्रंथ पढ़कर, अथवा देशमें होनेवाले आन्दोलनके प्रभावसे प्रभावित होकर — अिस प्रकार प्रभुकृपासे प्राप्त किसी संयोगसे देशसेवाकी भावना हमारे हृदयमें पैदा हुअी है। वह भावना हमारे कानमें चेतावनीका सुर पूर रही है — "यह तुम्हारी भावना तो तुम्हारी हृदय-भूमिमें पड़ा हुआ बीज है। तुम्हारे सौभाग्यसे यह हवामें अुड़ता अुड़ता तुम्हारे हृदयमें आ पहुंचा है। अुठो, अुसका विकास करो। तुम्हारे अपने प्रयत्नसे यह संभव न हो तो जहां कोअी यह विकास कर रहा हो अुस भूमिको ढूंढ़ निकालो। अैसा विकास कर रहे किसी समान-धर्मी साथीको खोज लो। यह चेतावनी सुनकर तुम तुरंत खड़े नहीं हो जाओगे, तो विकासके अभावमें बीज तुम्हारे जीवनके घासफूसमें दब जायगा, कुम्हला जायगा और निष्फल हो जायगा।"

देशसेवाकी भावना दैवयोगसे जाग अुठे, स्वराज्य-रचनाके कारीगर बननेकी अिच्छा मनमें पैदा हो, सत्याग्रह-युद्धके सैनिक बननेका अुत्साह पैदा हो, तो अुसे कुदरत पर छोड़ना हरगिज ठीक नहीं। अुचित शिक्षा द्वारा आत्म-रचना करके अुस भावनाको दृढ़, ज्ञानमय और समृद्ध बनाना हमारा कर्तव्य है।

अैसी आत्म-रचनाकी शिक्षाके लिअे आश्रम सर्वोत्तम पाठशाला है।

यह आश्रम क्या है? वह कैसा होना चाहिये? वहां आत्म-रचनाकी शिक्षा मिलनेके कौन-कौनसे साधन होते हैं?

आश्रमका शव्दार्थ है वह स्थान जहां श्रम करनेके बाद मनुष्य आरामके लिअे जाय। अिसमें तो किसी भी घरका या जहां आराम मिलता हो अैसे किसी भी स्थलका समावेश किया जा सकता है। मनमाने तौर पर शव्दोंका प्रयोग करनेवाले तो किसी होटल या ताश खेलकर समय वितानेकी क्लवको भी आश्रमका नाम देते हैं। परन्तु आश्रम शव्द केवल शव्दार्थमें वंधा हुआ नहीं रह गया है। प्राचीन कालके अृषि-मुनि अुसमें अनेकानेक सुन्दर अर्थ और भावनायें भर गये हैं और हमारे अपने युगमें भी अनेक देशभक्तोंने अुसमें अपनी नअी भावनायें भर दी हैं।

आश्रम शव्द भले ही स्थानवाचक हो, परन्तु हम तो जहां कोअी चरित्रवान व्यक्ति अथवा मंडल निश्चित आदर्शोंके लिअे फकीरी लेकर वैठा हो, अुस संस्थाको ही आश्रम नाम देते हैं। आश्रमका सवसे प्रमुख और सवसे अनिवार्य लक्षण यही है। केवल भव्य मकानों और सुन्दर सुविधाओंसे ही कोअी स्थान आश्रम नहीं वन जाता। वह तो अेक निष्प्राण ढांचा है। अुसका प्राण अुपरोक्त व्यक्ति अथवा मंडल ही होता है। वह व्यक्ति अपने आदर्शकी सिद्धिके लिअे जो प्रवृत्तियां करता है, अुनके आसपास मकानों, साथियों और साधनोंका समूह अिकट्ठा हो जाता है और अिस तरह आश्रम खड़ा हो जाता है। कोअी कोअी व्यक्ति अैसा भी होता है, जिसे अपनी प्रवृत्तियोंके लिअे मकान वगैराका समूह खड़ा करनेकी आवश्यकता नहीं लगती। वह रमता-राम रहकर अपने आदर्शकी सेवा करता है। अुसका आश्रम दिखाअी नहीं देता, फिर भी आश्रम तो है ही। वह व्यक्ति स्वयं ही चलता-फिरता आश्रम है।

जहां अैसा कोअी व्यक्ति अथवा मंडल रहता हो, जिसके प्रति हमारे मनमें गहरा विश्वास हो जाय, जिसे देखकर हममें प्रेम अुमड़ आये, जिसकी आंखें देखकर हमारे हृदयमें कुछ अुदात्त प्रेरणाअें पैदा होने लगें और जिसके वारेमें हमें यह विश्वास हो कि वह हमारे जीवनको वनानेमें दिलचस्पी लेगा, वही हमारा आश्रम है, वही हमारी आत्म-रचनाकी सच्ची पाठशाला है।

हम स्वराज्य-रचनाके कामकी तालीम लेना चाहते हैं। अतः स्वाभाविक रूपमें ही हमें अुस कार्यके लिअे अपना जीवन अर्पण करनेवाले व्यक्तिकी ओर आकर्षण और श्रद्धा होगी। हमें सत्य-अहिंसाके मार्ग पर स्वराज्य-रचना करनेकी कल्पना वुद्धिसे तो पसन्द आ गअी है, परन्तु हमें आत्म-रचना भी अैसी करनी है जिससे वह श्रद्धा हमारे स्वभावका अंग वन जाय। अिसलिअे अेकादश सिद्धान्तों पर अपना जीवन रचनेके आग्रही, अिसी मार्ग पर स्वराज्य-रचनाकी अनेक प्रकारकी प्रवृत्तियां करनेवाले व्यक्तिका सहवास ही हमें ढूंढ़ निकालना चाहिये। हमें जैसे स्वराज्य-रचनाकी कला सीखनी है, वैसे ही स्वराज्यके लिअे सत्याग्रहकी लड़ाअी लड़नेकी कला भी सीखनी है। अुसमें भी कोअी कुशल आचार्य मिल जाय, तो अीश्वरका परम अुपकार मानना चाहिये। अैसे आदमीके आश्रममें हमें संपूर्ण शिक्षा मिल जायगी, हमें चाहिये वह सब मिल जायगा, हममें सोअी हुअी आत्मशक्तियोंका विकास करनेके लिअे अनुकूल आवहवा मिल जायगी, यह विश्वास हम अवश्य रख सकते हैं।

आश्रममें आत्म-रचनाकी शिक्षा लेने जायं तो हमें शिक्षा लेनेकी पुरानी कल्पनाओंको भूल जाना पड़ेगा। हमारा तो यही खयाल होता है कि, "वहां हमें दिनमें कमसे कम पांच-सात घंटे विद्यालयमें बैठाकर अलग अलग विषयोंके निपुण शिक्षक स्वराज्यके भिन्न भिन्न अंगों पर व्याख्यान देंगे, पुस्तकें पढ़ायेंगे, लेख लिखायेंगे और भाषण देना सिखायेंगे। विद्यालयसे अुठकर हम फिर अेकान्तमें आरामसे बैठकर यह सारी पढ़ाओ दोहरायेंगे, अुसके नोट लेंगे, अुन्हें रटेंगे और परीक्षामें पास होनेके लिअे जितनी मेहनत और करामत करनी चाहिये वह सब करेंगे।"

आश्रम अैसी पाठशाला नहीं होती। हो तो अुसका आश्रम नाम बदलकर अुसे पाठशालाका ही नाम देना चाहिये। आश्रममें अिस तरह बैठकर पढ़ने या पढ़ानेकी किसीको फुरसत नहीं हो सकती। वहां तो स्वराज्य-रचनाकी अनेक प्रवृत्तियां चलती रहती हैं। अुनमें खादी आदि ग्रामोद्योग और राष्ट्रीय शिक्षा जैसे रचनात्मक काम भी होते हैं और लोग ज्यों ज्यों अुनसे शक्ति और साहस प्राप्त करते जाते हैं, त्यों-त्यों आसपास होनेवाले छोटे-मोटे अन्यायों और अत्याचारोंके विरुद्ध समय समय पर सत्याग्रहकी लड़ाअियां भी लड़ी जाती हैं। स्वराज्यकी अैसी प्रवृत्तियोंको अुस आश्रमका दूसरा महत्त्वपूर्ण लक्षण समझ लीजिये।

अिस प्रकारकी जो भी स्वराज्यकी प्रवृत्तियां चलती हों, अुनमें शरीक होना, देशके अनेक प्रश्नोंका परिचय करना, ये प्रश्न सत्य-अहिंसाके मार्गसे किस तरह हल किये जाते हैं, अुस मार्ग पर चलते हुअे कैसी परीक्षायें होती हैं, कैसे हृदय-परिवर्तन होते हैं, यह अनुभव प्राप्त करना और अुस अनुभवसे आत्म-रचना करना ही हमारी मुख्य शिक्षा है। समय-समय पर हमारा मार्गदर्शन जरूर किया जाता है। कभी कभी अनुभवी कार्यकर्ताओंके साथ काम करनेका मौका मिलनेसे अुनके अनुभवका कीमती लाभ भी मिल जाता है। कभी कोअी काम अपनी स्वतंत्र सूझ-बूझसे करना पड़ता है। अुसमें हमारी सूझ-बूझ और कुशलताको विकसित करनेका मौका मिलता है।

आश्रमका तीसरा लक्षण यह है कि वहां दैनिक निर्वाहके व्यक्तिगत काम खुद ही करने पड़ते हैं। ये सब मुख्यतः सफाओ और भोजनसे संबंध रखनेवाले होते हैं। आत्म-रचनाके किसी भी अुम्मीदवारके लिअे अुनके भीतर शिक्षाका खजाना ही भरा होता है।

हम अपने घरोंमें तो रोजके व्यक्तिगत कामोंका सारा बोझ स्त्रियों और नौकर-चाकरों पर डालकर स्वयं सभ्यजन बन कर फिरते रहते हैं। यहां आश्रममें अपना बोझ आश्रम खुद ही अुठाता है। व्यक्तिगत सारे काम — खाना बनानेसे लेकर पाखाना-सफाओ तकके सब काम — आश्रमवासियोंको साथ मिलकर करने होते हैं। हम भी अपने हिस्सेमें आनेवाला भार अुठायें, यह आशा रखना स्वाभाविक है।

अुनमें बहुतसे काम काफी शरीर-श्रमके होते हैं। यदि हमने सारे दिन पड़े रहकर अच्छी-बुरी, कामकी और निकम्मी किताबें पढ़नेकी आदत डाल ली होगी, तो

आश्रमकी यह शिक्षा लेते समय हमारी हड्डियां विरोध करेंगी। अिसके सिवा, कुछ कामोंको तो हम हलके माननेके आदी होते हैं। अुन्हें करनेका हमारा मन विरोध करेगा। अिन कामोंसे अरुचि रखनेवाले हमारे मनमें कुछ अैसी शंकायें अुठेंगी कि ये सब काम नौकरोंसे करायें तो अध्ययन वगैरा दूसरी प्रवृत्तियोंके लिअे कितना समय बच जाय। परन्तु यहां तो कामोंका हेतु केवल खाने-पीनेका, जैसे-तैसे दिन पूरा करनेका नहीं, परन्तु अुनके द्वारा हमारी आत्म-रचना करनेका है। अिसमें आश्रमके ये सब कार्य हमारे अभ्यासक्रमका महत्त्वपूर्ण अंग बन जाते हैं। वे नौकरोंको कैसे सौंपे जा सकते हैं? कोअी विद्यार्थी अपनी पुस्तकें पढ़नेका काम कभी नौकरको सौंप सकता है? वे काम करके हमें शरीर-श्रमकी आदतको रग-रगमें रमाना है, कामके गौरवको अपने खूनमें अुतारना है।

अिन कामोंमें आत्म-रचनाकी कितनी बातें भरी हैं? नौकर-चाकर और धोबीका आश्रय न लेकर भी हमें अैसी सफाअी रखनी है कि हमारी प्रत्येक वस्तु खिलखिला कर हंसती दिखाअी दे। यह केवल शरीर-श्रमसे कभी हो सकता है? श्रमके साथ जब प्रसन्न और स्वच्छताका शौकीन मन मिलता है, तभी यह परिणाम लाया जा सकता है। आश्रमकी स्वच्छतामें रहे हुअे लोग जब समाजमें जाते हैं, तब अुन्हें कचरेके ढेरमें रहने जैसा लगता है। यह मैं केवल देहाती समाजके बारेमें नहीं कहता। अमीर और साधन-सम्पन्न समाजमें जाने पर भी अुन्हें यही अनुभव होता है। अिस तरह आंखोंमें समा जानेवाली स्वच्छता भी आश्रमका अेक अंग ही है। यह स्वच्छता न हो तो अुस संस्थाको आश्रम नहीं, परन्तु अखाड़े या अड्डे जैसा कोअी नाम देना पड़ेगा।

स्वच्छताके लिअे अितना परिश्रम करने और अुसकी अितनी लगन रखनेके पीछे अपने आरोग्य, सुख और आनन्दका विचार तो है ही, परन्तु मूल विचार आत्म-रचनाका अर्थात् अपनी आदतें सुधारनेका है। अुसके साथ साथ पड़ोसकी ग्राम-जनताको कैसी सफाअी रखनी चाहिये और किस तरह रखनी चाहिये, अिसका प्रदर्शन करनेका खयाल भी अुसके पीछे है। स्वराज्य-रचनाके पहले पाठके रूपमें यदि कोअी कार्यक्रम हो तो वह स्वच्छताका ही है।

स्वच्छताकी तरह आश्रमकी दिनचर्याके अन्य सब कामोंमें भी, अर्थात् खाना बनानेसे संबंध रखनेवाले कामोंमें भी, आत्म-रचनाकी और स्वराज्य-रचनाकी दोनों दृष्टियां हैं।

भोजनमें जिस प्रकार अस्वादके जैसा आत्म-रचनाका खयाल है, अुसी प्रकार जनताको यह पदार्थपाठ देनेका खयाल भी है कि सादा, सस्ता और फिर भी आवश्यक तत्त्वोंसे युक्त राष्ट्रीय आहार कैसा हो। खाना बनानेकी कलामें अुसे नअी दृष्टि बतानी है। चक्की और अूखल-मूसलमें घुसी हुअी शरमको तोड़कर अुन्हें फैशनकी चीजें बनाना है। गरीब लोग अज्ञानमें अपनी मूलतः कम पोषक खुराकमें से चोकरको फेंककर अुसे अधिक निःसत्त्व बना देते हैं। अिस संबंधमें अुनकी आंखें खोलनी है। आहारका प्रश्न अेक बड़ा राष्ट्रीय प्रश्न होनेके कारण वह स्वराज्य-रचनाका ही अेक अंग है। आश्रममें

हम रोजका खान-पान करते करते सहज ही अिस प्रश्नको हल करनेमें अपना हाथ बंटाते हैं।

आश्रममें अैसे कामोंमें समय लगाना पड़ता है, अिससे नये आदमियोंके मनमें असंतोष रहता है। परन्तु जब अुनकी आंखें खुलेंगी और वे समझने लगेंगे कि अिस समयका कितना सुन्दर राष्ट्रीय सदुपयोग होता है, तब अुनका असंतोष मिटकर अैसे सब कामोंमें अुनका अुत्साह बढ़ जायगा।

आश्रमकी चौथी विशेषता है राष्ट्रीय ग्रामोद्योगोंकी। अुनमें से कुछ मुख्य अुद्योग सीखनेकी सुविधा वहां जरूर होगी। अुन्हें सीख लेनेसे हमारी आत्म-रचनामें बड़ी सुंदर वृद्धि होगी। पढ़े-लिखोंमें अुद्योगके प्रति जो अरुचि होती है, वह हमारे मनसे दूर हो जायगी। हमारे अकुशल हाथोंमें कुशलता आ जायगी। हमारी स्वदेशीकी भावना अधिक गहरी और ज्ञानमय बनेगी, क्योंकि ये अुद्योग सीखनेसे हमें हाथकी बनी हुअी चीजोंके लिअे आन्तरिक प्रेम अुत्पन्न होगा। गांवोंके कारीगरोंके प्रति भी कुदरती तौर पर हमारी सहानुभूति बढ़ेगी। अुनके अुद्योग कैसे नष्ट हुअे और अुनकी स्थिति कैसे सुधर सकती है, अिसका विचार अधिक सहानुभूतिसे करनेकी मति भी हमें सूझेगी।

स्वराज्यकी रचनामें भी अिन राष्ट्रीय अुद्योगोंकी शिक्षा हमारे लिअे बहुत अुपयोगी सिद्ध होगी। रचनात्मक कार्यक्रममें देशके नष्ट हो चुके अनेक ग्रामोद्योगोंको फिरसे जीवन-दान देनेका कार्यक्रम बहुत ही जरूरी है। कताअी, पिंजाअी, बुनाअी वगैरा कपड़े-संबंधी अुद्योगोंको विदेशी राज्यके कारण बहुत भारी धक्का पहुंचा है। गांवोंमें अेक जमानेमें अच्छी तरह चलनेवाले अन्य कअी अुद्योग भी मरणासन्न दशामें हैं। कुम्हारका काम, चमड़ा पकानेका काम, रंगाअी और छपाअीका काम, घानीका काम, हाथ-कागज बनानेका अुद्योग, समुद्र-तटके गांवोंका नौका-अुद्योग — अैसे अनेक अुद्योग यंत्रोंकी स्पर्धासे, सरकारकी तरकीबोंसे और हम लोगों द्वारा स्वदेशीकी भावना छोड़ बैठनेसे नष्ट हो गये हैं। अिनमें से जितने अुद्योग सीखे जा सकें अुतने जब तक हम सीख नहीं लेते, तब तक ग्रामसेवककी हमारी योग्यतामें बड़ी कमी रह जाती है।

अब तकके वर्णन परसे आप यह तो समझ गये होंगे कि अैसा आश्रम किसी ग्राम-विस्तारमें, जहां दलित-पीड़ित लोग रहते हों अुसके पड़ोसमें ही हो सकता है। अैसे स्थानको हम आश्रमका पांचवां लक्षण ही समझें।

अैसे स्थानमें रहनेसे, और वह भी सेवाभावसे रहनेसे, हमें सच्चे हिन्दुस्तानका अनुभव होता है। सच्चा हिन्दुस्तान कितना दरिद्र है, कितना बेकार है, अुसकी खुराक क्यों खुराक कहने लायक नहीं है, अुसके कपड़े कितने फटे-पुराने हैं, अुसे पानीके बिना कितनी तकलीफ है, साफ रहनेकी कला आती हो तो भी पानी जैसे साधनोंके अभावमें स्वच्छ रहना अुसके लिअे कितना असंभव है, अुसके बालक कैसे नंगे-भूखे रहते हैं और शिक्षाके बिना पलते हैं, गांवमें पाठशाला हो तो भी गरीबीके कारण अुन्हें पढ़ाना अुसके लिअे कितना असंभव है, अुसके मवेशी कैसे अस्थि-पंजर हो गये

हैं — अिसका खयाल हमें वहां रहनेसे होता है और देशकी दरिद्र स्थिति हमारे हृदय पर अंकित हो जाती है।

अैसे स्थानमें न रहें तब तक हमारा यही खयाल होता है कि गांवोंके लोग सब किसान होंगे और अुनमें से प्रत्येकके पास जमीन, हल-बैल आदि काफी साधन होंगे। परंतु प्रत्यक्ष देखते हैं तभी हमें अिस बातका अनुभव होता है कि वहां तो अधिकांश लोग अैसे हैं, जिनके पास बीघेभर जमीन भी नहीं है। वे औरोंके खेतोंमें मजदूरी करके गुजर करते हैं, और यह मजदूरी भी अुन्हें रोज नहीं मिलती।

भारत देशका अैसा दर्शन हमारी आत्म-रचना पर गहरा असर डाले बिना कैसे रह सकता है? हमारा व्यक्तिगत जीवन खर्चीला होगा या असंयमी और भोगी होगा, शरीर-श्रमसे रहित होगा, तो वह भीतरसे हमें काटने लगेगा। और अपने जीवनको यथासंभव ग्राम-जनताके निकट ले जानेका स्वाभाविक रूपमें हमारा मन होगा।

अिस तरहका आश्रमवासका अनुभव लें तभी हमें स्वराज्यकी भी सच्ची कल्पना हो सकती है। अिन सब ग्रामवासियोंको खेतीके लिअे काफी जमीन कैसे मिले, अुन्हें काफी गाय-बैल कैसे मिलें, अुन्हें हवा और रोशनीवाले घर कैसे मिलें, अुनके सब बच्चे शिक्षाका दूध कैसे पीने लगें, अुनकी आंखोंमें स्वराज्यका तेज कैसे आये, अुनके दिलमें सत्याग्रहकी आग कैसे पैदा हो — ये सब प्रश्न तभी हमारी समझमें आ सकते हैं। अुनकी भयंकर बेकारी देखें, तभी हममें स्वराज्यके लिअे तेजी और अधीरता आ सकती है; अुनके स्वभावके गुणोंको पहचानें, तभी हमें विश्वास हो सकता है कि सत्य-अहिंसाका रास्ता यदि हम अुनके सामने अपने आचरण द्वारा अुपस्थित करें तो वे खुशी-खुशी अुसे अपना सकते हैं। हमारे देशके पढ़े-लिखे लोग दिल्ली और लंदन-मार्का स्वराज्यका ही विचार कर सकते हैं। अैसे गांव-मार्का स्वराज्यकी कल्पना भी अुन्हें नहीं छूती। अिसका कारण यह है कि अुन्होंने असली हिन्दुस्तान देखा ही नहीं है, अुन्होंने आश्रमकी शिक्षा पाअी ही नहीं है। अितना ही नहीं, अुस शिक्षाके बिना गांववालोंकी समझमें आनेवाली भाषा भी वे नहीं बोल सकते और लोग बोलें तो अुसका पूरा मर्म नहीं समझ सकते।

आश्रमका छठा लक्षण यह है कि वहां हमें अपने संकुचित घरकी चार-दीवारीसे बाहर निकलकर विशाल कुटुम्बमें रहनेका लाभ मिलता है। अेक सेवकके लिअे — अेक सत्याग्रही सैनिकके लिअे यह शिक्षा परम आवश्यक है। अुसे जो आत्म-रचना करनी है, अुसके लिअे घरके संकुचित जीवनमें बहुत कम अनुकूलता मिल सकती है।

घरमें तो मनुष्य अेक तरहका राजा बनकर रहता है। स्त्रियों और बच्चोंकी सेवा अुसे सदा मिलती रहती है। अमीर हो तो नौकर-चाकर भी अुसमें वृद्धि करते हैं। अुसकी अिच्छानुसार साधन अुसे तुरंत मिल जाते हैं। मनुष्य सामान्य स्थितिवाला हो, तो भी घरमें अुसका जीवन ज्यादातर सुखी, बिना मेहनतका, भोगरत तथा कामुकताका भी होता है।

आश्रमके विशाल परिवारमें जीवनका हेतु और जीवनकी पद्धति दोनों बदल जाते हैं। यहां अुसे साम्यवादके सिद्धान्तोंका अूंचेसे अूंचा अनुभव मिलने लगता है। यहां वह गृहस्थ — घरका मालिक न रहकर अन्य सब आश्रमवासियोंकी तरह ही अेक आश्रमवासी बन जाता है। सब जितनी सुविधायें भोगते हों, जितने परिग्रह रख सकते हों, जैसा खान-पान करते हों, वैसा ही अुसे भी रखना पड़ता है। आश्रमका अैसा नियम तो होगा ही, परन्तु वह अुपरोक्त सारा संयम नियमके कारण ही नहीं रखेगा; अुसके दिलको ही यह अच्छा नहीं लगेगा कि अुसका जीवन दूसरोंसे भिन्न रहे और वह दूसरोंकी अपेक्षा अधिक सुख-सुविधा भोगे। अिस प्रकार हृदयसे किया हुआ संयम — अपरिग्रह, अस्वाद, मनुष्यका आत्मबल बहुत बढ़ा दे तो अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नहीं।

आश्रमके साथ संयम और ब्रह्मचर्यके खयाल जुड़े होते हैं, अिसलिअे बहुत लोग यह कल्पना कर लेते हैं कि वहां स्त्रियों और बच्चोंके लिअे स्थान ही नहीं होगा। अिनसे बचनेके लिअे वह पुरुषोंका खड़ा किया हुआ कोअी अखाड़ा होगा। यह भ्रम मिटा देने जैसा है। संयम और ब्रह्मचर्यके लिअे स्त्री और बच्चोंसे भागना हमारे आश्रमका स्वरूप है ही नहीं। अुसमें स्त्री-बच्चोंके लिअे पुरुषों जैसा और पुरुषोंके जितना ही स्थान है। जो कोअी आत्म-रचनाकी साधना करना चाहें, अुन सबके लिअे आश्रममें स्थान है — फिर वे पुरुष हों, स्त्रियां हों या बालक हों।

आश्रमी शिक्षाका लाभ लेनेके लिअे पुरुष अकेले जायं, अिसकी अपेक्षा अपनी पत्नियों और बालक-बालिकाओंको भी साथ ले जायं, यह बहुत ज्यादा पसंद करने जैसा है। परंतु अितना सही है कि आश्रममें जाकर जो अपने कुटुम्बका अलग बाड़ा बनाकर बैठ जायंगे, वे आश्रमी शिक्षाके अनेक कीमती तत्त्व खो बैठेंगे। आश्रममें पत्नीको पत्नीके रूपमें ले जानेकी बात नहीं है; वह भी अेक स्वतंत्र देशसेविकाकी हैसियतसे आत्म-रचना करनेके लिअे ही वहां आती है। आश्रममें आनेके बाद पति अुसे अपने सुख-सुविधाके कामोंमें लगाये रखनेका अधिकार छोड़कर अुसे अपनी आत्म-रचनाके लिअे मुक्त कर देता है। सुख-सुविधायें तो आश्रममें आवश्यकतानुसार सबको अेकसी मिलती ही हैं। अुनसे वे दोनों काम चलाना सीख लेंगे। दोनों अपने अपने अलग विभागोंमें रहेंगे, अपनी अपनी योग्यताके अनुसार अुद्योगों और सेवाकार्योंमें शरीक होंगे। साथमें बालकोंको ले गये होंगे — और ले ही जाना चाहिये — तो वे भी छोटे अुगते हुअे सेवकोंके रूपमें ही तालीम पायेंगे। मां और बाप दोनों अुन पर नजर जरूर रखेंगे, परन्तु दूसरे बच्चोंकी अपेक्षा अपने बच्चोंको अधिक खिलाने-पहनानेमें मां-बापको अेक प्रकारका जो अभिमान होता है, अुस पर वे आश्रममें संयम रखेंगे। जरूरतके अनुसार सब बच्चोंको खाने-पहननेकी चीजें मिलेंगी ही, अिसलिअे वे अिससे अधिक लालन-पालनका मोह छोड़ देंगे। अपने बच्चों पर अुनका जो प्रेम होगा अुसे आश्रमके सब बच्चों पर फैला देनेकी अुन्हें यहां तालीम मिलेगी।

आश्रमके विशाल परिवारमें रहनेके और भी बहुतसे कीमती फायदे हैं। वहां जैसे विद्वान और अमीर घरोंके लोग शिक्षाके लिअे आये होंगे, वैसे गांवके कम पढ़े और गरीब स्थितिके लोग भी अिसी अुद्देश्यसे आये होंगे। गांवके सदस्योंका पलड़ा जिस आश्रममें भारी होगा, वहांका जीवन बहुत स्वस्थ रहेगा, आरोग्यप्रद होगा। अुनके मजबूत शरीर, अुनकी मेहनती आदतें, जीवनके अनेक अुपयोगी कामोंका अुनका ज्ञान, बहुतसे साधनों और सुविधाओंके बिना भी सुखसे रहनेकी कला और अिन सबके सिवा अुनका हंसमुख, मिलनसार, झगड़ा न करनेवाला और दूसरोंको सदा मदद देने-वाला स्वभाव — अैसे गुणोंवाले साथियोंके साथ रहनेका मौका मिलना कोअी मामूली शिक्षा है? अुनका सहवास बहुतोंके जीवनमें तो गुरुके मिल जाने जैसा परिणाम लायेगा।

अैसे ग्रामवासी सेवक जिस आश्रममें अधिक होंगे, वहांका खान-पान, रहन-सहन, कामकाज, साधन-सुविधाअें स्वाभाविक रूपमें गांवोंकी अर्थात् सच्चे हिन्दुस्तानकी परि-स्थितिके अनुरूप ही होंगी। अैसे आश्रममें विद्वान और अमीर घरोंके सेवकोंको रहनेका अवसर मिले, तो अुन्हें अुसे महा सौभाग्य ही समझना चाहिये। गरीबोंको दूरसे देखकर और अुनका पुस्तकीय अध्ययन करके बुद्धिमान लोग अुनकी स्थितिको अच्छी तरह समझ तो सकते हैं, परन्तु अिस तरह समझनेसे अधिकसे अधिक अुनके मनमें गरीब लोगोंके बारेमें दया पैदा होगी, अुनका कुछ अुपकार करनेकी अिच्छा पैदा होगी। अिससे अधिक अुत्कट भावना शायद ही पैदा हो सके। परंतु अिस प्रकार ग्रामवासी सेवकोंके साथ अुनके स्तर पर रहनेकी तालीम मिले, तो भारतकी वास्तविक स्थिति अुनके हृदयों पर अंकित हो जाय; अुन्हें अपना आरामका जीवन झूठा, कड़वा और अशोभनीय प्रतीत होने लगे; और भारतके गांवोंको सुखी तथा स्वतंत्र बनानेकी लड़ाअीमें जीवन समर्पण करनेकी लौ भी लग जाय।

अिसके अलावा, विशाल आश्रमी कुटुम्बमें हरिजनोंके साथ अेक परिवारके सदस्य बनकर रहनेका लाभ मिलनेकी भी संभावना रहती है। हरिजनोंको केवल स्पर्श करके और अूपर अूपरसे अुनके प्रति प्रेम दिखाकर अस्पृश्यताके घोर अन्यायका निवा-रण हम बहुत थोड़ा कर सकते हैं। यह अन्याय हमें असह्य हो अुठे, अिसका नाम सुनते ही हमारा खून अुबल अुठे, प्राणोंकी बाजी लगाकर अुसके विरुद्ध सत्याग्रह छेड़नेकी धुन हमें लग जाय, तो ही अिस दिशामें हम कोअी सच्ची सेवा कर सकते हैं। हरिजनोंके साथ अितनी गहरी अेकता साधे बिना अन्तरमें अिस प्रकारकी विह्वलता शायद ही पैदा हो सके।

आश्रम-परिवारमें यदि देशमें माने जानेवाले भिन्न भिन्न धर्मोंके सदस्य होंगे, तो हमारी आत्म-रचनामें अेक और अत्यन्त कीमती वृद्धि होगी। परंतु यह तो तभी संभव होगा, जब आश्रमके प्राण माने जानेवाले मनुष्य सर्वधर्म-समभावके जीते-जागते दृष्टांत होंगे। तो ही अुनके पास अलग अलग धर्मोंके सेवक आत्म-रचनाके लिअे आकर्षित होकर आयेंगे। अैसे आश्रमके वातावरणमें कोअी अद्भुत अुदारता और गुणग्राहकता

व्याप्त होगी। 'हमारा धर्म अूंचा, हमारा आचार्य अुत्तम, हमारा तत्त्वज्ञान श्रेष्ठ और हमारे ही महात्मा और पैगम्बर सच्चे हैं' — अैसा अल्पात्माओंका जो अभिमान हमारे समाजमें फैला हुआ है और सारे क्लेशोंका कारण बन जाता है, वह अैसे सेवकोंके जीवनमें नहीं पाया जाता। फिर भी सब अपने-अपने धर्मके प्रेमी जरूर होंगे। जिस तरह भिन्न भिन्न वाद्यों और साजोंमें प्रवीण अनेक गुणी गायक अिकट्ठे होते हैं, और सभी अेकराग होकर अेक समूह-गान पैदा करते हैं, अुसी प्रकार अलग अलग धर्मोंके सेवकोंके जीवन अैसे आश्रममें अेक विशाल और अलौकिक धर्म-संगीत निर्माण करेंगे। आश्रमकी प्रार्थनामें, सेवाकार्योंमें तथा खाने-पीने और सोने-बैठने जैसी मामूली बातोंमें भी अुस संगीतका स्वर गूंजता रहेगा। हमारे देशकी रग-रगमें पैठे हुअे साम्प्रदायिक जहरके वातावरणमें अुदारसे अुदार विचारके मनुष्योंके लिअे भी दंगों और वाद-विवादके विषम अवसर पर साम्प्रदायिकताके प्रवाहसे बचना अत्यन्त कठिन हो गया है। अैसी स्थितिमें कुछ भी क्यों न हो जाय, हममें अेक-दूसरेके प्रति रोष न पैदा हो, अेक-दूसरेके प्रति शंका न पैदा हो, किसीके अुकसाये हम अुकसें ही नहीं, अैसा हमें अपना स्वभाव बना लेना चाहिये। यह अिस प्रकारकी आश्रमी शिक्षाके बिना कैसे हो सकता है? किसीके तोड़े न टूटनेवाला सर्वधर्म-समभाव अंतरमें पैदा होना और अुसका बना रहना अिस शिक्षाके बिना नितान्त असंभव है। हम तो साम्प्रदायिक झगड़ोंको शान्त करनेके लिअे धर्मक्रूर बने हुअे लोगोंकी भीड़में कूद पड़ने और अपना निर्दोष रक्त बहाकर लड़नेवाली कौमोंके हृदयोंको जोड़ने और धर्मकी बाह्य विधियोंकी जड़में रहे अिस सच्चे धर्मका अुन्हें दर्शन करा देने तककी तैयारी करना चाहते हैं। अिस भावनाको अुपरोक्त आश्रमी शिक्षा कितना सुन्दर पोषण दे सकती है?

आत्म-रचनाकी पाठशाला-जैसे अिस आश्रमका स्वरूप कैसा हो, यह मैंने आज विस्तारसे आपको बताया है। जैसा कि हम देख चुके हैं, अुसमें ये छह लक्षण होने चाहिये:

(१) सत्य, अहिंसा आदि सिद्धान्तोंमें निष्ठा रखनेवाले और स्वराज्यके लिअे जीवन अर्पण करनेवाले व्यक्ति या मंडल अुसके (आश्रमके) प्राण होने चाहिये।

(२) वह स्वराज्य-रचनाकी प्रवृत्तियों और सत्याग्रहका केन्द्र होना चाहिये।

(३) वहां सफाअी और भोजन वगैरासे संबंध रखनेवाले सब निजी काम हाथसे किये जाने चाहिये।

(४) वह राष्ट्रीय महत्त्वके ग्रामोद्योगोंका केन्द्र होना चाहिये।

(५) अुसका स्थान सच्चे हिन्दुस्तानमें — अर्थात् जहां दलित-पीड़ित देशबन्धु रहते हों अुनके बीच होना चाहिये।

(६) वह देशसेवकोंका अेक विशाल कुटुम्ब होना चाहिये, जिसमें ग्रामवासी, हरिजन, अलग अलग धर्मोंके सदस्य, स्त्रियां और पुरुष, अपने संकुचित स्वार्थोंवाला जीवन छोड़कर सेवाके लिअे आ बसे हों।

अैसे आश्रम आत्म-रचनाकी अुत्तम पाठशालायें हैं। वहां सत्य, अहिंसा आदि ग्यारह सिद्धान्तोंको अपने व्यक्तिगत जीवनमें और स्वराज्य-रचनाके सव कार्योंमें अुतारनेका आग्रह पैदा होगा, अुनके प्रयोग करनेके अनेक अवसर मिलेंगे और श्रद्धेय पुरुषोंके पथप्रदर्शनका लाभ भी मिलेगा।

स्वराज्य-रचनाके किसी भी क्षेत्रमें सेवा करनेकी अिच्छा रखनेवाले सेवकोंको अपने प्रेम और श्रद्धाके पात्र किसी मण्डलकी तरफसे चलनेवाले अैसे किसी आश्रमको खास प्रयत्न करके ढूंढ़ लेना चाहिये और वहां आत्म-रचनाकी तालीम जरूर प्राप्त करनी चाहिये।

आजकल अिन लक्षणोंसे युक्त प्राणवान वातावरणवाले आश्रम देशमें कितने कम हैं? अिसीलिअे स्वराज्यके सव कामोंमें तालीम न पाये हुअे, सिद्धान्तोंकी वहुत कच्ची समझवाले सेवक ही मिलते हैं। अिसका और क्या फल निकल सकता है? अिसके कारण स्वराज्यके अेक भी कार्यमें जीवन पैदा नहीं होता।

खास तौर पर सत्याग्रहकी लड़ाअियोंमें तो यह खामी अैन वक्त पर रंगमें भंग कर देती है। रचनात्मक कार्योंमें तो कच्चे सेवकोंको अपना सेवाकार्य करते करते अनुभवी वन जानेका अवसर मिल सकता है; लेकिन सत्याग्रहकी लड़ाअियोंमें द्रुत गतिसे काम होता है, विरोधी पक्षकी तरफसे भी तेजीके साथ वार पर वार होते हैं, सेनापतिके हमसे पहले पकड़े जानेके कारण हुक्म देनेवाला हमारी अंतरात्माके सिवा और कोअी नहीं होता। अैसे समय केवल देशके खातिर लड़नेका जोश ही अंत तक कैसे काम दे सकता है? हमारी लड़ाअी तो अहिंसामय सत्याग्रहकी है। सत्य-अहिंसाको जीवनका स्वभाव वनाये विना अिस लड़ाअीके दाव और खूवियां हमें अपने आप कैसे सूझ सकती हैं? लंवी जेलों और भारी वलिदानोंके प्रसंगोंमें सत्य-अहिंसाके वलमें विश्वास कैसे वना रह सकता है? हिंसा और कपट-युद्धके छोटे रास्ते अपनानेके प्रलोभनसे हम कैसे वच सकते हैं?

अिसलिअे ग्यारह सिद्धान्तोंका श्रद्धामय और ज्ञानमय पालन करके सेवक अपने सच्चे गोला-वारूदको — सत्य और अहिंसाको — अपने रोम-रोममें रमा कर सुन्दर आत्म-रचना कर लें, यह निहायत जरूरी है। अिसके लिअे अैसे आश्रम ही अुत्तम पाठशालायें हैं।

सेवकोंके लिअे अुत्तम पाठशाला होनेके सिवा जनताके वीच रचनात्मक काम करके अुसकी स्वराज्य-शक्ति वढ़ानेके लिअे भी आश्रम अुत्तम केन्द्र वन सकेंगे। आश्रमोंमें सत्य-अहिंसा आदिको व्रतके रूपमें अपनानेवाले कार्यकर्ताओंके मंडल स्थायी निवास करते होंगे और अुनके हाथों लोगोंको, विना पाठशालाके, सच्चे स्वराज्यकी गहरी शिक्षा मिलेगी, सत्य-अहिंसा आदिके आग्रहको जीवनमें अुतारनेकी शिक्षा मिलेगी, परराज्यके घेरेके वीच भी अपने घर और गांवका स्वराज्य वना लेनेकी शिक्षा मिलेगी तथा परराज्यके विरुद्ध सत्याग्रह करनेकी सत्य-अहिंसामय युद्ध-विद्याकी भी अुन्हें शिक्षा मिलेगी।

यदि हमें स्वराज्यके काममें तेजी लाना हो और सत्याग्रहकी लड़ाअियोंमें रंग जमाना हो, तो अिस प्रकारके आश्रम देशके हर जिले और हर तहसीलमें हों यह अत्यन्त आवश्यक है।

•

प्रवचन ७६

स्वराज्य-आश्रम

कल हम देख चुके हैं कि सच्चे आश्रमके क्या क्या लक्षण होते हैं। हम यह भी देख चुके कि यदि हमें अपनी स्वराज्यकी लड़ाअियोंमें बार बार आगे बढ़कर पीछे न हटना हो, तो हर जिले और तहसीलमें अैसे आश्रम होने चाहिये और स्वराज्यका काम करनेवाले प्रत्येक स्त्री-पुरुषको वहां रहकर ग्यारह सिद्धान्तोंको अपनी रग-रगमें रमा लेनेकी — अपनी आत्म-रचना कर लेनेकी — शिक्षा मिलनी चाहिये।

अैसी आश्रमी शिक्षा लेनेके लिअे हम और आप अिस आश्रममें जमा हुअे हैं। हम अिस आशासे आये हैं कि वह शिक्षा हमें यहां मिल जायगी। हम जानते हैं कि आदर्श आश्रमके जिन लक्षणोंका हम विचार कर चुके हैं वे सब यहां पूर्ण रूपमें हैं, अैसा नहीं कहा जा सकता। शेष सब लक्षण तो हमने अपनी शक्तिके अनुसार यहां जुटा लिये हैं, परन्तु आश्रमके पहले ही लक्षणमें — अुसके केन्द्रमें कोअी स्वराज्य-निष्ठ और ग्यारहों सिद्धान्तोंको घोलकर पी जानेवाला सत्याग्रही व्यक्ति या मंडल होना चाहिये — हमारा आश्रम कच्चा मालूम होगा। यह लक्षण हममें से किसी पर पूरी तरह लागू होता है, अैसा कहनेकी हमारी हिम्मत नहीं है। हम अेकादश सिद्धान्तोंको घोल कर पी जानेवाले सत्याग्रही हैं, कैसे भी खतरेके होते हुअे सत्यको छोड़ना हमारे लिअे असंभव हो गया है, चाहे जैसे प्रलोभनके सामने भी हम अहिंसाको छोड़ नहीं सकते, अैसा कहें तो वह हमारा अभिमान ही माना जायगा। अिन सिद्धान्तोंका बल कल्पनासे थोड़ा समझमें आता है और अुन्हें हड्डियोंमें रमा लेनेका प्रयत्न करनेकी हमारी अुत्कट अिच्छा है, अितना ही हम कह सकते हैं। अिस मार्गमें हमें भी मार्गदर्शककी आपके जितनी ही जरूरत है। मार्गमें अकेले पड़ जायंगे तो अंधे जैसे हो जायंगे, यह भय हमें भी बना ही रहता है।

हां, स्वराज्यकी लगन हमें अवश्य है। वह किसे नहीं होगी? परन्तु अुसके लिअे लड़ते लड़ते अभी तक किसीने अपना मस्तक नहीं दिया है, अतः अिस लगनका भी अभिमान करना अधिक मालूम होता है।

फिर भी अितना निश्चित है कि अिस आश्रममें हमें अपने आदर्शको अपनी आंखोंसे कभी ओझल नहीं होने देना है। हमें सत्य और अहिंसामें दिनोंदिन अधिक गहरे जाना है और अुस मार्ग द्वारा स्वराज्य लानेके प्रयोगमें अधिकाधिक आगे बढ़ना है। हममें से तो कोअी अुस समय अिस आश्रममें नहीं थे, परन्तु कोअी विचारशील मित्र

अिसका नाम 'स्वराज्य-आश्रम' रख गये हैं। यह नाम सदा हमें अपने आदर्शकी याद दिलाता रहता है। यह हमें स्वराज्यकी याद ही नहीं दिलाता रहता, परन्तु हमारे मनसे कभी यह बात भी हटने नहीं देता कि हमारा मनचाहा स्वराज्य आश्रमी शिक्षाके विना नहीं आ सकेगा।

हमारे आश्रमकी भूमि दरिद्रसे दरिद्र लोगोंकी आवादीमें स्थित है। यह वात भी हमें अपने आदर्शको सदा ताजा रखनेमें अच्छी सहायता देती है। दिल्ली या शिमला-छापका स्वराज्य हमारे कामका नहीं। आज अिस सारी दरिद्र आवादी पर गोरे राज्य करते हैं। वैसा ही आगे चलकर काले लोग राज्य करें, अिसमें हमें कोअी दिलचस्पी नहीं। हमें तो अिन दरिद्र लोगोंका अपना स्वराज्य चाहिये। हमें अैसा स्वराज्य चाहिये जिसके आनेसे अुनकी दरिद्रता मिट जाय, अुनका अज्ञान चला जाय, अुनकी आंखोंमें स्वराज्य और स्वतंत्रताका तेज चमकने लगे और वे कोअी भी जुल्म या अन्याय सहन न करें। कोअी सरकार अिन लोगोंका यह स्वराज्य गोरी या काली सेनाकी मददसे जीतकर अिन्हें नहीं दे सकती। यह स्वराज्य अिन्हें और हमारे जैसे सेवकोंको अपने भीतर सत्याग्रहका शौर्य पैदा करके ही लाना पड़ेगा। यह शौर्य अिस प्रकारके अनेक स्वराज्य-आश्रम देशभरमें खुलें तो ही अुत्पन्न हो सकता है। यह वात हमारे आश्रमकी भूमि हमें निरंतर स्मरण कराती है।

हम स्वयं अपूर्ण हैं, अिसलिअे हमारे आश्रमका भी अपूर्ण होना स्वाभाविक है। परन्तु हम आदर्शके सूर्यको आंखोंके सामने रखकर सदा अूपर ही अूपर चढ़ते रहेंगे, तो हमारा आश्रम भी अूपर चढ़ता रहेगा, और आश्रम जैसे-जैसे पूर्णताके पास पहुंचता जायगा, वैसे-वैसे हम खुद अुसमें से अधिकाधिक प्राणवान शिक्षा प्राप्त करते रहेंगे।

परन्तु आश्रमोंके आदर्शकी तुलनामें आश्रमवासियोंका अधूरापन अितना ज्यादा होता है कि अैसे आश्रमों और आश्रमवासियोंके वारेमें लोगोंमें अेक प्रकारका अविश्वास—अेक तरहका पूर्वग्रह—बना हुआ मालूम होता है।

साधारण लोगों और राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं पर भी हम आश्रमवासियोंके वारेमें क्या छाप है, यह आपने सुना है? वे हमें विचित्र प्राणी ही मानते हैं। हम छोटी घुटनों तककी धोती पहन कर फिरते रहते हैं, अपने खान-पान और कपड़े-लत्तोंके नियमोंसे वाहर निकलते ही नहीं, आश्रममें कोअी आये-जाये तो अुसके साथ हम सभ्यतासे-वात भी करना नहीं जानते और अैसा दिखावा करते हैं मानो कामसे सिर अुठाने तककी हमें फुर्सत नहीं होती—अैसी हमारी मूर्ति अुन्हें दिखाअी देती है।

हमारे साथ काम करते समय अथवा हमें कोअी काम सौंपते समय नेताओंके मनमें हमेशा कुछ न कुछ परेशानी रहा करती है। अुन्हें यह शंका रहती है कि हम कामकी अपेक्षा अपने नियमोंमें और आश्रमी सुविधाअें जुटानेमें ही अधिक लग जायंगे, लोगोंके साथ घुलमिल जानेकी कला न आनेके कारण अुनसे वांछित कार्य नहीं करा सकेंगे और सिद्धान्तोंके घोड़ेको वीचमें ही कुदा कर लोगोंको चमका देंगे।

खास तौर पर जब राष्ट्रीय कांग्रेसके राजनीतिक काम हो रहे हों, चुनाव हो रहे हों, संधि-वार्ताअें चल रही हों, तब अुनसे हमें सदा काफी दूर रखनेकी वे विशेष सावधानी रखते हैं। वे यह माननेको तैयार नहीं होते कि हममें अैसे कामोंके लिअे लगन और सर्वांगीण दृष्टि हो सकती है। अिन कामोंमें तो अनेक भिन्न भिन्न मत और शक्तिवाले लोगोंके साथ काम करना पड़ता है, अुनकी खामियोंको सहन करके वे देशकी जितनी सेवा कर सकें अुतनी आभार-सहित स्वीकार करनी पड़ती है। लेकिन हम आश्रमवासी तो अुनके मतानुसार अेकमार्गी लोग हैं, चाहे जब सिद्धान्तका प्रश्न पैदा कर देते हैं, लोगोंका अुत्साह भंग कर देते हैं और कामको सरलतासे नहीं चलने देते।

आलोचक अपनी बात अैसी कड़ी भाषामें नहीं पेश करते, परन्तु हमें समझ लेना चाहिये कि अैसी तमाम आलोचनाओंके मूलमें अुनकी यह मान्यता होती है कि हम आश्रमोंमें रहकर नकली जीवन बिताते हैं। अर्थात् हम जो अनेक नियम पालते हैं अुनमें देखादेखी करते हैं, अुनका रहस्य हम शायद ही समझते हैं; और चूंकि रहस्य नहीं समझते अिसलिअे हमें यह पता नहीं चलता कि कहां कब कितना रखें, कितना छोड़ें, कौनसी सिद्धान्तकी बात है और कौनसी ब्यौरेकी बात है।

यदि हमारा जीवन अैसा नकली हो, तो हमें जरूर सचेत होना चाहिये। हमें यहां आत्म-रचनाकी शिक्षा प्राप्त करनी है; और नकल तो प्रत्येक प्रकारके दंभ और झूठकी जननी होनेके कारण शिक्षाकी कट्टर शत्रु है।

समय बिगाड़ना नहीं चाहिये, पल पलका हिसाब रखना चाहिये, यह हमारा अेक जीवन-सूत्र है। यह अितने महत्त्वका सूत्र है कि दुनियामें कोअी अिसके विरुद्ध नहीं बोल सकता। आश्रमवासीको ही नहीं बल्कि प्रत्येक मनुष्यको किसी भी परिस्थितिमें, यदि वह अपने जीवनका सदुपयोग करना चाहता हो, अिस सूत्र पर आग्रहपूर्वक अमल करना चाहिये। परन्तु हम अपना जीवन घड़ीकी सुअी और समय-पत्रकके अनुसार चलानेके आग्रही हैं, अिसलिअे क्या हम आ पड़नेवाले महत्त्वपूर्ण कर्तव्योंकी अुपेक्षा करेंगे, अुनका पालन नहीं करेंगे? अुदाहरणार्थ, हम बीमारकी सेवा करनेका फर्ज आ पड़ने पर क्या समय-पत्रकको थोड़ी देर अलग नहीं रख सकेंगे? अथवा अतिथिका स्वागत करने या राहगीरको रास्ता बतानेके लिअे भी अैसा नहीं करेंगे? हां, हमारा जीवन नकली होगा तो हमें अिसका विवेक नहीं रहेगा कि कहां कौनसे कर्तव्यका महत्त्व है, हम जड़-भरतकी भांति अपने नियमसे चिपटे रहेंगे और किसीसे पानीका पूछने या किसीके प्रश्नका हंसकर जवाब देनेकी साधारण शिष्टताका भी पालन नहीं कर सकेंगे। हम मुंहसे तो नहीं बोलेंगे, परन्तु कुछ अैसे विचित्र ढंगसे व्यवहार करेंगे कि हमारा चेहरा ही मानो लोगोंकी तरफ अैसे अपमानजनक वचन फेंकता हो: "कहांसे तुम्हारे जैसे बेकार लोग चले आये? हम तुम्हारे जैसे बेकार नहीं रहते। देखते नहीं कि मैं आश्रमवासी हूं, और हमेशा काममें डूबे रहनेका नियम पालन करता हूं?"

अिसी प्रकार हमारे भोजनके नियम लीजिये। वे भी यदि ग्रामोद्योग आदि सिद्धान्तों और दरिद्र जनताके सेवकको शोभा देनेवाली दृष्टिसे न बनाये गये हों, परन्तु केवल

नकली ही हों, तो भोजनके मामलेमें भी हमारा बरताव अैसा ही विचित्र होगा। हम जहां भी जायंगे वहां हमें अपनी जरूरतकी चीजें जुटानेकी कोशिशमें ही फुरसत नहीं मिलेगी। हम लोगोंको अुनके लिअे तंग कर डालेंगे। दूसरे साथियोंने खाया-पिया या नहीं, अिसकी खबर रखनेकी बारीकी भी हम नहीं दिखायेंगे, तो फिर चाय-पानकी आदतवालेके लिअे तो सहानुभूतिपूर्वक विचार करने ही क्यों लगे? अितना ही नहीं, हमारे भीतर भरी हुअी कटुता लोगों पर प्रहारोंके रूपमें फूटे बिना नहीं रहेगी: "तुम तो बिलकुल असंयमी हो, स्वादोंके गुलाम हो; चाय जैसी आदतको भी जीत नहीं सकते, तो बड़ी चीजोंको क्या जीत सकोगे?" वगैरा।

अिसी तरह हमारे जीवन नकली होंगे, तो हम साप्ताहिक मौन तो बहुत साव-धानीसे रखेंगे, परन्तु जब बोलना शुरू करेंगे तब शब्द शब्दमें विनय, सभ्यता और नम्रताका खून करने लगेंगे; हम प्रार्थनाके समय प्रार्थना तो करेंगे, परन्तु अुसमें प्रभुके ध्यानकी अपेक्षा आसपास जो लोग सो रहे होंगे अुनके प्रति अनुदार विचारोंका ही ध्यान हमें विशेष होगा, और कदाचित् आवाज काफी अूंची करके भी हम धुन चलाने लगेंगे। मनमें हम कहेंगे, "कैसे आलसी लोग हैं कि अब तक सो रहे हैं? अुनके खातिर हम क्यों धीरेसे प्रार्थना करें? अुन्हें सोनेका हक है, तो क्या हमें प्रार्थना करनेका हक नहीं है?"

हम अपने बरतन मांजने, कपड़े धोने वगैराका काम खुद करनेका नियम पालें, यह तो बहुत अुत्तम है और अुसके लिअे कोअी हमें दोष दे ही नहीं सकता। अधिकसे अधिक कोअी मीठा मजाक कर लेगा। परन्तु हमारा यह नियम हमारे जीवनका स्वाभाविक लक्षण बन गया होगा, तो हम अपने बरतन मांजकर ही नहीं अुठ जायंगे। हमारा नियम तो सुन्दर शिष्टताके रूपमें प्रगट होगा। पासमें अैसे कामकी आदत न रखनेवाले मित्र होंगे, तो अुनके बरतन मांजनेको लिये बिना हमें चैन नहीं पड़ेगा। परन्तु हम नकली होंगे तो अैसी शिष्टता सूझनेके बजाय हम अुनकी कड़ी टीका करेंगे, अथवा मुंहसे नहीं बोलेंगे तो भी अैसा चेहरा बनाकर अपना काम करेंगे कि दूसरोंको अुससे नीचा देखना पड़े।

हमारे जीवन अैसे नकली होंगे, तो हम कभी सच्ची सेवा करनेके लायक नहीं बनेंगे; जहां जायंगे वहां हम लोगोंको बुरे लगेंगे। सब हमें दूर रखेंगे। कारण, नकली आदमियोंकी कड़ी आलोचना सहन करनेको कौन स्वाभिमानी मनुष्य तैयार होगा? दूसरोंको नीचा दिखाते रहनेवाले असभ्य आदमीका साथी बनना किसे पसन्द होगा? जो आदमी केवल अपना या अपने नियमोंका ही विचार करनेवाला हो, जिसमें दौड़कर दूसरोंके सहायक बननेकी हार्दिक ममता और प्रेम न हो, वह अुपयोगी काम भी क्या करेगा? अुसमें अनुभव और कुशलता भी क्या होगी? साफ है कि अैसे निरुपयोगी, निकम्मे और फिर भी आश्रमवासी होनेका अभिमान करनेवाले मनुष्यकी असभ्यता और कटुताको दूसरे सहन नहीं करेंगे।

यह तो अिस बातका पृथक्करण हुआ कि आश्रमवासियोंके प्रति लोगोंमें अेक प्रकारकी अप्रीति अथवा आलोचना-वृत्ति कैसे पैदा हो जाती है। परन्तु अिसका कोअी यह अर्थ न समझे कि नकली मान लिये जानेके डरसे हम आश्रमी शिक्षाको — आत्म-रचनाको — छोड़ दें। अुसे छोड़ दें तब तो जीवनमें शून्य ही शेष रह जायगा। क्योंकि आत्म-रचना क्या चीज है? जीवनके प्रत्येक अंगमें अेक सेवकको — अेक सत्याग्रहीको शोभा देनेवाले ढंगसे सिद्धान्तपूर्वक चलनेका आग्रह रखनेका नाम ही आत्म-रचना है।

आश्रम-जीवनमें अेक सेवकको शोभा देनेवाली सादगी होनी चाहिये और प्रेमसे अुमड़नेवाला हृदय होना चाहिये; अेक सैनिकको सुशोभित करनेवाली राष्ट्रीयता और शूरवीरता होनी चाहिये; अेक सुधारकको शोभा देनेवाली नवीनताका स्वागत करनेकी — क्रान्तिका स्वागत करनेकी तैयारी भी होनी चाहिये और अेक सत्याग्रहीको शोभा देनेवाला ज्ञान-विज्ञान भी होना चाहिये।

अैसा जीवन, जो लोग किसी विचार या गंभीरताके विना लकीरके फकीर बनकर जीवन बिताते हैं अुनके जीवनसे भिन्न होगा; और भिन्न होनेके कारण लोगोंमें हमारे लिअे कुछ अुपहास और आलोचना हो, यह स्वाभाविक है। परन्तु अिससे वह छोड़ने लायक वस्तु नहीं बन जाती। आलोचनाओं और अुपहासोंका सार हमें अितना ही निकालना चाहिये कि हम अपना जीवन नकली न बनने दें।

और यह बात भी नहीं कि नकल सदा खराब ही होती है। अन्तमें तो मनुष्य जो कुछ सीखता है नकलके द्वारा ही सीखता है। जो हमारे गुरुजन हैं, हमसे ज्ञान, अनुभव आदिमें आगे बढ़े हुअे हैं, जिनके लिअे हमें श्रद्धा और प्रेम है, अुनके जीवनका अनुकरण हम स्वाभाविक तौर पर करेंगे ही। नकल किये बिना हम रह नहीं सकते, और नकल न करें तो हम आगे भी नहीं बढ़ सकते।

और आश्रमके मानी, जैसा मैं बता चुका हूं, किसी श्रद्धेय व्यक्तिके आसपास आत्म-रचनाकी भावनासे जमा हुअे लोगोंका मंडल ही है न? अैसे व्यक्तिके आसपास जमनेका हेतु ही यह है कि हम सब अुस बलवान व्यक्तिको देखकर बल प्राप्त करें, अुस ज्ञानीको देखकर ज्ञान प्राप्त करें, अुस महासेवकको देखकर सेवाधर्म सीखें।

अग्निको छुअे बिना अग्नि पैदा नहीं होती। केवल पठनसे अथवा भाषण सुननेसे या चर्चाअें करनेसे अेकके हृदयकी श्रद्धाका दूसरेमें संचार नहीं होता, अेकके दिलमें जल रही आग दूसरेमें प्रज्वलित नहीं होती, सामान्य स्वार्थमय जीवनसे बाहर निकलकर सारा जीवन सेवामें होमनेकी प्रेरणा अुत्पन्न नहीं होती, सत्यका अटूट आग्रह हृदयमें पैदा नहीं होता। अुसके लिअे किसी श्रेष्ठजनका सहवास — और वह भी दीर्घकालका सहवास — बहुत जरूरी है। बीजमें से वृक्ष बननेके पहले लम्बे समय तक अुगनेकी क्रिया होती रहना जरूरी है। हमारे जीवनमें भी स्थायी परिवर्तन होनेके लिअे श्रेष्ठजनका लम्बा सहवास बहुत आवश्यक है। हम अुसे बड़े प्रसंगोंमें व्यवहार करते देखते हैं, छोटे प्रसंगोंमें भी

व्यवहार करते देखते हैं। अुसकी कठोरताका अनुभव करते हैं और कोमलताका भी अनुभव करते हैं। यह सब देखते देखते, अुसके नेतृत्वमें काम करते करते अुसके सिद्धान्तों और कार्य-पद्धतिको, अुसके बल और अुसके ज्ञानको हम अपनाते जाते हैं। अिसमें बुद्धिका प्रयोग भी है, और नकल अथवा अनुकरण भी है। देख देखकर, अुस पर विचार करके, अुसका अनुकरण करके, हम अपना जीवन बनाते हैं।

अिसलिअे 'नकल'—यह आलोचना सुनकर चौंकनेकी जरूरत नहीं। वह तो मनुष्य-जीवनमें शिक्षाका अेक अत्यंत महत्त्वका साधन है। शिक्षाकी अनेक पद्धतियोंमें आश्रम अेक अनोखी पद्धति है और हम मानते हैं कि वह सर्वोत्तम पद्धति है। अुसमें श्रेष्ठजनका सहवास, अुसके जीवनका अवलोकन और अनुकरण बड़ा काम करता है। यह पद्धति अैसी है जो हमारी रग-रगको बदल सकती है। आश्रमी शिक्षा ही जीवन-परिवर्तनकी शिक्षा लेनेकी सच्ची पद्धति है। अुसे नकल कहकर कोअी हमारी हंसी अुड़ाये, तो क्या अुससे शरमिन्दा होकर हम यह शिक्षा छोड़ दें?

हम आश्रमवासियोंको और देशसेवा करनेवाले सभी लोगोंको यह भी समझ लेना चाहिये कि तालीम न पाया हुआ सैनिक जैसे हिंसक युद्धोंके लिअे निकम्मा और भाररूप साबित होता है, वैसे ही सत्याग्रहके अहिंसक युद्धमें भी तालीम न पाये हुअे सैनिक निकम्मे और भाररूप साबित होते हैं। आश्रम-जीवनकी शिक्षा ही हमारी तालीम है। हम किसी भी क्षेत्रमें हों अथवा कोअी भी धंधा करते हों, परन्तु यदि हमें समय समय पर देशकी सेवामें भाग लेना हो, समय समय पर सत्याग्रहकी लड़ाअियोंमें शरीक होना हो, तो अुसके लिअे पहलेसे थोड़ी तैयारी करनेकी, थोड़ी तालीम पानेकी बड़ी आवश्यकता है। अिसके लिअे हमें जिन आश्रमोंके प्रति श्रद्धा हो अुन आश्रमोंमें थोड़े-बहुत समय तक तालीम पाना जरूरी है।

बहुतसे लोग लड़ाअीका शंख सुनकर जोशमें आ जाते हैं और अुसमें कूद पड़ते हैं। परन्तु तालीम न मिली हुअी होनेके कारण अुन्हें लड़ाअीकी सच्ची कल्पना नहीं होती। लड़ाअीका जोश ठंडा पड़ता है अथवा लड़ते-लड़ते लम्बे समयकी जेल मिलती है, तब अुन्हें सदा अिस तरहकी शंकाअें होने लगती हैं: "अहिंसासे सरकारको कैसे हराया जा सकता है? जेलमें बन्द रहकर रोटियां खानेसे कैसे स्वराज्य मिलेगा? जेलमें दुश्मनोंका काम क्यों किया जाय? दुश्मनके साथ छल-कपट और झूठका बरताव करनेको अधर्म कैसे कहा जायगा?" अित्यादि। अिसी प्रकार जनशक्ति बढ़ानेवाले रचनात्मक कामों और अुनमें निहित सिद्धान्तोंके बारेमें भी अुनकी शंकाअें बढ़ती रहती हैं: "हिन्दू-मुसलमानोंका जन्मजात वैर कभी मिट ही कैसे सकता है? अछूतोंको 'हरिजन' नाम देनेसे कौआ हंस कैसे बन जायगा? गांवोंके लोगोंके बीच गांवठी बनकर हम रहें और अुनकी तरह मेहनत करें, तो अिससे अुनकी जनशक्ति कैसे बढ़ सकती है?" वगैरा वगैरा। श्रद्धापूर्वक आश्रमी शिक्षा प्राप्त किये बिना अैसी शंकाओंका जाल बढ़ता ही रहेगा; और बहुत बार अैसा होता है कि अेक समय लड़ाअीमें पड़नेवाला आदमी श्रद्धाको बढ़ानेके बजाय अुसे खोकर ही लौटता है।

देशसेवाकी तालीमके लिअे मैंने आश्रमकी अितनी महिमा वर्णन की है। परंतु अुसकी तालीम आश्रमोंमें रहनेसे ही मिलती है और अुसके विना मिल ही नहीं सकती, यह कहनेका मेरा आशय नहीं। कभी कभी जेलोंमें भी अुसके लिअे अनुकूल परिस्थिति अुत्पन्न हो सकती है। सत्याग्रहकी लड़ाअियोंमें लोग देशभक्तिकी अुमंगसे खिचकर चले आते हैं। जब आते हैं तब अुन्हें शायद ही सत्याग्रहका गहरा ज्ञान होता है। सरकारके कानून न माने जायं, अुसके अधिकारियोंको यथाशक्ति तंग किया जाय, अैसी ही कुछ कल्पना सत्याग्रहकी अुन्हें होती है। परन्तु जेलोंमें जब कोअी श्रद्धेय सेवक मिल जाता है, तो वे अुसके आसपास अिकट्ठे हो जाते हैं। अुसके नेतृत्वमें शुद्ध, अुद्योगमय और सेवामय जीवन विताने लगते हैं, अध्ययन करते हैं, चर्चाअें करते हैं। परिणामस्वरूप अुनकी समझ गहरी होती है, शंकाअें मिटती हैं, स्वराज्य, सत्याग्रह आदि चीजें अुनके खूनमें मिलती हैं और वे देशसेवाकी स्थायी दीक्षा पाकर बाहर निकलते हैं।

मां-बाप भी, चाहें तो, अपने घरोंको देशसेवाकी शिक्षाके आश्रम बना सकते हैं। अैसे घर देशमें बहुत ही थोड़े हैं, यह हमारी बदकिस्मती है। परन्तु कहीं कहीं अैसे घर देखनेमें आते हैं। अैसे घरोंमें अुगती हुअी सन्तानें सेवा और सत्याग्रहका दूध पीकर ही बड़ी होती हैं।

कहीं भी ली जाय और कैसे भी ली जाय, लेकिन यह आत्म-रचनाकी शिक्षा लेना तो जरूरी है ही। कांग्रेस कमेटियोंमें अधिकार भोगनेवाले कार्यकर्ताओंमें कभी कभी अैसी आश्रमी शिक्षा पाये हुअे सज्जनोंको हम देखते हैं। अुन्होंने वह शिक्षा कहां पाअी, यह मुख्य प्रश्न नहीं है। हो सकता है कि अुन्होंने कभी कोअी आश्रम देखा ही न हो। वे अपनी विशुद्ध देशभक्तिके प्रतापसे और अपने ज्ञान अेवं अनुभवके प्रभावसे अैसी योग्यता तक पहुंचे हों। परन्तु जहां अैसे कार्यकर्ताओंके हाथोंमें कांग्रेसके कार्यका संचालन होता है, वहां कैसा भव्य दृश्य देखनेको मिलता है! अुनकी श्रद्धाकी छूतसे कार्यकर्ताओंमें और लोगोंमें भी सत्य और अहिंसाके बारेमें किसीको शंका नहीं रहती, रचनात्मक कार्य पूरी श्रद्धा और अुत्साहसे होता है, आपसकी तुच्छ स्पर्धा, अीर्ष्या आदि रहने नहीं पातीं, कौमोंके बीच भाअीचारा बढ़ता है, दलितोंकी सेवा प्रेमपूर्वक की जाती है और सदा सत्याग्रहका तेजस्वी वातावरण बना रहता है। अैसे सुयोग्य नेता मिल जाते हैं, तो लोगोंको किसी आश्रममें गये बिना भी अुस प्रदेशके शुद्ध सार्वजनिक जीवनसे ही सेवाकी वांछित तालीम मिल जाती है।

हम जब 'आश्रमी' शब्दका अुपयोग करते हैं, तब अुसका अर्थ किसी निश्चित आश्रममें रहनेवाला आदमी नहीं होता। यह अब आपकी समझमें आ गया होगा। अच्छेसे अच्छे आश्रममें रहने पर भी हम, जैसा लोग कहते हैं, नकली, हास्यास्पद और विचित्र प्राणी रह सकते हैं; और किसी आश्रममें पैर न रखने पर भी अपने जीवनमें आश्रमी जीवनके सब अंश चरितार्थ करनेवाले मनुष्य कअी बार देखनेमें आते हैं।

परन्तु अितना तो निर्विवाद है कि हमारे देशके सार्वजनिक जीवनमें आश्रमोंकी और आश्रमी शिक्षा पाये हुअे कार्यकर्ताओंकी बड़ी जरूरत है। आज हमारा सार्वजनिक

जीवन अैसी अूंची सतह पर चल रहा है कि अुसे चलानेवाले नेताओं और सेवकोंमें जितने अैसी आत्म-रचनाकी शिक्षा पाये हुअे लोग होंगे, अुतना ही वह अिस अूंची सतह पर टिका रह सकेगा।

असत्य और हिंसासे भरपूर दुनियाके बीच हमने सत्य और अहिंसा पर अपनी श्रद्धा जमाअी है। अुसके जोरसे हमें अपना स्वराज्य ही नहीं लेना है, परन्तु दुनियाकी हिंसा-मार्गी प्रजाओंको शान्तिका सच्चा मार्ग भी बताना है। यह श्रद्धा हमारी जनतामें धीरे-धीरे बढ़ती जाय और सच्ची परीक्षाके समय अुड़ न जाय, अिसके लिअे सच्चे सत्याग्रही सेवक — आत्म-रचनाकी तालीम पाये हुअे सेवक — आगे आकर जनताको अपने जीवनसे सजीव शिक्षा देते रहें यह जरूरी है। यह हमारे देशके सार्वजनिक जीवनके लिअे कितना आवश्यक है?

किसी भी लड़ाअीमें जब अकल्पित घटनायें होती हैं, सेनाको भारी हानि अुठानी पड़ती है, तब अुसके सेनापतियोंकी श्रद्धा ही अुसके सैनिकोंको अचल बनाये रखती है। हमारी सत्याग्रहकी लड़ाअीमें तो विचलित हो जाने, श्रद्धा खो बैठनेके प्रसंग बहुत अधिक संख्यामें आते हैं, यह स्पष्ट है। अुस समय हमारे सिर पर अनेक प्रकारके खतरे होते हैं।

अहिंसामय सत्याग्रहमें पहला और सबसे बड़ा खतरा यह है कि लड़ाअीका शंख बजते ही सेनापतिको अुसके सैनिकोंसे अलग कर दिया जाता है। सैनिकोंमें अच्छी संख्या अैसी आत्म-रचना किये हुअे लोगोंकी — सिद्धान्तोंको समझे हुअे लोगोंकी — हो, तो ही यह लड़ाअी वेगसे आगे बढ़ सकती है और शुद्ध मार्ग पर रह सकती है।

दूसरा खतरा हमारे लिअे यह है कि अिस लड़ाअीमें अैसा समय भी आ सकता है, जब हमारी जनता और अुसके अनेक नेता बिलकुल हिम्मत हार बैठें, आशा खो बैठें, अिस सरकारके राक्षसी यंत्रका विरोध करने और अुसके पंजेसे मुक्ति प्राप्त करनेका विचार ही अुन्हें असंभव प्रतीत होने लगे; और वे अिस विचारके शिकार बन जायं कि अुसके अधीन रहकर, अुसकी नौकरियां करते-करते, अुसकी धारासभाओंमें बैठे-बैठे, वह मेहरबानीके तौर पर जो टुकड़े हमारे सामने फेंक दे अुनसे संतोष कर लेनेमें ही सार है। अैसे समय साहस और शौर्यकी हवा बनाये रखना आश्रमी शिक्षा पाये हुअे लोगोंका ही काम है।

तीसरे प्रकारका खतरा हमारे लिअे यह है कि अिसमें सत्याग्रह और अुसकी ताकत बढ़ानेवाले रचनात्मक कार्यों परसे हमारी जनताका और बहुतसे नेताओंका विश्वास अुठ जानेके भी अवसर आते हैं। वे कपट-नीति और बम-बन्दूकका बालिश खेल भी खेलने लग सकते हैं। अैसे मौके पर भी सत्याग्रहकी ज्योति जगाये रखना आश्रमी शिक्षा पाये हुअे लोगोंका ही विशेष कर्तव्य है।

हमारे रचनात्मक कार्योंमें भी खतरे पैदा हो सकते हैं; वे स्वराज्य-रचनाके काम न रहकर केवल खादी या घानीके तेलकी अुत्पत्ति-बिक्री करनेवाली दुकानें बन सकते हैं, सत्याग्रहके खतरोंसे बचनेकी वृत्ति सेवकोंमें और लोगोंमें पैदा हो सकती है। अैसे

समय अुन्हें कौन कहेगा कि आपके कामसे स्वराज्यकी रचना नहीं हो रही है, अिस-लिअे वह सच्चा रचनात्मक काम नहीं है? यह हिम्मत आश्रमी तालीम पाये हुअे लोग ही कर सकते हैं।

विदेशी सरकारकी भेदनीतिसे कौमोंके बीच वैर-द्वेष फैले, रोटीके टुकड़ोंके लिअे लोग कुत्ते-बिल्लियोंकी तरह आपसमें लड़ मरें, सच्चे शत्रुका ध्यान छोड़कर परस्पर अेक-दूसरेको शत्रु मानने लगें, अैसे अवसर पर भी सच्ची आश्रमी शिक्षा पाये हुअे — सिद्धान्तोंमें परिपक्व बने हुअे सेवकों अथवा सत्याग्रहियोंके सिवा जनताको सच्चे मार्ग पर कौन रख सकेगा?

राजनीतिक आन्दोलन अलग है और व्यक्तिगत जीवन अलग है — अैसा मान कर लोग और अुनके नेता दलित वर्गोंको न्याय देनेका कोअी भी कदम न अुठाते हों, तब जन-जीवनमें न्यायका आग्रह पैदा करना भी आश्रमी शिक्षा प्राप्त किये हुअे सत्याग्रहियोंका ही काम है।

हमारे देशके सार्वजनिक जीवनमें आश्रमवासी नामके विचित्र प्राणियोंके — आत्म-रचना किये हुअे सेवकोंके — ये सब मुख्य कर्तव्य हैं। अिन विचित्र प्राणियोंके आचार और विचार कैसे होने चाहिये, यह अच्छी तरह समझ लेनेके लिअे ही हम अितने दिनों तक प्रार्थनाके बाद यह सब बातचीत करते रहे हैं। अैसा आश्रमी जीवन हमारे लिअे सहज हो जाय, हमारे खूनकी हर बूंदमें सत्य, अहिंसा आदि सिद्धांत रम जायं, अिसीके लिअे हम आश्रममें रहकर आत्म-रचना कर रहे हैं।

हमारे देशके प्रत्येक गांवमें अैसी आत्म-रचनाकी शिक्षा देनेवाले स्वराज्य-आश्रम बनें, प्रत्येक जिले और प्रत्येक तहसीलमें देशके नेता अिसी शिक्षाका लोगोंको अमृतपान करायें, प्रत्येक घरमें माता-पिता अपनी सन्तानोंको अैसी आश्रमी शिक्षा देकर अुनका लालन-पालन करें और आजकल अैसे विचित्र प्राणी जो कहीं कहीं देखनेमें आते हैं, अिसके बजाय चालीस करोड़ भारतवासी अैसे प्राणी बन जायं, यही मेरी और हम सबकी भगवानसे प्रार्थना है।

फलश्रुति

नओी संस्कृतिकी पुरानी बुनियाद
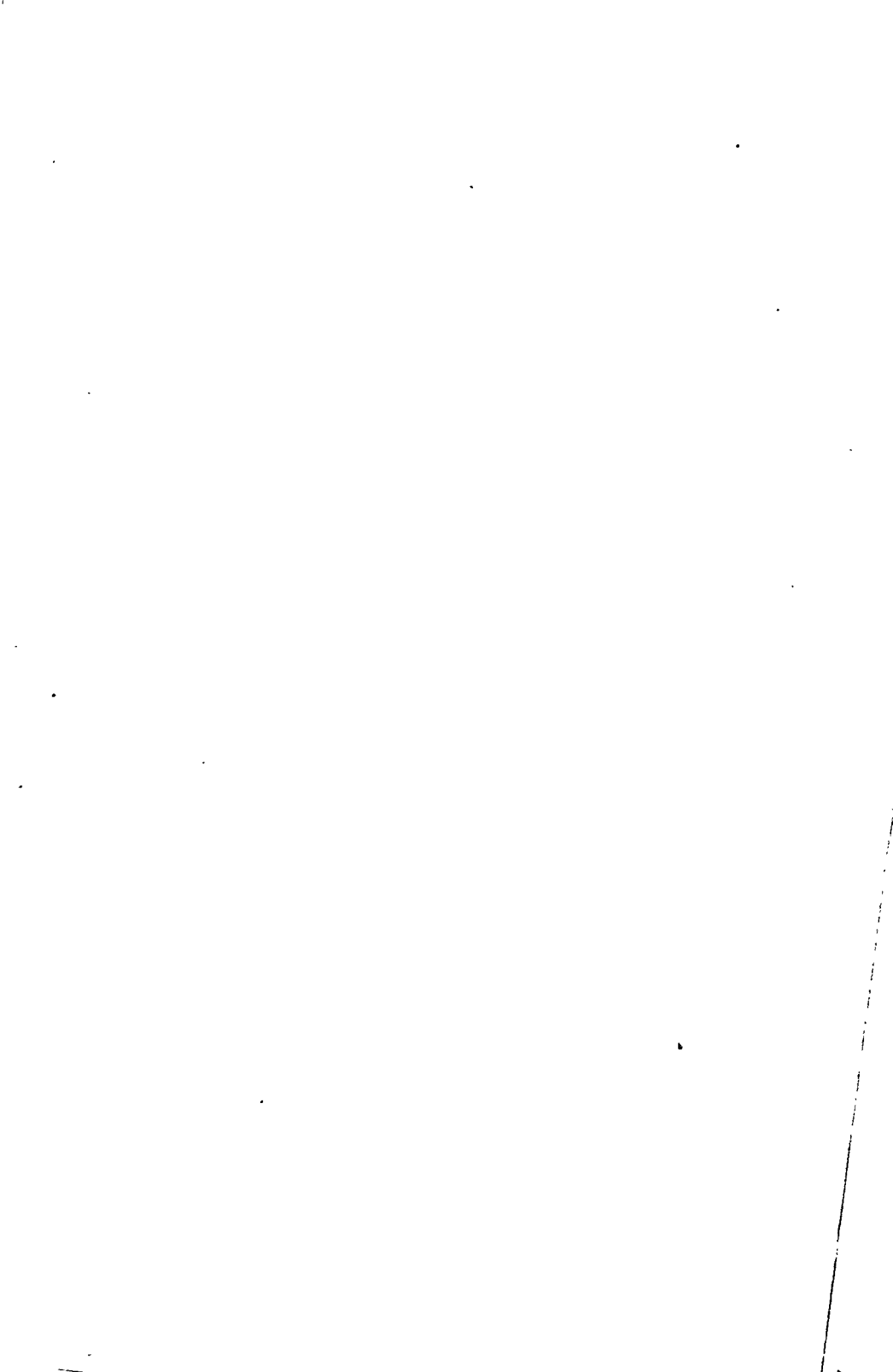
[लेखक : काकासाहब कालेलकर]

आश्रम-जीवनका आदर्श हमारे देशमें अति प्राचीन कालसे स्वीकार किया गया है और आजमाया भी गया है। अुसमें समय समय पर फेरफार भी होते रहे हैं। प्राचीन कालसे आज तक हमारे देशमें जगह-जगह आश्रम स्थापित हुअे हैं और जनताने श्रद्धापूर्वक अुन आश्रमोंको निभाया है।

गांधीजीने हिन्दुस्तानमें आकर स्थिर होनेसे पहले दक्षिण अफ्रीकामें आश्रम-जीवनका अेक प्रयोग किया था। अुस अनुभवके आधार पर और भारतीय संस्कृतिके अनुसार अुन्होंने अिस देशमें नये ढंगके आश्रमकी स्थापना की। अिस आश्रमका अितिहास जब कभी लिखा जायगा, तब दुनियाको अिस बातका कुछ खयाल मिलेगा कि भारतकी रचनामें अुस आश्रमका कितना हाथ है। गांधीजीके अुस आश्रममें वर्षों तक रहकर श्री जुगतरामभाअीने जो अनुभव प्राप्त किया, अुसके आधार पर अुन्होंने रानीपरज लोगोंके बीच राष्ट्रसेवाका अेक आश्रम चलाया है। अुस आश्रमकी छोटी-बड़ी, कच्ची-पक्की, अधूरी-पूरी अनेक आवृत्तियां भी जगह-जगह स्थापित हुअी हैं। अैसे आश्रमोंमें जिस प्रकारके जीवनका विकास किया जाता है, जिस प्रकारके आदर्शोंका सेवन किया जाता है और जिस तरहकी कठिनाअियोंके विरुद्ध लड़नेमें आनंद अनुभव किया जाता है, अुनका वर्णन अिस पुस्तकमें श्री जुगतरामभाअीने व्याख्यान-शैलीमें किया है। रचनात्मक कार्य-क्रमको अपनानेवाले राष्ट्रसेवकोंको अिसमें से बहुत कुछ जाननेको मिलेगा। आलोचकोंको आलोचना करनेका मसाला भी अिसमें कम नहीं मिलेगा। क्योंकि श्री जुगतरामभाअी जो कुछ लिखते हैं वह श्रद्धाके निश्चयसे लिखते हैं; वे केवल लोगोंकी जानकारीके लिअे नहीं लिखते, परन्तु अिस प्रकारके अुत्कट आग्रहके साथ लिखते हैं कि मैं जो कुछ लिखता हूं वह स्वीकार किया ही जाना चाहिये। अैसे लेख दिमागके अेक कोनेमें पड़े नहीं रहते। जैसे प्राचीन कालके परशुराम यह कहकर लोगोंको परेशान करते थे कि 'लड़ो, नहीं तो लड़नेवाला दो', वैसे ही श्री जुगतरामभाअी 'मेरी बात सुनो, समझो और स्वीकार करो' के आग्रहसे लोगोंको जाग्रत और अस्वस्थ करते हैं।

*   *   *

स्वामी आनंदके कारण श्री जुगतरामभाअीका और मेरा परिचय हुआ। वे १९१६ के दिन रहे होंगे। जुगतरामभाअी शायद काठियावाड़से आकर बम्बअीमें किसी मासिक पत्रके कार्यालयमें काम करते थे। हमने अुन्हें बड़ोदा बुलाया। थोड़े ही समयमें हम बड़ोदाके पास सयाजीपुरामें रहने चले गये। श्री जुगतरामभाअी सयाजीपुराके अेक मंदिरमें लोगोंको तुलसीकृत रामायण सुनाते-समझाते थे और देहातके लोगोंकी सेवा करते

थे। अुनका आश्रम-जीवन तभीसे शुरू हुआ माना जायगा। अुनकी माताजी हिमालयमें यात्राके लिअे गअी थीं और वहीं अुनका स्वर्गवास हो गया। अिससे जुगतरामभाअीके कौटुम्बिक जीवनका अेकमात्र तंतु टूट गया। अुस समयसे आज तक अुन्होंने संयम, सेवाकार्य और त्यागमय जीवनकी धाराको अखंड रूपसे कायम रखा है।

मैंने जब गांधीजीके आश्रममें प्रवेश किया, तब मेरे पीछे-पीछे वे भी आये। आश्रममें हम पढ़ानेका काम करते थे। विद्यापीठकी स्थापना हुअी तो वहांका अध्यापन-मंदिर चलानेका भार जुगतरामभाअीने अुठा लिया। स्वामीके और मेरे संबंध और आग्रहके कारण 'नवजीवन' का कार्यालय चलानेकी जिम्मेदारी भी अुन्होंने ली। अितनेमें (सन् १९२४ की बात होगी) अुन्हें भीतरसे अपने जीवन-कार्यकी प्रेरणा हुअी। तुरन्त ही अुन्होंने स्वामीका, मेरा और 'नवजीवन' का मोह छोड़कर गांवका रास्ता लिया और वे बारडोली तालुकेमें जाकर बस गये। अिस बातको आज लगभग दो युगका समय बीत गया है। जुगतरामभाअीकी ग्रामसेवा और अुससे संबंध रखनेवाला आश्रम-जीवन अेकनिष्ठासे अखंड रूपमें चल रहा है।

साहित्य-सेवा अुनका सबसे पहला रस था। यह रस अुन्होंने बहुत कम कर दिया। परन्तु अुनकी साहित्यिक शक्ति तो खिलती ही गअी है। गद्य, पद्य, नाटक, निबंध, जीवन-चरित्र, पाठ्यपुस्तक — अनेक क्षेत्रोंमें अुन्होंने अपनी लेखनीकी शक्तिका परिचय दिया है। अुस शक्तिका ही परिपाक आज हमें अिस पुस्तकमें मिलता है।

वे मेरे साथ रहने आये, अिसलिअे अुन्होंने स्वाभाविक तौर पर राष्ट्रीय शिक्षकका व्रत लिया। साबरमती आश्रममें क्या और अपने वेड़छी आश्रममें क्या, जुगतरामभाअी दोनों जगह समर्थ और सफल शिक्षकके रूपमें चमके हैं। अुस शिक्षककी शैलीका परिपाक भी अुनकी अिस पुस्तकमें स्पष्ट दिखाअी देता है।

साहित्य और शिक्षाके साथ सेवा और त्यागका अुन्हें रस लगा। यह रस भी अुनकी अिस आश्रमी शिक्षाकी पुस्तकमें छलाछल भरा हुआ दीखता है। त्याग और सेवामें ही जुगतरामभाअी जीवनकी समृद्धि, अुसकी परिपूर्ति और जीवन-रसकी तृप्ति अनुभव करते हैं; और अिसीलिअे कठिन माने जानेवाले, कुछ अंशोंमें नीरस माने जानेवाले, आश्रम-जीवनका अितना रसपूर्ण माहात्म्य अथवा स्तोत्र वे गा सके हैं।

जुगतरामभाअीका मनुष्यके नाते अुन्हें अूंचा अुठानेवाला मुख्य गुण अुनकी लोक-संग्रहकी शक्ति है। अुनका मनुष्य-प्रेम अुनमें पहलेसे प्रगट हुआ है। अकृत्रिम सहानुभूतिसे वे अनेक लोगोंको जीत लेते हैं। सहानुभूति जब स्वाभाविक होती है, तभी अुसका सुन्दर और श्रेष्ठ प्रभाव पड़ता है। सहानुभूति प्रयत्न द्वारा पैदा करनेसे पैदा नहीं होती। पैदा की हुअी सहानुभूति जबरदस्तीसे पचाअी हुअी खुराक जैसी होती है। अुसमें से शुद्ध और शुभ जीवन-रस विकसित नहीं होता। जुगतरामभाअीने अपनी प्रचुर सहानुभूतिके कारण छोटे-बड़े अनेक लोगोंको अपने आसपास अिकट्ठा किया है। अनेक लोगोंसे अुन्होंने अुत्तमसे अुत्तम सेवा कराअी है, अनेक लोगोंकी भक्तिके वे पात्र बने हैं। परन्तु प्रेमके साथ अनासक्तिका योग साधनेके कारण वे किसीके मोहमें नहीं

फंसते, अलिप्तके अलिप्त रहते हैं और अिसीलिअे अपने सहवासमें आनेवाले लोगोंको वे अूंचा अुठा सकते हैं।

सब प्रकारकी संस्कारिता प्राप्त करने और विकसित करनेका मौका मिलने पर भी और अुसका पूरा लाभ अुठाने पर भी जुगतरामभाअी 'संस्कारिता' के पाशमें नहीं फंसे। हृदयकी कोमलता तो अुनमें है, परन्तु 'संस्कारिता' के नाजुकपन और गंभीरताको अुन्होंने अपने पास नहीं आने दिया। अिसीलिअे वे लोक-जीवनसे अलग नहीं पड़े। अुनकी भाषाशैली, अुनकी कार्य-प्रणाली और अुनकी जीवन-दृष्टि — तीनों लोक-जीवनके अनुकूल ही रही हैं। परिणामस्वरूप गांवोंके लोग पूरी पूरी आत्मीयतासे अुन्हें घेरे रहते हैं। सचमुच, जुगतरामभाअी हमारी भोली जनताके दरबारमें पहुंचे हुअे संस्कारी दुनियाके अेलची हैं। दोनों दरबारोंमें वे अुत्तम ढंगसे अपना सामर्थ्य प्रगट करते हैं और अुन दोनों दरबारोंकी शिष्टता और सभ्यताको कायम रखते हैं।

गांवोंका जीवन, अुसके तमाम सवाल, समग्र सेवा, खादीकी शिक्षा, बालशिक्षा, प्रौढ़शिक्षा, सत्याग्रहकी पूर्व तैयारी, जेल-जीवनका शास्त्र — अिस प्रकार समाजशास्त्रके सभी अंगोंका अुन्हें अनुभव-मूलक प्रत्यक्ष ज्ञान है। अिस ज्ञानमें से आश्रम-जीवनके लिअे जितनी सूचनाअें अुन्हें जरूरी लगीं, अुन सबको विस्तारपूर्वक, शब्दोंकी जरासी भी कंजूसी किये विना, अुन्होंने अिस पुस्तकमें गूंथ दिया है।

अेक शास्त्रीजीके साथ हमारे धर्मग्रंथ पढ़ते हुअे, शास्त्रोंमें होनेवाला कुछ व्यर्थका विस्तार देखकर मैंने शास्त्रीजीसे पूछा था, "अेक अेक मात्राकी कंजूसी करके कठिनसे कठिन और छोटेसे छोटे सूत्र लिखनेवाले हमारे अिन पूर्वजोंने यहां अितना विस्तार क्यों किया होगा?" तब हमारे शास्त्रोंको घोलकर पी जानेवाले अुन शास्त्रीजीने अभिमानपूर्वक कहा था, "श्रुतिको आलस्य नहीं होता। माता जैसे बच्चोंको अेक ही चीज कअी तरहसे लगनके साथ समझाती है, वैसे ही श्रुतिमाता मनुष्यकी बालबुद्धिको पहचानकर प्रत्येक वस्तु अिस ढंगसे विस्तारपूर्वक समझाती है कि कहीं भी अुसे संशय न रहे।" श्री जुगतरामभाअीने माताकी अिस वृत्ति और शैलीको अच्छी तरह अपनाया है। अुनकी 'आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा' पुस्तक अुनके अिस मातृ-हृदयकी पूरी गवाही देती है।

समर्थ लेखक अनेक प्रकारका साहित्य पैदा करते हैं, अनेक विषयोंका अध्ययन करते हैं और समाजकी विविध प्रकारसे सेवा करते हैं। परन्तु अपनी किसी अेक विशेष पुस्तकमें ही वे अपना जीवन-सर्वस्व अुंडेल देते हैं। श्री जुगतरामभाअीके बारेमें यह कहा जा सकता है कि अिस पुस्तकमें अुन्होंने अपने-आपको ही अुंडेल दिया है। अिसमें अुनका जीवनभरका विकसित स्वभाव चित्रित हुआ है। अुनके जीवनका आदर्श प्रतिबिम्बित हुआ है। आशा और निराशामें अुनको टिकाये रखनेवाली अुनकी जीवन-प्रेरणा अिसमें संगृहीत है। यह पुस्तक पढ़कर लोग कह सकते हैं कि अिसमें अुन्हें जुगतरामभाअीका पूरा-पूरा परिचय प्राप्त हुआ है।

* * *

लगनसे साधी हुअी अिन्द्रिय-जय, किसी तरहकी अपेक्षा रखे विना की गअी लोक-सेवा और अिस साधनासे अुत्पन्न होनेवाली मुमुक्षुकी विश्वात्मैक्य दृष्टि — ये तीन तत्त्व आश्रम-जीवनकी बुनियादमें होते हैं। सारा मानव-जीवन यदि अिन तीन तत्त्वोंके आधार पर रचा जाय, तो मनुष्यका जीवन शुद्ध, समर्थ, समृद्ध और कृतार्थ हुअे विना रह ही नहीं सकता।

अिस तरह देखें तो अैसा आश्रम-जीवन सचमुच समग्र मानव-जीवनकी परिपूर्णता है। परन्तु मनुष्यको अभी अुसका पूरा स्वाद लगा नहीं है।

मानव-जीवन लाखों वर्षोंकी प्रयोग-परम्परा है। अिसमें मनुष्यने निरा और नग्न स्वार्थ आजमाकर देखा। अिसमें अुसे संतोष नहीं हुआ। अन्तमें अुसने परस्पर सहयोगवाला सामाजिक जीवन अपनाया। कुटुम्बके भीतर गृहस्थाश्रम और कुटुम्बसे बाहर सामाजिक लोक-जीवनको अपनाकर मनुष्य-जाति किसी न किसी तरह प्रगति कर रही है। अैसे जीवनका मनुष्य अब अितना अभ्यस्त हो गया है कि अिससे अूंचा या अुज्ज्वल जीवन कोअी अुपस्थित करे, तो साधारण मनुष्य कुछ घबरा जाता है। अपनी घबराहट प्रगट करनेके मनुष्यने दो रास्ते ढूंढ निकाले हैं: (१) जो चीज हमें पसन्द न हो, अुसकी या तो अच्छी तरह पूजा करो और अुसे सिन्दूर लगाकर अलग रख दो; अथवा (२) खूब निन्दा करके अुसे गिरा दो और अुसे अव्यावहारिक ठहरा दो। क्या हम नहीं जानते कि आश्रम-जीवनके बारेमें हमारे समाजने दोनों ढंग आजमा कर देख लिये हैं?

कुछ साधु पुरुषोंने गृहस्थाश्रम और सामाजिक जीवन दोनोंसे अुकताकर अेक प्रकारका निवृत्ति-मार्ग अपनाया। सचमुच अिसमें जीवनसे भाग निकलनेकी ही बात थी। प्रवृत्ति की जाय तो मोहमें फंस जाते हैं; निवृत्ति अपनायी जाय तो जीवन शून्य बन जाता है। अिन दो संकटोंसे बचनेके लिअे गीताजीने जो अनासक्ति-योग सिखाया है, अुसीके जीवन-भाष्यके रूपमें गांधीजीने आश्रम-धर्म चलाया। 'आदर्श ढंगसे देशसेवा करना सीखना और देशसेवा करना' — अिस आदर्शसे प्रेरित होकर अुन्होंने सत्याग्रह-आश्रम चलाया। अन्यायका प्रतिकार करनेके लिअे सत्याग्रह और राष्ट्रकी सात्त्विक शक्तिका विकास करनेके लिअे रचनात्मक कार्यक्रम, ये दो चीजें गांधीजीने सबसे पहले अपने आश्रममें बोअीं। संकटका समय आने पर आश्रमकी 'अपनी यह खड़ी फौज लेकर मैं लड़ूंगा' अिस आत्म-विश्वासपूर्ण संकल्पके साथ अुन्होंने आश्रनकी स्थापना की। अिस परीक्षामें आश्रमवासी किस हद तक पार अुतरे, यह तो समाज जानता है और प्रत्येक आश्रमवासी अपने अन्तरमें जानता है। परन्तु गांधीजीसे लेकर लगभग सभी आश्रमवासी, सत्ताकी राजनीति ('पावर पॉलिटिक्स') से अलग रहे हैं, यह बात साधारण मनुष्योंके ध्यानमें भी आये विना नहीं रहती। मगनलालभाअी और नारणदासभाअी, महादेवभाअी और नरहरिभाअी, विनोबा और जुगतरामभाअी, किशोरलाल मशरूवाला और आप्पासाहब पटवर्धन, परीक्षितलालभाअी और बबलभाअी, मामासाहब और सुरेन्द्रजी — अिनमें से अेकने भी किसी जगह अधिकारकी लालसा नहीं रखी।

सेवाके लिअे ही हाथमें अधिकार लेते हैं, अैसा कहनेवाले और तदनुसार सचमुच चलनेवाले लोग हमारे यहां कम नहीं हैं। परन्तु आश्रमवासियोंका अेक अैसा वर्ग है जो—

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता।
प्रक्षालनात् हि पंकस्य दूरात् अस्पर्शनं वरम्॥

[धर्मके खातिर ही जिसे धन प्राप्त करनेकी अिच्छा होती हो, अुसे अैसी अिच्छा न करना ही अच्छा है। कीचड़में हाथ डालकर फिर धोनेकी अपेक्षा तो अुससे दूर रहकर अुसे न छूना ही अच्छा है।]
अिस पुराने आदर्श पर चलता है।

अधिकार हाथमें लेकर अमुक सेवा की जा सकती है, अिससे अिनकार नहीं। परन्तु अधिकार लिये बिना जो सेवा होती है, अुसकी खूबी कुछ और ही होती है। अधिकार और सत्ययुगका मेल नहीं बैठता। और हम तो सत्ययुगकी स्थापना करना चाहते हैं। अिसलिअे आजका जमाना अधिकारमें विश्वास रखता हो, तो भी अधिकारके बिना काम चलानेवाले लोगोंका अेक वर्ग स्थायी रूपमें रखना चाहिये। यह वर्ग देशके सार्वजनिक जीवनको शुद्ध और तेजस्वी बनाये रखनेमें कीमती मदद कर सकता है।

* * *

आश्रम-जीवनका जिन्हें अुत्तमसे अुत्तम रंग लगा है, अैसे दो पुरुषोंके हाथों आश्रम-जीवनकी आधुनिक पद्धतिकी स्मृति लिखी गअी, यह सर्वथा अुचित है। अेक ही आश्रम-जीवनके बारेमें अेक ही आदर्शसे विचार करनेवाले समर्थ विचारक और लेखक अपनी अपनी वृत्तिके अनुसार अेक-दूसरेसे बिलकुल भिन्न किन्तु परस्पर पोषक कृतियां कैसे निर्माण कर सकते हैं, यह देखनेका अवसर हमें आजके जमानेने दिया है।

अेक प्रकारसे, सब प्रकारकी सामाजिक अनुकूलताके बीच कठोर जीवन बितानेवाले जुगतरामभाअी और कठोर परिस्थितियोंमें दोषदर्शी लोगोंके बीच तपस्या-मधुर जीवन बितानेवाले आप्पासाहब पटवर्धन — अिस युगकी आश्रम-प्रवृत्तिकी दो समर्थ ब्रह्मचारी विभूतियां हैं। दोनोंके जीवनमें अपने लिअे व्रतोंकी कठोरता और समाजके प्रति प्रेम-पूर्ण मधुरता तथा नम्र क्षमावृत्ति पूरी पूरी दिखाअी देती है।

श्री आप्पासाहबने मराठीमें 'सेवाधर्म'* नामक ग्रंथ लिखा। आप्पासाहब अपने पूर्व जीवनमें तत्त्वज्ञानके प्राध्यापक थे। अतः अुनके ग्रंथमें तत्त्वज्ञानकी सुगंध हमें मिले, तो कोअी आश्चर्य नहीं। और श्री जुगतरामभाअी कर्मवीर गांधीजीके साहित्य पर पले होनेके कारण अुनके ग्रंथमें व्यवहारकी छानबीन और अुससे अुत्पन्न होनेवाले तात्त्विक प्रश्नोंकी मीमांसा प्रगट हुअे बिना नहीं रहती। दोनों ग्रंथ समान रूपमें ही विचार-प्रेरक और कार्य-प्रेरक हैं, फिर भी दोनोंका अपना अपना भिन्न प्रस्थान (मार्ग) है।

हिन्दुस्तानकी जनता जब सामाजिक विकासकी दृष्टिसे आश्रम-जीवनका माहात्म्य पहचानेगी, तब राष्ट्रकी सर्वांगीण शिक्षामें आश्रमी-जीवनके प्रयोगों और अुनके साहित्यका

---

* अिस पुस्तकका गुजराती अनुवाद गूजरात विद्यापीठकी तरफसे प्रकाशित हुआ है। (नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद—१४, कीमत २—८—०; डाकखर्च ०—१२—०)।

अध्ययन अेक अनिवार्य विषय माना जायगा। अुस दिन अप्पासाहबकी 'सेवाधर्म' और जुगतरामभाअीकी 'आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा'—ये दो पुस्तकें मूल भाषामें अथवा हिन्दी अनुवादके रूपमें पाठ्यपुस्तकोंके तौर पर काममें ली जायंगी। समाजशास्त्रके अध्ययनमें और समाजवादी अर्थशास्त्रकी मीमांसामें जैसे 'अमेरिकन कम्युनिटीज़' पुस्तकमें दिये गये अीसाअी आश्रमोंके अितिहासका महत्त्वपूर्ण स्थान है, वैसे ही हमारे देशमें अप्पासाहब और जुगतरामभाअीकी पुस्तकें आश्रम-जीवनकी मीमांसामें मूलभूत पुस्तकें मानी जायेंगी।*

* * *

जैसे हमारे समाजने चार वर्णोंकी कल्पना की, वैसे ही चार आश्रमोंकी भी क़ल्पना की थी। जिम्मेदारियोंसे मुक्त स्वाभाविक बालपन बितानेके बाद अध्ययन-कालका संयमी

* अिसी स्थान पर अेक और पुस्तकका अस्तित्व अुल्लेखनीय है। गांधीजी जब अेक बार जेलमें गये, तब मैंने अुनसे सत्याग्रह-आश्रमका अितिहास लिखनेका आग्रह किया था। और आग्रहके साथ यह भी लिखा था: "हम आश्रमवासी आपके भव्य आदर्शको अमलमें लानेके लिअे समर्थ सिद्ध नहीं हुअे, अिसका मुझे भान है। हमारी कमियों और हमारी संकीर्णताओंके कारण आश्रमका आदर्श कितना आहत हुआ है, यह भी मैं जानता हूं। हम लोगों पर जरा भी दया किये बिना हमारी भूलोंका भी सच्चा चित्र अिस अितिहासमें आना चाहिये।" गांधीजीने आश्रमका अेक अत्यंत संक्षिप्त अितिहास लिख दिया है। लेकिन अुसमें आश्रमवासियों अथवा आश्रमकी घटनाओंका कोअी जिक्र किये बिना आश्रमके आदर्शोंमें अनुभवके आधार पर क्या क्या परिवर्तन करने पड़े, अिसीका संक्षिप्त अुल्लेख अुन्होंने किया है। गांधीजीकी यह पुस्तक अभी तक छपी नहीं है।[1] परन्तु अुसकी हस्तलिखित दो-तीन प्रतिलिपियां दो-तीन व्यक्तियोंके पास सुरक्षित रखी हैं।

तफसीलके अभावके लिअे जब मैंने अपना असंतोष प्रगट किया, तब गांधीजीने कहा कि, "तफसील देनेका काम आप जैसोंका है।"

गांधीजीके आदर्शोंका अुत्कट रूपमें प्रयोग करनेवाली सत्याग्रह आश्रम या विद्यापीठ जैसी संस्थाओंके कार्यालयसे यदि ब्यौरेवार घटना-क्रम और सम्बन्धित कालके प्रस्ताव, पत्रव्यवहार और दस्तावेजोंमें से वांछित सामग्री छांट ली जाय, तो अुसके आधार पर अपनी स्मृति ताजी करके कुछ आश्रमवासी वांछित अितिहास पूरा कर सकेंगे। श्री मगनलालभाअी, श्री महादेवभाअी, श्री गिदवाणी और श्री जमनालालजी जैसे अुच्च कोटिके सेवक वह अितिहास पूरा किये बिना चले गये। अितिहास लिखनेके बारेमें हमारे पूर्वजोंकी अुदासीनताकी आलोचना करनेवाले हम लोग अपने आजके राष्ट्रीय जीवनका अितिहास लिखनेके बारेमें अपने पूर्वजोंकी तरह ही अुदासीन हैं, यह बात यहां ध्यानमें आये बिना नहीं रहती।

१. अब यह अितिहास 'सत्याग्रह आश्रमका अितिहास' नामसे नवजीवन प्रकाशन मंदिरकी ओरसे प्रकाशित हुआ है। कीमत १–४–०; डा० खर्च ०–५–०।

ब्रह्मचर्याश्रम, अध्ययन और पर्यटन पूरा करनेके बाद स्वीकार किया जानेवाला धर्म-परायण गृहस्थाश्रम, अिन दोनोंके द्वारा सांसारिक महत्त्वाकांक्षा तृप्त करनेके बाद अपनाया जानेवाला निवृत्ति-परायण कठोर वानप्रस्थाश्रम और अन्तमें सब प्राणियोंको अभय देनेवाला और सर्वत्र आत्मीयता देखनेवाला मोक्ष-धर्मी शान्त संन्यासाश्रम — ये चारों प्रकारके आश्रम हम लोगोंने आजमाये हैं। अर्जुनने भिक्षा पर चलनेवाले निर्वैर-वृत्तिपूर्ण संन्यासाश्रमका सवाल छेड़ा था, फिर भी श्रीकृष्ण भगवानने गीतामें आश्रम-धर्मका कहीं विवेचन नहीं किया! चातुर्वर्ण्यकी चर्चा आरम्भमें और अन्तमें दो बार करके भी श्री भगवानने चार आश्रमोंके आदर्शकी चर्चा गीतामें कहीं भी नहीं छेड़ी, यह सबसे बड़ा आश्चर्य है। हम यहां अिसका कारण ढूंढ़ने नहीं बैठेंगे। परन्तु यह बात अुल्लेखनीय अवश्य है।

आजके जमानेमें ब्रह्मचर्य-पालनकी आवश्यकता है, अिसमें कोअी शंका नहीं। परन्तु अिसके लिअे ब्रह्मचर्याश्रम चलाया जाय या नहीं, अिस सवालका हल अभी तक नहीं निकला है।

गृहस्थाश्रम तो समाज-जीवनका आधार ही है। यह गृहस्थाश्रम जब तक सृष्टि है, तब तक चलेगा। परन्तु हमारे जीवनमें यह गृहस्थाश्रम पूरी तरह विकसित है या खंडित है? संस्कृत है या विकृत है? अिसकी जांच करनेका दिन अवश्य आ पहुंचा है।

वानप्रस्थाश्रम हमारे यहां किस हद तक विकसित हुआ था, अुसका सामाजिक महत्त्व कितना था, यह अेक खोजका विषय है।

संन्यासाश्रम सर्वकालमें अेकसा लोकप्रिय रहा है, यह नहीं कहा जा सकता। पूर्वमीमांसावाले याज्ञिक संन्यासाश्रमके औचित्यको ही स्वीकार नहीं करते थे। स्मृतिकारोंने अिस आश्रमको अेक बार कलिवर्ज्यकी सूचीमें डालकर समाजसे अुसका नाम-निशान ही मिटा दिया था। बुद्ध भगवान और शंकराचार्य जैसे महापुरुषोंने अुसका फिरसे अुद्धार न किया होता, तो यह आश्रम स्मृतिशेष ही हो जाता। हमारे जमानेमें स्वामी विवेका-नन्द और स्वामी दयानन्द जैसोंने अिस आश्रमको सेवा-परायण और निःस्वार्थ प्रवृत्ति-परायण बनाकर अुसे नया ही रूप दे दिया है।

अिस सारी अितिहास-परम्परामें गांधीजी द्वारा स्थापित नये आश्रमी आदर्शका स्थान कहां है, यह खास तौर पर विचारने जैसा है।

योगशास्त्रमें वर्णित सत्य, अहिंसा आदि यमों और तप, स्वाध्याय आदि नियमोंके आधार पर गांधीजीने ११ व्रतोंवाले आश्रम-जीवनका विकास किया। स्मृतियोंमें वर्णित संन्यास **आश्रम**के प्रति आदर प्रगट करते हुअे भी अुसे अुन्होंने स्वीकार नहीं किया और गीतामें वर्णित तथा जनक जैसे राजाओं द्वारा पालन किये गये संन्यास आदर्शको गांधीजीने स्वीकार किया। और अुन्होंने अिस विचारके अनुसार प्रयोग चलाये कि जीवनका अंतिम भाग या कोअी अमुक भाग नहीं, परन्तु सारा जीवन अिस आदर्शके अनुसार यथाशक्ति विकसित करना चाहिये और समाज-जीवनको शुद्ध, समर्थ और समृद्ध बनाना चाहिये।

मानव-संस्कृतिके विकासमें गृहस्थ-जीवन और आश्रम-जीवन ये दोनों प्रकार परस्पर पोषक क्यों हैं, यह चीज दुनियाके समाजशास्त्रियोंके लिअे विचारणीय है।

गांधीजीने भारतके जीवन पर — राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, औद्योगिक और शैक्षणिक जीवन पर जो असर डाला है, अुसमें अुनके आश्रम-आदर्शने अेक बार बड़ीसे बड़ी छाप डाली थी। गांधीजीके नेतृत्वकी व्यापकता बढ़ने पर अुनके नये-नये व्यवहार-कुशल अनुयायियोंने आश्रम-जीवन और आश्रमवासियोंके बारेमें अपने अनादरका प्रचार भी काफी किया। अनेक लोग यह भी मानते हैं कि आश्रम-जीवन गांधीजी जैसे राष्ट्र-पुरुषके जीवनका अेक विनोदपूर्ण अंग है, शौककी चीज है। कुछ लोग अिस बातकी चौकीदारी करनेवाले भी हैं कि देशके राजनीतिक और आर्थिक जीवनमें यह आश्रमी आदर्श घुसने न पाये। कुछ आश्रमवासी कहते हैं कि आश्रमवासी भले ही अिस अुच्च आदर्शके योग्य न हों, परन्तु यह आश्रम-आदर्श ही संसारका अंतिम तारनहार है। आजकी दुनियाको गांधीजीकी शक्ति तो चाहिये, परन्तु जिस आदर्शकी साधनासे अुन्होंने यह शक्ति प्राप्त की है, वह आश्रमी आदर्श लोगोंको नहीं चाहिये। अिसमें आश्चर्य क्या?

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः॥

[मनुष्य पुण्यका फल तो चाहते हैं, परन्तु पुण्यके कर्म नहीं करना चाहते। वे पापका फल नहीं चाहते, परन्तु पापके काम यत्नपूर्वक करते हैं]

मनुष्य-जाति सही रास्ते पर चलनेसे पहले आसान दिखाअी देनेवाले सभी गलत रास्ते आजमाकर देखेगी। अैसा करनेसे अुसे कौन रोक सकता है?

खैर, अैसी आलोचनासे कोअी समाज कभी जागा है? मनुष्यका स्वभाव ही प्रयोग-परायण है। अुसके विरुद्ध शिकायत न करके आश्रमवासियोंको आश्रमके आदर्शमें भी अनेक प्रयोग करने चाहिये, संसारके दूसरे देशोंके लोगोंने जो प्रयोग किये हैं, अुनका अध्ययन करना चाहिये और जीवन-परायण बनकर अर्थशास्त्र, मानसशास्त्र और समाजशास्त्र तीनोंका विकास करते करते शुद्धसे शुद्ध जीवन-शास्त्र और जीवन-कलाकी रचना करनी चाहिये।

आश्रमी आदर्श और आश्रमी जीवन रूढ़िवादियोंके लिअे नहीं है, अेक ही लकीर पर चलनेवाले तेलीके बैलोंके लिअे नहीं है; वह जीवन-परायण प्रयोगवीरोंके लिअे है। श्री जुगतरामभाअीकी पुस्तक पढ़कर, अुनकी निष्ठा और अुनका अुत्साह धारण करके आदर्श जीवनके, समाज-सेवाके और मानव-अुत्कर्षके कार्योंमें प्रयोग करनेवाले लोग हमारे जमानेमें पैदा हों, यही अिस 'आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा' की सच्ची फलश्रुति है।

बम्बअी, २५–५–'४६

अिस पुस्तकके पहले और दूसरे भागमें चर्चित विषय

पहला भाग : आश्रमवासीके बाह्य आचार

पहला विभाग : आश्रम-प्रवेश

प्रवचन — १ : पहले दिनकी घबराहट ; २ : स्वच्छताकी अिन्द्रिय ; ३ : आश्रम-प्रीत्यर्थ; ४ : हमारा यज्ञकर्म ; ५ : सूत्रयज्ञ ही क्यों ?

दूसरा विभाग : भोजन-विचार

प्रवचन — ६ : आश्रमी भोजन अच्छा लगा ? ; ७ : आश्रमी आहारकी दृष्टियां; ८ : सच्चा स्वाद ; ९ : सात्त्विक आहार ; १० : कैसे खाना चाहिये ?; ११ : अमृत-भोजन।

तीसरा विभाग : समय-पालनका धर्म

प्रवचन — १२ : आकाशका अमृत ; १३ : आश्रम-माताकी प्रभाती ; १४ : परम अुपकारी घंटी ; १५ : समय-पत्रक ; १६ : डायरी ; १७ : डायरी लिखनेकी कला ; १८ : समय नष्ट करनेके साधन।

चौथा विभाग : श्रम-धर्म

प्रवचन — १९ : 'महाकार्य' ; २० : स्वच्छता-सैनिककी तालीम ; २१ : अस्पृश्यता-निवारणकी कुंजी ; २२ : स्वयंपाक ; २३ : पावन करनेवाला पसीना ; २४ : खेतीके रसायन।

पांचवां विभाग : खादी-धर्म

प्रवचन — २५ : अनिवार्य खादीका नियम ; २६ : राष्ट्रीय गणवेश ; २७ : सौ फी सदी स्वदेशी ; २८ : सभ्यताके पाश ; २९ : सच्ची पोशाककी खोज।

दूसरा भाग : आश्रमवासीकी अन्तर-श्रद्धायें

छठा विभाग : आश्रमवासीका संसार

प्रवचन — ३० : बीमारी कैसे भोगी जाय ? ; ३१ : मृत्युके साथ कैसा संबंध रखा जाय ? ; ३२ : बुढ़ापेके चिह्न ; ३३ : हमारा जाति-सुधार ; ३४ : सच्चा वर्ण-धर्म; ३५ : सुधारकका कन्या-व्यवहार ; ३६ : झूठे अलंकार ; ३७ : सेवकके सेवक कैसे ? ; ३८ : आश्रमवासिनियां।

सातवां विभाग : शिक्षा

प्रवचन — ३९ : आश्रमके बालक; ४० : बाल-शिक्षाकी आश्रमी पद्धति (कपड़े नहीं परन्तु खुली हवा, झोली नहीं परन्तु शिशु-घर, खिलौने नहीं परन्तु कामकी चीजें) ; ४१ : बाल-शिक्षाके बारेमें कुछ और (चुम्बन और आलिंगनकी मर्यादा, स्वच्छता और स्वास्थ्य) ; ४२ : लड़के-लड़कीका भेद ; ४३ : बच्चोंको पाठशाला क्यों न भेजा जाय? ; ४४ : अंग्रेजी पढ़ाअीका क्या होगा? ; ४५ : अुच्च शिक्षा।

आठवां विभाग : प्रार्थना

प्रवचन — ४६ : प्रार्थना-परायणता ; ४७ : ध्यानयोग ; ४८ : कुछ लोगोंको प्रार्थना पसन्द क्यों नहीं होती? ; ४९ : प्रार्थना-नास्तिक ; ५० : प्रार्थनाका शरीर (प्रार्थनाका स्थान, प्रार्थनाके समय, प्रार्थनाका आसन) ; ५१ : प्रार्थना किस भाषामें की जाय? ; ५२ प्रार्थनामें क्या क्या होना चाहिये? ; ५३ : प्रार्थना-संचालकोंके लिअे अुपयोगी सूचनायें (सबका सक्रिय भाग, प्रार्थना बहुत लंबी न हो, प्रार्थनाको सदा हरी रखें)।